मुद्रक—
शिवनारायण मिश्र,
'प्रताप' प्रेस,
कानपुर।
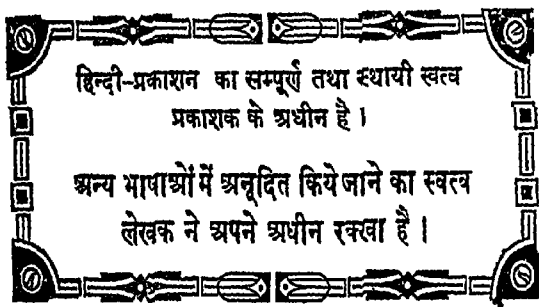
प्रकाशक—
शिवनारायण मिश्र,
"प्रताप" पुस्तकालय,
कानपुर।

मास्को शहर

Bibliography.

(1) The Main Springs of Russia
By Hon Maurice

(2) Three Aspects of Russian Revolution
By Mr Emile Vandervelde

(3) Rebirth of Russia
By Mr Marcosson

(4) Russia of Today
By Mr John Foster Fraser

(5) BOLSHEVISM
By Mr Keelings

(6) Pioneers of the Russian Revolution
By Dr Angelo S Rappoport

(7) Articles By Mr Brailsford

(8) Under Cossack and Bolshevik
By Mr Rhodha Power

(9) The Self Discovery of Russia
By Mr J Y Simpson

(१०) 'प्रताप' तथा 'मर्यादा' के कुछ लेख ।

दोनों ने इन मध्यस्थ व्यक्तियों को घृणा की दृष्टि से देखा।
यद्यपि मार्शल तथा लार्ड-लेफ्टीनेन्टों ने शासन-व्यवस्था में
(अधिकारीतंत्र की रचना में) अच्छा काम किया,
पर स्वयं उनको कुछ विशेष लाभ न हुआ। उधर
सरकारी नौकरी के फेर में पड़कर उनका जमीन्दारी
का प्रबन्ध कठिन हो गया। दोनों कामों को सम्भालना दुसाध्य
था। हुआ यह कि धीरे २ ज़मींदारियों का प्रबन्ध ज़मींदारों के
सैनिक-नौकरों के हाथों में चला गया, जिनके द्वारा जमींदार
किसानों से बड़ी कठोरता के साथ लगान वसूल कराने लगे।

जमींदारों के इस कठोर वर्ताव, और किसानों को भूमि
पर कब्ज़ा न मिल सकने तथा अधिकारीतन्त्र के बनाये हुए
अत्याचारी क़ानूनों से ऊब कर किसानों ने १८५८ में घोर
आन्दोलन किया।

इस के बाद किसानों में भूमि का बँटवारा सरकारी तौर
पर किया गया। बारह १२ वर्ष के लिये, भूमि के टुकड़े किसानों
में तक़सीम किये गये और इस प्रकार ज़मींदारों की भूमि बिक
कर सरकारी किस्तें अदा करने वाले किसानों के हाथों में आने
लगी! लेकिन इस प्रणाली से भी किसानों का आर्थिक संकट
टला नहीं। उन्हें अधिक भूमि की आवश्यकता थी पर ज़मीं-
न्दारों के हाथों से भूमि का निकालना एक आर्थिक प्रश्न था
जिसके लिये सरकारी ऋण भरने वाले किसान समर्थ नहीं थे।
फिर, अब भी जमींदारों की संख्या काफ़ी थी। सरकारी कर्म-
चारियों के अत्याचारों" के सिवा उन्हें ज़मींदारों की ग़ुलामी

* रूसी अधिकारी-तंत्र तथा किसानों का सम्बन्ध, "रूसी
शासन" शीर्षक अध्याय में देखिये।

(४) रूस की ग्रामीण कृषक-स्त्रियाँ।

रूस की राज्य-क्रान्ति

भीषण क्रान्ति न फूट पड़ती। पर ज़ार की मूर्खता और निरंकुशता ने जो २ गुल खिलाये, उनसे पाठकों को मालूम हो जायगा कि, १९०५ वाले सुधार कितने मामूली खेल थे! ज़ार ने नये सुधारों की स्वीकृति के समय किसी प्रकार का वचन न दिया था और न उसने क़सम ही खाई थी कि, हमारा लक्ष्य सुधारो की ओर अमुक नीति पर निर्भर है। साथ ही ज़ार ने अपने निरकुश अधिकारों मे से किसी भी अधिकार को न छोडा था। ऐसी हालत मे, यह स्पष्ट है कि, सुधारो का क्या मूल्य था।

१९०५ का शासन-संगठन वाला मसविदा कोई स्थायी व्यवस्था न थी, ज़ार को अधिकार था कि, जब वह चाहे, तब उक्त व्यवस्था को उठा दे। नये सुधारों में जनता को व्यक्तिगत स्वाधीनता तथा व्यवस्था-अधिकारों के देने की बात कही गई थी। साथ ही यह भी कहा गया था कि एक प्रातिनिधिक सभा (Duma) सगठित की जायगी और यह सभा अर्थात् 'ड्यूमा' सरकारी शासनतंत्र के सहयोग में रहेगी। बिना प्रातिनिधिक सभा की पूर्व-स्वीकृति के कोई भी क़ानून काम में न लाया जायगा, यह बात भी नई व्यवस्था में जोड़ी गई थी।

ड्यूमा यानी प्रातिनिधिक सभा की स्थापना कोई नई बात नहीं थी। १५५० में भी ऐसी ही एक सभा बनाई गई थी, पर अधिकारी-तंत्र की निरंकुशता तथा किसानों, जमींदारो एवं पूँजी वालों के मतभेद के कारण वह कई बार तोड़ी गई। अन्त में, उसका अस्तित्व तक जाता रहा था। इस इति श्री का एक कारण और था। किसान ज़मींदारों के हाथों बिल्कुल परवश होगये थे, ज़मींदार लोग भला

रूसी सिपाही

(५) ज़ार के समय का कान्स्टेबिल।

विषय-सूची।

(३) मन्त्रिमण्डल,
(४) गवर्नर
(५) प्रान्तिक बोर्ड,
(६) डिस्ट्रिक्ट बोर्ड
(७) पुलिस सुपरेन्टेन्डेण्ट
(८) कैन्टन-सभा।

(३) प्रान्तिक ज़ेम्सटोव्स
(४) ज़िला ज़ेम्सटोव्स
(५) मार्शल
(६) ग्राम्य-सभा

उपर्युक्त सूची से पाठकों को विदित हो जायगा कि, कार्यकारिणी शक्तियों की कैसी भरमार थी। सार्वजनिक प्रातिनिधिक सभायें संख्या में तो कम थीं ही, उनके अधिकार भी बहुत थोड़ थे। ज़ार निरंकुशता का पुतला था। उसके बाद 'सीनेट' अधिकारीतंत्र की पराकाष्ठा-मूलक स्वेच्छाचारी संस्था थी, और ज़ार की उंगलियों पर उसे नाचना पड़ता था। मत्रि-मण्डल भी ऐसा ही लोक-मत का घोर विरोधी रहा करता था। एक तो प्रजा-पक्षीय व्यक्ति कभी मत्री बनाये ही न जाते थे, और यदि किसी मंत्री ने सीनेट की इच्छा के विरुद्ध कुछ काम करना भी चाहा, तो तुरन्त वह पदच्युत किया जा सकता था, यहां तक कि, ज़ार उसे विना खुली अदालत में भेजे ही, साइबेरिया के ठंढे मुल्क में क़ैद करके भेज सकते थे। सीनेट की इच्छा पर नाचने वाले गवर्नर भी अधिकारीतत्र के अग थे। इसीप्रकार प्रान्तिक बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट कौंसिल, पुलिस सुपरिन्टेन्डेण्ट अधिकारीतंत्र के पाये थामे हुए थे। इस दुर्भेद्य दुर्ग को पार करके कौंसिल आफ इम्पायर, जिस के आधे सदस्य ज़ार द्वारा चुने जाते थे और जिसके सभापति को भी ज़ार ही नियुक्त करते थे, क्या कर सकती थी। ड्यूमा को नाममात्र के अधिकार थे। प्रान्तिक ज़ेम्सटोव अर्द्ध-सरकारी संस्था थी, और उसने

(७) नेवस्की सड़क, क्रान्ति का आरम्भिक स्थान

(६) रासपुटिन, ज़ार का विश्वासघाती मंत्री।

चित्र-सूची

क्रान्ति के सहायक कारण।

क्रान्ति के पूर्व रासपुटिन की हत्या एक ड्यूक तथा एक फ़ौजी अफ़सर द्वारा की गई, इस घटना से ज़ार ने प्रजा पर अमानुषिक अत्याचार किये। उधर खाद्य पदार्थों की कमी के कारण ग़रीब जनता में अत्यन्त कटु भाव फैल रहे थे। फल यह हुआ कि:—

"Then it was that men and women, driven by pang of hunger and weary with fruitless wai-ting, went forth, not to doom, but to destiny. When they smashed the first window they un-wittingly struck the first blow for their liber-ties, they did not know (and this fact makes the Revolution so remarkable) that they had loosed the whirlwird. All they knew was that they were hugry and coldened determined to get the where-withal to live."

भूखों के मारे लोग भोजन की फ़िक्र में निकल पड़े, जब कि उन्होंने अपने पेट के लिए एक खिड़की के आइने तोड़े, तो दूसरी खिड़की का टूटना, मानों उनकी पराधीनता का टूटना होगया। उन्हें भोजन के स्थान में स्वाधीनता का प्रसाद मिला।

परिचय।

रूस की राज्य-क्रान्ति वर्तमान संसार की बहुत बड़ी घटना है। २० करोड़ जन-संख्या के भावों ने जो घटना घटित की, उस का प्रभाव ससार भर पर पड़ा है। इस समय भी उस का प्रभाव काम कर रहा है। संसार की इस बड़ी घटना का वर्णन हिन्दी-ससार के पाठकों ने समाचार-पत्रों में भले ही पढ़ा होगा, पर, उन्हें विस्तृत रूप में अभी तक इसका वर्णन पढ़ने के लिए नहीं मिला है। हमने इसी अभिप्राय से रूस की राज्य-क्रान्ति की घटनाओं को क्रम-बद्ध कर के पाठकों के सामने रखने का प्रयास किया है' हमें विश्वास है कि, इस पुस्तक द्वारा हिन्दी-साहित्य के एक अंग की कुछ न कुछ अंशों में पूर्ति अवश्य होगी।

*　　*　　*　　*　　*

रूस में क्या हुआ था ? एक बड़ी साधारण सी बात थी। शताब्दियों से अन्न-दाता किसान पीड़ित थे। थे तो वे ज़ार की प्रजा, पर उनके साथ व्यवहार शत्रुवत् किया जाता था। ज़मीदार अलग उनका खून चूस जाते थे ! दो हाथ और दो पैर रखने वाले कहाँ तक सहते ? अत्याचारों के रोकने के लिए ज़ार के चरणों तक कई बार पहुंचा गया, पर, निरंकुशों ने कब २ परवश लोगों की प्रार्थनाओं पर ध्यान दिया है ? यही हाल वहाँ भी हुआ ! व्यक्तिगत स्वाधीनता की, निरंकु-

(१०) मो० रोडज़िन्को, ड्यूमा का सभापति

शता की वेदी पर हत्या की गई। सैकड़ों को फाँसी, हज़ारों को कारागार। बहुतेरे निर्वासित करके साइबेरिया के ठंडे मुल्क में गल का मर जाने के लिए भेज दिये गये। शासकों तथा शासितों का कितना कटु व्यवहार देखने में आया! मार पर मार। ठोकर पर ठोकर। काल्पनिक सहयोग की जर्जर रस्सी टूट गई। जनता में राजद्रोह के भाव फैल गये। यह उतना ही साधारण राजद्रोह था, जैसा कि, ऐसी अवस्था में सर्वत्र फैल जाता है। एक तरफ जनता खिंची, और दूसरी तरफ शासकों ने तीर सीधे किये। १८६४ में, १८६२ में, और १६०५ में बड़े २ संघर्षण हुए। अन्त में, रूस की जनता ने अपने पाशविक रोष में आकर जो कुछ किया, उस का ही इस पुस्तक में वर्णन है।

क्रान्ति के बाद, रूस ने सार्वजनिक शान्ति, सुख तथा समता की स्थापना के लिए अपनी स्थिति के अनुसार जो उपाय काम में लाये हैं, वे भले हैं या बुरे, यह हम नहीं कह सकते। विना परिणाम देखे, कैसे कहें। हाँ, यदि रूसका इस में कल्याण होता है, तो वह ऐसा ही करे। पर हम इसके पक्ष में नहीं कि, मान न मान, मैं तेरा महमान! पहिले अपनी बिगड़ी सुधार ले, तब दूसरों की फ़िक्र करे। अपनी २ की सब को चिन्ता है। दूसरे कुछ नादान नहीं।

२८ मार्च १९२०
कानपुर।

रमाशङ्कर अवस्थी।

बच्चे २ में इतनी कटुता के साथ प्रविष्ट होगया, कि, रूस की स्थिति डांवाडोल हो उठी!

उग्र साम्यवादियों की दल-बन्दियों ने भी मज़दूर-दल (Working class) में उथल-पुथल फैला दी । उधर उदार-दल (cadets) एवं अनुदार-दल (conservatives) के लोगों ने भी सुधार के लिए अपनी २ दल-बन्दियाँ कर डालीं। एक प्रकार से राजनैतिक जीवन की जागृति का यह युग रूस के लिए अत्यन्त महत्व का था।

रूस-जापान युद्ध के समय एक नई लहर उठी। बहुत से रूसियों में तो यहां तक द्रोह और अराजकता के भाव फैल गये थे कि, कोरिया और मंचूरिया में वे जापान का राज्य देखना अधिक पसन्द करने लगे !

संसार-प्रसिद्ध काउन्ट टालस्टाय ने भी ज़ार को अत्याचारों की इस भरमार से सचेत किया। पर फल कुछ भी नहीं हुआ। (काउन्ट टालस्टाय ने संसार में "निष्क्रिय प्रतिरोध" को सब से पहिले जन्म दिया था। यूरोप के साम्यवादी उन्हें अब भी बहुत ऊंचा स्थान देते हैं।) युद्ध में रूस की पराजय हुई, इस से सुधारकों को सन्तोष हुआ। वान प्लीव (ज़ार का अर्थ सचिव) जो उस समय दमन-नीति का स्तम्भ बन रहा था, १९०४ में एक बम द्वारा मार डाला गया।

* * * * * *

"Where, owing to the reign of despotism, no

बालवृद्धों को टुकड़ों २ में काट कर बिछा दिया। "लाल इतवार" के नाम से यह दिन अब भी रूस के इतिहास में प्रसिद्ध है। अपढ़ और ग़रीबों के इस क़त्ल पर पेट्रोग्राड की पठित जनता अत्यन्त क्षुब्ध हुई और उसने तुरन्त इस घोषणा को निर्भीकता-पूर्वक घोषित किया:-

"सर्वसाधारण को जान लेना चाहिए कि रूसी सरकार ने रूसी जनता मात्र से युद्ध छेड़ दिया है। अब इस में तनिक भी सन्देह नहीं रहा है। जो सरकार सिवा तलवार और बन्दूक के प्रजा से बातचीत ही करना नहीं जानती, वह स्वयं—निन्दित है। हम रूस के समस्त कार्यशील दलों को उन ग़रीबों की सहायता के लिए आमन्त्रित करते हैं, जिन्होंने सर्वसाधारण के ध्येय को सामने रख कर अपनी लड़ाई आरम्भ की है। धिक्कार है उन आदमियों को जो इन राष्ट्रीय युद्ध के दिनों में जनता को छोड़कर जल्लादों का पक्ष लें।"

इस घोषणा का फल अत्यन्त कटु हुआ। फिर बहुतेरे प्रसिद्ध लेखक और राजनैतिक नेता गिरफ़्तार किये गये, उन्हें घोर दण्ड दिया गया और 'ज़ारडम' का अत्याचार बढ़ा। पर, जनता पर इस घोषणा का प्रभाव अच्छा पड़ा। लोग निर्भीक हो गये और सारे यूरोप में राजनैतिक स्वत्वों की मांग तथा अत्याचार के विनाश के भाव दृढ़ता से फैल गये, और उत्साही देश-भक्तों ने अपने प्राणों का मोह छोड़ दिया!

अन्त में, स्थिति का कुछ विचार कर के, अगस्त १६०५ में

(१) क़ैदी ज़ार—प्रजातंत्रीय सरकार द्वारा कड़े पहरे में रक्खे गये और तत्पश्चात् सपरिवार मार डाले गये।

(११) प्रिन्स लौफ़, प्रजातंत्र का प्रधान मन्त्री ।

सिंहावलोकन

संसार के इतिहास में प्रत्येक जाति ने कभी न कभी सर्वव्यापी काम किये हैं। और, कहा नहीं जा सकता कि कब और किस प्रकार कौन जाति संसार को किस नये संदेश से भर दे। आज जो रूस संसार को पवित्र और मुक्तिदायी संदेश से पूरित कर रहा है, किसी समय में एक निर्जन जंगली और पहाड़ी स्थान था! उसी भाँति निर्जन, जिस प्रकार एक समय में सारा यूरोप।

पता नहीं कब और कैसे, स्लाव जाति (Slavs) दक्षिणी रूस की 'विस्चुला' तथा 'नीपर' नदियों के किनारे जा बसी थी। उसके वहाँ बस जाने की तारीख़ इतिहास की पहुंच से परे है। ये स्लाव लोग लैटिन्स, केल्ट्स तथा जर्मनों की भाँति ही गोरे-चिट्टे थे। मध्य-एशियाई तातार तथा मंगोल जातियों से इन लोगों का चेहरा-मोहरा नहीं मिलता था, यद्यपि इतिहास-कारों का यही निश्चय है कि यूरोप की सारी जातियाँ मध्य-एशिया से ही गई हैं। आठवीं सदी से, कहा जाता है कि, स्लाव लोग दक्षिणी रूस में बसे हुए हैं।

क्रान्ति का लाल झण्डा !

ड्यूमा जाग उठी !

शुक्रवार की रात्रि एक प्रकार से क्रान्ति की जननी थी, क्योंकि उस रात्रि में स्थान २ पर मज़दूर-दल की बड़ी २ निर्णयकारी सभायें बैठीं, और उन में यह तय पाया कि, बिना भोजन के कोई काम नहीं कर सकता, अतः काम पर कोई न जाय।

जैसे-तैसे शनिवार १० मार्च का प्रातःकाल आया। फिर नगर में स्थान २ पर भुक्खड़ों की भीड़ एकत्रित होने लगी। आज खुले मुक़ाबिले की आशंका थी, और रूस की निरस्त्र तथा निस्सहाय सन्तति अपने प्राणों का बलिदान देकर लोकसत्ता के पवित्र-मन्दिर में प्रवेश करने के लिए कटि-बद्ध हो चुकी थी। लोगों को अपनी २ रक्षा के भाव ने एकत्रित रूप में रखने की प्रेरणा की, अतः एक २ स्थान पर बड़ी २ भीड़ें लग गईं। पर, इतने पर भी 'कौसक' सैनिकों में जनता के प्रति सहानुभूति का भाव था।

दोपहर तक, समस्त पेट्रोग्राड में हड़ताल व्याप गई। 'नेवस्की' सड़क के चारों तरफ विद्यार्थियों तथा स्त्रियों की भीड़ थी, थोड़ी देर में मज़दूर लोग भी उसी दल में जा मिले। भीड़ के कारण ट्राम-कार बिल्कुल बन्द हो गई थी, और बग्घी-गाड़ियाँ भी एक दम रुक गई थीं। एक हिस्से

ग्यारहवीं सदी में उन्होंने कीव नगर में अपना राज्य स्थापित किया। यूरोप में, उस समय कीव नगर एक राजनैतिक केन्द्र समझा जाता था। उस समय सभ्यता और शासन की दृष्टि से रूस का दक्षिणी भाग फ्रांस या इंगलैंड से पिछड़ा हुआ नहीं था। यदि इसी बीच में एशियाई तातार जाति का रूस पर आक्रमण न हो गया होता, तो रूस अन्य यूरोपीय राज्यों की अपेक्षा इतना पिछड़ न जाता।

तेरहवीं सदी से सोलहवीं सदी तक, रूस पर मंगोल जाति के आक्रमण होते रहे, और दक्षिणी रूस पर उनका कब्ज़ा रहा। इसके बाद, स्लाव लोग उत्तर की तरफ फैलने लगे। धीरे २ मंगोलों का राज्य उखड़ गया और स्लाव लोग उत्तर और दक्षिण में बस गये, इस प्रकार इनके दो स्वाभाविक विभाग होगये। उत्तर के 'बड़े रूसी' (Great Russians) और दक्षिण के 'छोटे रूसी' (Little Russians) कहलाने लगे।

'बड़े रूसी' अधिक चलते-पुरजे थे। वे उत्तर, पश्चिम तथा पूर्व में दूर तक फैले। पूर्व से होने वाले आक्रमणों को भी उन्होंने ही रोका। सारे यूरोप को मंगोलों और तातारों के आक्रमणों से बचाने में रूसियों ने ही काम किया था। अन्त में, सोलहवीं सदी में वे पूर्णतः सफल हुए और तातार लोगों का पूर्वी यूरोप में आना सदा के लिए बन्द हो गया।

परन्तु, रूसियों की इस बड़ी सेवा के प्रति बहुत कम इतिहास-कारों ने ध्यान दिया है। विशेषतः अङ्गरेज़ लेखकों ने तो नितान्त उपेक्षा की दृष्टि से रूसियों की इस महती सहा-

स्थानों में लोग बड़ी भीड़ के साथ एकत्रित होने लगे। पुलिस को आज्ञा दी गई थी कि, सडकों पर से और वर्जित स्थानों में से भीड़ निकाल बाहर की जाय। पुलिस ने सरकारी हुक्म की तामील की। और उसी ढङ्ग से, जिस ढङ्ग से उसे ऐसा करना मालूम था, अर्थात् गोली चलाकर! यद्यपि सब लोगों पर एकबारगी गोलियाँ नहीं छोड़ी गईं, पर एक घंटे के भीतर लगभग २०० स्त्री-पुरुषों की लाशें भूमि पर लोटने लगीं। एकबार नगर भर में फिर सन्नाटा छा गया, लोग कुछ क्षोभ-भरी दृष्टि से एक दूसरे की ओर देखने लगे। पर शीघ्र ही, जनता में पुनर्जीवन का आविर्भाव हुआ।

एक घटना और घटित हुई, और उससे सर्वसाधारण में दृढ़ता और उत्साह की बाढ़ आगई।

'ड्यूमा' की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बैठक हुई, और उसके सभापति मोशिये 'रोडजिन्को' ने, जो कि, एक ज़बर्दस्त और निर्भीक प्रजावादी देशभक्त पुरुष हैं, सीमान्त पर गये हुए जार को निम्न लिखित तार दिया:—

"स्थिति नाज़ुक है। राजधानी में अराजकता व्याप गई है, गवर्नमेंट किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो रही है। खाद्य-सामिग्री की आमद, तथा मार्ग एवं रेल-तार बिल्कुल बन्द हो गये हैं। असन्तोष बढ़ता ही जा रहा है। सड़कों पर गोलियां दागी जा रही हैं, बहुत सी सेनायें एक दूसरे पर ही गोलियां चला रही हैं! यह अत्यन्त ज़रूरी है कि, सर्वसाधारण के किसी विश्वासी पुरुष के हाथ में नई सरकार का भार सौंपा जाय, अब समय के खोने का अवसर नहीं है। ज़रा सी भी देर में भयानक से भयानक घटना घटित हो सकती

यता को देखा है। मि० स्टेट का कहना भी ठीक है। उन्होंने एक पुस्तक की भूमिका में अङ्गरेज़ों की इस संकीर्ण-हृदयता का वर्णन करते हुए स्पष्टतः लिखा है कि—"रूस की मानव-जाति के प्रति की गई सेवाओं तथा राष्ट्रों की स्वाधीनता के लिए की गई कोशिशों को उपेक्षा की दृष्टि से देखने की आदत अङ्गरेज़ लेखकों में बड़ी बुरी तरह से पड़ गई है।"

सोलहवी सदी में रूसियों ने मास्को नगर में एक विशाल राज्य की स्थापना की। पर समस्त सोलहवीं सदी भर रूसी आस-पास के राज्यों से ही लड़ते रहे। पोलैंड का राज्य भी उस समय बलवान हो चुका था, उसमें रूसी लोग ही बसे हुए थे, और ये पोलैंड के रूसी लोग भी बाहरी हमलों की रोक में वीरता से लड़ते थे। 'इवान दि टेरिबिल' नामक पहिले राजा ने १५४५ में अपने को 'ज़ार' नाम से घोषित किया।

'इवान दि टेरिबिल' रूस का बड़ा ज़बर्दस्त राजा था। सेना का संगठित रूप उसके ही समय से रूस में हुआ।

इसके बाद 'पीटर दि ग्रेट' का शासन-काल विशेष उल्लेखनीय है। शासन-व्यवस्था की दृष्टि से पीटर ने अच्छा काम किया। यूरोप के अन्य राष्ट्रों का भी विकाश हो चुका था। जर्मनी का राज्य इस समय सारे यूरोप में आतंक फैला रहा था। उधर स्पेन, इंगलैंड आदि में भी नवीन शासन-प्रणाली का प्रस्तार हो रहा था। पीटर ने भी यूरोपीय शासन-प्रणाली का आश्रय लिया और रूस में उसे विकास दिया। रूस की रक्षा के लिए उसने बहुत बड़ी सेना तैयार की। इस सेना की तैयारी में पीटर ने एक अच्छी चाल चली।

१४, मो० गचकाफ, प्रजातंत्र का युद्ध मंत्री.

रूस ऐसे विशाल देश में उसकी स्कीम सफल भी खूब हुई। उसने ज़मींदारियाँ बाँट २ कर और इस प्रकार के भूमि-प्राप्त ज़मीन्दारों को 'वचन-बद्ध सैनिक' बनाकर एक विशाल सेना बना डाली। पीटर ने तो अपनी सेना के निर्माण के लिए ज़मीन्दारियों का दान दिया था, परन्तु आगे चलकर इस ज़मींदारी शासन के कारण ही यूरोप में अत्याचार का स्थायी राज्य स्थापित हो गया। ये 'ज़मींदार-सैनिक' किसी प्रकार की सैनिक शिक्षा प्राप्त नहीं करते थे, और साल भर में बहुत थोड़े दिनों के लिए ये वचन-बद्ध सैनिक अपने राजा की राजधानी में जाते थे। जब किसी युद्ध के लड़ने की ज़रूरत होती थी, तब इनकी पुकार होती थी, और इनके झुण्ड के झुण्ड राजा की सेना बन कर युद्ध लड़ते थे। जिन दिनों में युद्ध आदि नहीं होता था, उन दिनों में, ये लोग अपनी २ ज़मींदारी की वसूलयाबी करते थे। परन्तु, बड़े आश्चर्य्य की बात यह होती थी, कि, पोलैंड के निवासी की ज़मींदारी उकरेनिया और उकरेनिया के निवासी की ज़मींदारी साइबेरिया में होती थी। इसका फल यह होता था कि, साल भर में सिर्फ़ एक बार ज़मींदार लोग अपनी ज़मींदारी के स्थानों में जाते थे, और अत्यन्त परिमित समय के भीतर अपनी वसूलयाबी करके लौट आते थे। एक तो सैनिकता के मद में चूर, दूसरे अन्य प्रान्त के निवासी, ये ज़मींदार किसानों के साथ बड़ी बेदर्दी के साथ पेश आते थे! बस, इसी अत्याचार का स्थायी रूप 'ज़मींदारों का शासन' किसानों के चिर-दुःख का मूल कारण रहा! सैकड़ों वर्ष तक यह अत्याचार का शासन रूस में रहा।

कैथराइन 'द्वितीय' के समय से, प्रजा के दुःखों की तरफ़ ध्यान दिया जाने लगा। यद्यपि कैथराइन ने शासन की कोई

यदि यह आन्दोलन केवल व्याख्यानों और प्रस्तावों तक
ही परिमित रहता, तो रूस की आगामी दुरवस्था के दिन इतने
भयङ्कर न होते, पर कौंसिल के कुछ साम्यवादी प्रतिनिधियों
ने जब देखा कि, अस्थायी सरकार युद्ध को जारी रखने के
ही पक्ष में है, तो, उन्हों ने खुल्लमखुल्ला सीमान्त पर के सैनिकों
को यह शिक्षा देनी आरम्भ की कि, "युद्ध बन्द करने के लिए
सैनिक लोग स्वयं जर्मन सेनाओं से सन्धि कर लें!" यह
बड़ी भयङ्कर घटना थी, और सचमुच में, इस आन्दोलन ने
नवीन रूस की सैनिकता को एक दम नष्ट कर दिया। कई
रणक्षेत्रों पर रूसी सैनिकों ने सफेद झण्डे फहरा कर जर्मन-
सेनाओं से लड़ाई बन्द कर दी। इस उदाहरण से समस्त
रूसी रणक्षेत्र शिथिल पड़ गये। उधर सीमा पर के सैनिकों में
शान्ति स्थापन और युद्ध बन्द करने का भाव फैलाया जा
रहा था, और इधर 'मजदूर-सैनिक कौन्सिल' ने नई सरकार
से यह ज़िद की कि, मित्र-राष्ट्रों के साथ की गई पुरानी गुप्त
सन्धियाँ प्रकट कर दी जाँय। पर साम्यवादियों को इस
बात का ध्यान नहीं था, कि, इन गुप्त सन्धियों के प्रकट कर
देने से शत्रु को कितनी बड़ी सहायता मिल जायगी।

परराष्ट्र-सचिव मिल्यूकाफ़ इस आन्दोलन के विरुद्ध थे,
और उन्हें इस आन्दोलन का प्रतिफल तुरन्त सूझ गया।
उन्होंने गुप्त सन्धियों के प्रकाशित करने का घोर विरोध किया
और साथ ही कुस्तुन्तुनिया (टर्की) तथा दर्रा दानियाल
के रूस के क़ब्जे में आ जाने की बात पर जोर डाला। पर
साम्यवादी नेताओं के आन्दोलन ने एक बार फिर देश के
सामने महान संकट की स्थिति उत्पन्न कर दी। साम्यवादी
लोग "किसी भी तरह" संधि के पक्ष में थे

नई स्कीम अपने सामने नहीं रखी, तथापि उसने वुद्धिमत्ता से थोडा वहुत काम लिया। फ्रांस और इंगलैंड की देखादेखी उसने 'स्थानिक स्वराज्य' का प्रसार किया। जिले २ में शासन-विभाग को सम्मति देने के लिए वोर्ड स्थापित किये गये। परन्तु, प्रजा को इन वोर्डों से कोई लाभ नहीं हुआ! इन वोर्डों में अर्ध-सरकारी सैनिक-समुदाय के ज़मीदार ही रखे गये, इस प्रकार ज़मींदार किसानों को और भी प्रपीड़ित करने लगे, क्योंकि, अब उन्हें शासन में सम्मति देने के भी अधिकार प्राप्त हो गये थे, अतः उन्हें ऊपरी अधिकारियों की डॉट-फटकार का भी भय नहीं रहा था। प्रजा को जो कुछ सुनवाई होती थी, रहा-सहा उसका मार्ग भी वन्द हो गया! आगे चल कर प्रान्तिक शासन की रचना हुई। आरम्भ मे ४० प्रान्त वनाये गये और गवर्नरों की नियुक्ति की गई। इसके वाद ७८ प्रान्त रचे गये। गवर्नर की सहायता के लिए एक २ कौंसिल भी रक्खी गई थी। पर, इसके सदस्य प्रजा के प्रतिनिधि नहीं कहे जा सकते थे। जिलों का शासन 'इन्स्प्रेवनेक' (InSpravnik) नामक पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट तथा 'जेम्स्की नेकल्नेर्वी' यानी डिस्ट्रिक्ट वोर्ड द्वारा होता था।

ज़ार की कौंसिल, ज़ार के सामने कोई वस्तु न थी। ज़ार निरंकुश तथा स्वच्छन्द शासक की भाँति रूस पर शासन करता था।

१८६४ मे ज़ार एलेक्ज़ेण्डर 'द्वितीय' ने पञ्चायतों की रचना की। पञ्चायतों में किसानों के भी प्रतिनिधि मिल गये। जिले की पञ्चायत द्वारा प्रान्तिक प्रतिनिधियों की

सार्वजनिक जीवन में २५ वर्ष तक उन्होंने बड़ी वीरता से काम किया था। १८८६ में, यूनिवर्सिटी की शिक्षा प्राप्त कर चुकने के के बाद से ही मिल्यूकाफ ने देश की ओर अपना कर्तव्य निवाहना आरम्भ कर दिया था। मास्को यूनिवर्सिटी में ऐतिहासिक व्याख्याता की हैसियत से उन्होंने जो विचार समय २ पर प्रकट किये और छात्रों में जिन भावों का बीज वपन किया, वह साधारण बात नहीं थी। जार का अधिकारी-तंत्र उन भावों के सहन कर सकने में पूर्णतः अशक्त था, अतः मिल्यूकाफ को १८८८ में रूस छोड़ देना पड़ा। आस्ट्रिया के 'सोफिया' नगर में जाकर उन्होंने फिर प्रोफेसरी करली, और इतिहास पर व्याख्यान देते रहे। १८८६ में उन्हें फिर रूस में आ जाने की आज्ञा मिल गई। इस बार मिल्यू-काफ ने, रूस में आकर साहित्यिक और राजनैतिक चर्चा आरम्भ की। "ईश्वरीय विश्व" (God's World) नामक मासिक पत्र निकाल कर उन्होंने देश की सेवा करनी आरम्भ की।

पर सच्चे देश-भक्तों का जीवन सदा खतरे में रहता है, इसी प्रकार मिल्यूकाफ़ को भी देश के लिए बहुत कुछ सहना पड़ा।

एक रात्रि में, जब कि, वह छात्र-सम्मेलन के सभापति बनाये गये, और उस सम्मेलन में, यद्यपि कोई राजद्रोही विषय पर विवाद नहीं हो रहा था, पर तो भी, पुलिस ने उन्हें एतार कर लिया, और छ मास के कारावास का दण्ड हें दिया गया।

१६०२ में मिल्यूकाफ़ अमेरिका का भ्रमण करने के लिए ये। शिकागो विश्वविद्यालय में उन्होंने रूस के ऊपर एक महत्वपूर्ण व्याख्यान-माला दी। उनकी ज़बर्दस्त स्पीचों और

पञ्चायतें बनी। पीछे, सार्व-देशिक पञ्चायत को भी जन्म दिया गया। परन्तु, इस बड़ी पञ्चायत की सुनवाई ज़ार ने कभी नहीं की। तात्पर्य यह कि, अधिकारी-तंत्र जो कुछ करना चाहता था, स्वाधीनता-पूर्वक कर सकता था, उसका हाथ पकड़ने वाला कोई नहीं था। अंत में, संसार के अन्य अधिकारी-तंत्रों की भाँति, रूसी अधिकारी-तंत्र का प्रजा-पञ्चायतों द्वारा ही बड़ी निर्दयता के साथ अंत किया गया।

अत्याचारियों की हिम्मतें एक बार फिर जगीं, पर हाँ, उन का अन्त समीप था। दूसरी और तीसरी ड्यूमा में उन्होंने सदस्य की हैसियत से देश की सेवा की, और १६१७ की क्रान्ति देखने और उसमें भाग लेने के लिए भी मिल्यूकाफ़ जीवित रहे।

धीरे धीरे उन्होंने जनता की आवाज ऊँची करने के लिए "रेच" (Retch) नामक दैनिक पत्र निकाला। इस पत्र की नीति बडी जोरदार थी, उस दमन-नीति और अत्याचार के समय में किसी की हिम्मत इतनी कड़ी बातों के कहने की नही पडती थी, पर "रेच" बराबर निर्भीकता-पूर्वक शासकों की आलोचना करता रहता था।

अन्तिम ड्यूमा में मो० मिल्यूकाफ ने ही एक जबर्दस्त व्याख्यान देकर जर्मनी से मिले हुए मन्त्रियों की पोल खोल दी थी, और जिसका फल यह हुआ कि, प्रधान-मत्री स्टर्मर को भी अपना स्थान छोडना पडा। क्रान्ति के समय में मिल्यूकाफ़ की सेवायें बहुत ऊँची श्रेणी की थीं। और, इस व्यक्ति को आत्म-विश्वास तथा भविष्य की आशा पर इतना ज़बर्दस्त विश्वास था कि, इसने कभी हिम्मत नहीं हारी।

अन्त में, नई स्वाधीनता की रक्षा के लिए ही इस देशभक्त ने पर राष्ट्र-सचिव का पद भी छोड़ दिया।

मिल्यूकाफ लोकसत्ता के संसार-प्रसिद्ध उपासक है, और आगामी संसार रूस के इतिहास का पठन करते समय बड़ी श्रद्धा के साथ इस कर्मवीर का नाम लेता रहेगा।

२—मो० माइकेल रोडज़िन्को।

पिछले अध्यायों में हमारे पाठक ड्यूमा के ज़बर्दस्त प्रेसीडेन्ट रोडज़िन्को से अच्छी तरह परिचित हो चुके हैं। यह

रूस की राज्यक्रान्ति।

रूसी किसान।

रूस की कहानी भी किसानों से आरम्भ होती है। भले ही संसार के अन्नदाता सृष्टि के आरम्भिक दिनों में सुख से रहे हों, परन्तु, जब से आर्थिक स्वार्थ-नीति का संसार में दौर-दौरा हुआ, पहिले किसान सताये गये, गुलाम बनाये गये, और सारी आर्थिक मुसीबतें उन पर ही पड़ी।

रूस के किसानों के भी अन्य मनुष्यो के से दो २ हाथ पैर थे। वे भी मनुष्य-कोटि में ही थे। वे एक दो नहीं, वरन् करोड़ों की संख्या में थे। वैसे ही अच्छे और भले जैसे अन्य मनुष्य! पर, रूस की करुण-कहानी आपको बतलावेगी कि मनुष्य की मनुष्य ने कितनी बेरहमी के साथ गर्दन नापी। जन्म से मरते दम तक, वे सुख की नींद नही सोये। उन्हें वैसा ही नाच नाचना पड़ा, जैसा उन्हें नचाया गया। यह सब उनको सहना पड़ा, जो अपने परिश्रम से अपना ही नहीं, वरन् अन्य लोगों का भी पेट भरते थे। और उन पर उन लोगों का क्रूर-शासन था, जो अधिकांश रूप में निकम्मे, मुफ़्त-खोरे और विलासिता के पुतले थे। ग़रीब किसान दीनता और नम्रता के साथ अपने क्रूर शासकों की श्रद्धा के लिए नीचे झुका, पर उसके झुके हुए सिर पर अपमान की ठोकरें मारी गईं! नृशंसता का यह दृश्य सहृदयता की धमनियों को कँपा रहा था। किसान गुलाम थे। स्वयं ज़ार उन्हें गुलाम
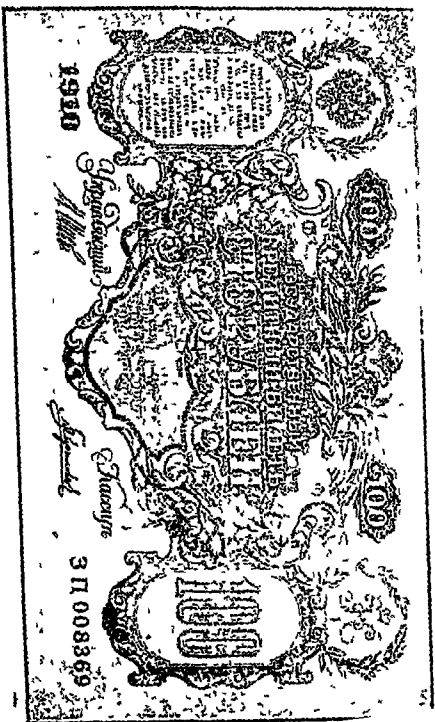
(२१) ज़ार के समय का १०० रूबल की नोट ।

बनाये हुए थे। और उन पर .गुलामी का जुँवा रखने वाले थे ज़मींदार। शताब्दियों तक ग़रीब किसान ने खून के आँसू पीकर यह सब सहा। वह बोल सकता था, पर उसमें बोलने की शक्ति नहीं थी, वह बोला, परन्तु, उसका मुँह पकड़ कर मींज दिया गया। उसके मुँह से आवाज़ निकली, किन्तु, उसके करुणा-क्रन्दन पर बेरहमों ने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। रूसी किसान एक मोल लिया हुआ .गुलाम था। मालिकों की दृष्टि में वह जानवरों से कुछ ही ऊँचा जीव था। रूसी किसान किसी राजनैतिक पराजय के कारण इस दुरवस्था को नहीं पहुंचे थे, वरन्, यह सब उन्हें आर्थिक स्थिति के कारण ही सहना पड़ा। इसके पूर्व, कि वे सरकारी क़ानून द्वारा एक बन्धन में डाल दिये गये, रूसी किसान बिना घर-बार के घूमते-घामते नागरिक थे। उनके घर बनाकर न बसने के कारण ही .गुलामी का तौक़ उन्हें पहिनना पड़ा।

पीटर 'दि ग्रेट' को योरोपीय शक्तियों से युद्ध करने के लिए एक बहुत बड़ी सेना की आवश्यकता हुई। उसने इस सेना को जुटाने के लिए एक चाल चली। सेना में भर्ती होने वालों को इसने भूमि बाँटनी शुरू की। इस प्रकार ६० लाख जमींदारियां बन गईं! ये ज़मींदार सैनिकता के मद से और भी क्रूर हो गये। फिर, इनकी ज़मींदारियों का जाल एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक फैला हुआ था। स्थूनिया का .जमींदार लिथूनियां में ज़मींदारी रखता था! इसका परिणाम यह हुआ कि: छुट्टी पाने पर साल भर में केवल एक बार वह अपनी .जमींदारी पर जाता था। और बहुत थोड़े समय के भीतर—उदाहरणतः २४ घंटे के अन्दर—वह पूरा लगान वसूल

कर लेता था। इस वसूलयावी का दृश्य अत्यन्त हृदय-विदारक होता था! और यह लोम-हर्षण अत्याचार ग़रीव किसान सहते थे, क्योंकि वे एक ज़मींदार की ज़मींदारी से निकल कर दूसरे ज़मींदार की अध्यक्षता में जाकर वस भी नहीं सकते थे, क्योंकि अत्याचारी ज़ार का क़ानून उन्हें एक ही स्थान पर वस कर रहने के लिए मजबूर किये हुए था!

ऐसा क्यों था, इसका एक कारण और है। सैनिक-सेवा के लिए ज़ार ने एक प्रकार से उक्त भूमि को सैनिकों के हाथ गिरवीं रख दिया था! क्योंकि ज़ार इन सैनिक-ज़मींदारों को किसी प्रकार की तनख्वाह नहीं देता था। ३५०६६५१८७ ईकड भूमि पर इन सैनिक-ज़मींदारों का क्रूर शासन था। जार, पहिले तो किसानों की करुण-कहानी सुनते ही न थे, और फिर सुन कर ही वे क्या कर सकते थे। सैनिकों के हाथ भूमि गिरवी थी, फिर यदि किसान को एक ज़मींदारी छोड़ कर दूसरी ज़मींदारी में वसने की इजाज़त दे दी जाती तो रूस पर आर्थिक संकट आ पड़ता। इसी कारण से ज़ार भी चुप्पी साधे रहते थे!

× × ×

अन्त में, १८६१ में, सैनिक ज़मींदारियों की इतिश्री निकट आई। वेतनभोगी सेनाओं की रचना की गई। और इस प्रकार परम्परागत ज़मींदारों के आसन डगमगाये। किसानों की ग़ुलामी का बन्धन ढीला हुआ। जिस भूमि को किसान पराई समझ कर जोतता-वोता था, वह उसे दे दी गई। और ऐसा सदा के लिए कर दिया गया। ८ ईकड़ से ११ ईकड़ भूमि तक एक २ किसान को मिली। पर, इसके

साथ ही सरकार ने उक्त भूमि का मूल्य ज़मीदारों को भी अदा कर दिया और किसानों को उक्त भूमि का मूल्य सरकार के पास किस्तों में अदा करने के लिये ४६ वर्ष का समय दिया गया। इतनाही नहीं, सरकार ने किसानों को भी इस अदायगी के लिये ६ फीसदी सूद पर रुपये उधार दे दिये। अर्थात् रूसी सरकार ने इस मामले में बैंकर का काम किया। १९०७ तक, जो कुछ किसानों से देते बना, सो उन्हों ने देदिया, इसके आगे की अदायगी मंसूख कर दीगई। शायद रूसी सरकार ने अपने समस्त इतिहास में किसानों के लिये यही एक अच्छा काम किया! परन्तु, पाठकों को स्मरण रखना चाहिये कि, किसान इस, प्राकर के भूमि के सौदे से सन्तुष्ट नहीं थे, उन्हे व्यर्थ ही ४६ वर्ष „तक लगान के अतिरिक्त किश्तों मे भूमि का मूल्य अदा करना पड़ा, वे सरकारी कतरव्योंत से असन्तुष्टथे।

भूमि के वापस मिलने के बाद भी भूमि-विभाजन का एक विचित्र प्रबन्ध किया गया। जिस घर मे जितने पुरुष जोत-बो सकते थे, उनके हिसाब से १२ वर्ष के लिये उन्हें भूमि दी जाती थी। यह 'साम्यवाद' की एक शाख़ (Communism) 'भौमिक साम्यवाद' के ढँग का बँटवारा हुआ। इंगलैंड के आनरेबिल मारिस बेरिङ्ग ने अपनी Main Springs of Russia नामक पुस्तक में लिखा है कि:—

"...After the emancipation, each batch of serfs belonging to each separate owner became a separate and independent community, which owned in common. The land which was thus owned in common could not be redistributed more than once every twelve years, and even then, only if two thirds

of village assembly voted for redistribution. A similar majority was necessary before any of the *common land could become private property*."

अर्थात्,इस मुक्ति के पश्चात् एक ज़मींदार के आधिपत्य में रहने वाले किसानों में एक स्वतंत्र गोष्ठी के रूप में, भूमि का विभाजन कर दिया गया। इस प्रकार का विभाजन १२ वर्ष के पूर्व फिर नहीं किया जाता था, वशर्ते, गांव की तीन चौथाई जनता, का पुनर्विभाजन का मत न हो। और इसी प्रकार उक्त बँटी हुई भूमि १२ वर्ष के पहिले किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति भी नहीं हो सकती थी।

कृषि-योग्य जितनी भूमि थी सब किसानों में बाँट दी गई थी। एक घर के कई आदमियों के बीच में, उपजाऊ और अन-उपजाऊ, और दोनों प्रकार की भूमि के टुकड़े बराबर बाँटे जाते थे। बीच में यदि कोई मर जाय, तो स्वामीविहीन भूमि पर घर के लोगों का ही कब्ज़ा रहता था। १२ वर्ष बाद फिर बँटवारा होता था।

१८६१ से १६०४ तक ये नियम काम करते रहे। १८६० में, अलेक्ज़ेण्डर (तृतीय) के समय में, यह एक नियम और जोड़ा गया कि, "बँटवारे की भूमि के अतिरिक्त अन्य भूमि को किसान नहीं ख़रीद सकता।" इतने समय के बीच में, कृषि की कुछ भी उन्नति नहीं हुई थी, किसानों ने इस नये नियम को अपनी भूमि-वृद्धि के लिए घातक समझा। उधर सरकार ने ज़मीन्दारों की संख्या बिल्कुल घटते हुए देखकर ही यह प्रतिबन्ध स्थापित किया था।

१६०५ में, रूस को एक-सर्वव्यापी राजनैतिक अशान्ति

का सामना करना पड़ा। इस अशान्ति के कारण लगभग एक शताब्दि हुए, तब उत्पन्न हुए थे, जिन्हें हम आगे चलकर विस्तार-पूर्वक कहेंगे। यहां पर, सक्षेप में हम केवल इतना ही कहेंगे कि, जनता राजनैतिक अधिकार चाहती थी, कई बार प्रातिनिधिक शासन की मांग की गई थी, पर सारे प्रयत्न निष्फल हुए। पुलिस के अत्याचारों और निरंकुशता से सभी लोग परेशान थे। नागरिक जीवन एक अत्यन्त संकुचित एवं पराधीन जीवन था। इस अशान्ति का एक बड़ा कारण किसानों का असन्तोष था। किसानों की माँग थी कि—"हमें और भूमि दो।"

१९०४ की अशान्ति के समय भी, १९०११ कृषक-ग्रामों में दंगे हुए! ११०९११ किसानों की गिरफ्तारी हुई। ४११ आदमियों को प्राण-दण्ड दिया गया और ९०१ आदमी साइबेरिया में तथा क़ैदखानों में डाल दिये गये! पर, साथही, किसानों ने भी जहाँ अवसर देखा, ज़मींदारों के घर जला दिये, उनके खेत नष्ट कर दिये, गोरू-हरहे हाँक दिये और अन्य नाना प्रकार की हानि पहुंचाई। इस महा अशान्ति में किसान फिर विजयी हुए! ज़मींदारों को अपनी २ भूमि में से फिर कुछ भूमि बेचनी पड़ी। इस प्रकार भूमि का एक बहुत बड़ा टुकड़ा किसानों को मिल गया। इस प्रकार जमींदारों की २५ फी सदी भूमि बिक गई।

१९१० में एक परिवर्तन और हुआ। अब एक क़ानून ऐसा बना दिया गया, जिसके अनुसार किसान अपनी गोष्ठी (Commune) भी छोड़ सकता था। अर्थात् सरकारी तौर पर १२वर्ष के लिए मिलने वाली भूमि को जोतने-बोने से भी वह छुट्टी पा सकता था और केवल अपनी मोल ली हुई भूमि को ही

जोत-बो सकता था। साथ ही, इच्छानुसार गोष्ठी द्वारा प्राप्त भूमि को मोल लेकर अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति भी बना सकता था। साथ ही यदि वह चाहता, तो उसे (Form) बनाने के लिए सरकारी मदद भी मिल सकती थी।

नये क़ानून की शब्दावली बहुत भली मालूम पड़ती थी। पर, संसार जानता है कि स्वेच्छाचारी अधिकारी-तंत्र जिस समय एक अच्छे से अच्छे क़ानून के अनुसार भी काम करने बैठता है, तो प्रजा को हानि हो होती ! रूसी अधिकारी-तंत्र ने इस क़ानून के भीतर भी एक गहरी चाल खेली। असल बात यह थी कि, रूसी सरकार किसानों के प्रश्न को राजनैतिक दृष्टि से देखती थी, और उसी दृष्टि से उसके काम भी होते थे। १२ वर्ष वाले भूमि के बँटवारे की व्यवस्था ने सरकार को कोई नुकसान नहीं पहुंचाया था, और सरकार भी यही चाहती थी कि. किसान इस बंटवारे के फेर में पड़े रहे। इसी लिए, उसने ऐसी घातें खेली जिससे किसान गोष्ठी से बाहर न निकल सकें। पर जब १९०४ में गोष्ठी-व्यवस्था (Commune) में साम्यवाद की बू आने लगी, तब तो रूसी सरकार बहुत चकराई ! तब उसने व्यक्तिगत सम्पत्ति रख सकने का क़ानून बनाया। इस ढंग से अधिकारी-तंत्र को यह आशा थी कि, गोष्ठी-व्यवस्था के पक्ष में अधिक किसान रहेंगे, और कुछ दिनों तक ऐसा हुआ भी। व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में भूमि ख़रीदने वाले किसान बहुत कम निकले। इसका कारण यह था कि, बहुत बड़ी भूमि के जोतने बोने के लिए बड़ी पूंजी की भी दरकार थी। किसानों के पास बिना धीरे २ पूंजी बढ़ाये, एक साथ बड़ी पूंजी एकत्रित कर सकने का कोई मार्ग न था। इसलिए किसान एकाएक समस्त भूमि पर

क़ब्ज़ा न कर सके। यद्यपि, सरकारी बैंकों द्वारा किसानों को अच्छी सहायता मिली थी, पर इस सहायता का फल धीरे २ ही प्रकट होगा।

रूसी किसान के सम्बन्ध में हम मुख्य २ बातें बतला चुके। राजनैतिक क्षेत्र में किसानों की क्या स्थिति थी इसे हम आगे चल कर बतलावेंगे, पर यह जान लेने योग्य बात है कि, रूस का किसान राजनैतिक व्यक्ति नहीं है। वह सिर्फ़ आर्थिक व्यक्ति है, उसका इतिहास केवल आर्थिक समस्याओं के सोपानों पर रचा गया है। और आज भी वह संसार के आर्थिक क्षेत्र में ही अपनी आवाज़ रखता है। उसकी सारी पहेलियां आर्थिक हैं, और रूस में उसने जो विजय प्राप्त की है, वह केवल आर्थिक है।

यहां पर हम एक बात और कहेंगे। रूसी किसान बहुत भोला-भाला और सरल प्रकृति का जीव है। उसका स्वभाव ही इतना मीठा है कि, उसकी ऐतहासिक दीनता का प्रत्यक्ष दर्शन हो जाता है। ईश्वर पर उसका अटल विश्वास है, और प्रत्येक काम में वह ईश्वर की इच्छा को ही प्रधान मानता है। ईश्वर के ऊपर अविश्वास करने वालों को वह बेवक़ूफ़ समझता है! वह राजभक्त इतना कहा जाता है कि, ज़ार के अत्याचारी शासन में रह कर भी, ज़ार के व्यक्तित्व को उसने ईश्वर की शक्ति से समानता दी है। पर, जब २ उसने आर्थिक प्रश्न पर दृष्टि डाली है, वह अधिकारी-तंत्र का घोर शत्रु प्रमाणित हुआ है। आगे चल कर पाठक देखेंगे कि, रूसी किसान संसार में कौन सा स्थान रखता है।

रूसी ज़मीन्दार।

(DVOrIANSTVO)

रूसी ज़मीन्दारों का इतिहास भी बड़ा ही गुट्ठल है। असल में, रूसी ज़मीन्दारों की सृष्टि उस समय से हुई, जब, रूसी सरकार ने सैनिक सेवा तथा सिविल सर्विस के लिए लोगों को कुछ पद दिये और साथ ही कुछ भूमि भी दी। इस प्रकार पद, भूमि और कुछ स्थायी अधिकारों की प्राप्ति करने के बाद, रूसी ज़मीन्दार की सृष्टि हुई। इनके अतिरिक्त कुछ स्वतन्त्र भूमि रखने वाले ज़मींदार भी थे, पर रूसी किसानों और ज़मींदारों का जहाँ २ वर्णन आया है, सरकारी ओहदा पाने वाले ज़मींदारों से ही तात्पर्य रहा है। यूरोप में, 'रूसा ज़मींदार' एक बहुत पुराना फिर्क़ा है। अभी तक उनके वंशज विद्यमान रहे हैं। रूसी क्रान्ति के पश्चात उनकी क्या दशा हुई, यह अभी प्रकट नहीं हुआ है।

ज़मीन्दारों से ऊंचे पदों पर भी कुछ लोग बहुत पुराने समय में थे। ये जागीरें (Principalities) पूर्व समय में 'कीव' (Kiev) नगर की राजधानी की अध्यक्षता में थीं, जब ज़ार की राजधानी मास्को में उठकर चली गई, तब उक्त जागीरों का सम्बन्ध मास्को से होगया। पर मास्को में राजधानी के पहुँचने के बाद ये जागीरें सरकारी प्रान्तों में सम्मिलित कर ली गईं। जागीरों के टूटने पर भी 'प्रिंस' (जागीरदार) का उपाधि परम्परागत बनी रही और अब तक बनी हुई है। जागीरों के टूट जाने से 'प्रिन्स' उपाधि-धारी लोग पूर्ण

स्वतन्त्र होगये और उन्होंने सार्वजनिक आन्दोलनों में भी भाग लेना आरम्भ कर दिया ।

इन प्रिन्सों के सिवा दो उपाधियाँ और चली थीं । 'ग्राफ' (Grof=Count यानी काउन्ट) तथा 'वैरन' (Baron) नामक उपाधियाँ भी कुछ ख़ान्दानों को परम्परागत रूप से प्राप्त थीं । पर ये दोनों शब्द जर्मन भाषा से लिये गये हैं, क्योंकि, रूसी भाषा में इन के पर्य्यायवाची शब्द नहीं मिलते । ये उपाधियाँ ज़ार द्वारा दी गई थीं, या फिर अन्य देशों से आये हुए प्रवासी-वंशों के साथ जुड़ी हुई थीं ।

जागीरदारों के जो ख़ान्दान अब तक मशहूर हैं, उनके नाम के पीछे डलगोरुकी, वरियाटिन्स्की, ओब्लेन्स्की, गोर्चकाव, खोवन्स्की, गलिट्ज़िन, ट्रोवस्कोय आदि पद लगे रहते रहते हैं । रूसी क्रान्ति में कई ऐसे नाम आये हैं । जागीरदारों के प्रत्येक वंशज के नाम में ये शब्द जुड़े रहते हैं । इसका कारण यह मालूम पड़ता है कि, रूसी गृहस्थी में समाना-धिकार (Democracy) सदा से रहा है । इसी कारण से उपाधियां भी केवल घर के मुखिया के नाम में न जुड़-कर सभी स्त्री-पुरुष वंशजों के नाम के पीछे जुड़ती रही हैं ।

रूसी क़ानून की दृष्टि से स्त्री को अपनी पैत्रिक सम्पत्ति में से चौदहवां हिस्सा मिलता है, पर पति के जीवित रहते हुए भी स्त्री अपनी निज की सम्पत्ति पर व्यक्तिगत रूप से पूरा अधिकार रखती है ।*

---

* फ्रांस में स्त्रियों को यह अधिकार नहीं है ।

पेट्रोग्राड
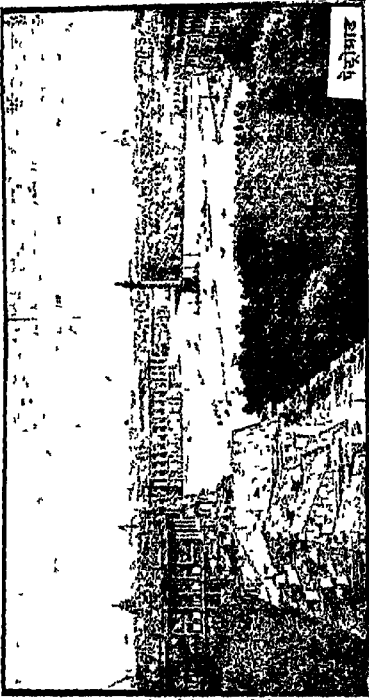
इस प्रकार ज़मींदार, जागीरदार, काउन्ट तथा बैरन ये तीनों फिरक़े मिलकर रूसी ज़मींदार का रूप रखते हैं। इन तीनों का रूसी सरकार से कुछ न कुछ सम्बन्ध रहा है। रूसी ज़मींदार की दूसरी परिभाषा इस प्रकार से हो सकती है:—

(१) रूसी ज़मीन्दार सरकारी नौकर रहा है।

(२) कोई भी मनुष्य सरकारी नौकरी प्राप्त कर सकता था, यदि वह सैनिक सेवा या सिविल सर्विस की परीक्षा पास कर चुका है।

(३) सरकारी ओहदा पाने पर, कुछ परम्परागत अधिकार भी मिलते रहे हैं।

(४) जागीरों की माफ़ी के ढंग की रूस में कोई व्यवस्था नहीं रही है।

ऊपर हम कह आये हैं कि, जब से ज़ार को सैनिकों की आवश्यकता हुई थी, तभी से ज़मींदारों की सृष्टि आरम्भ होती है। अब देखना यह है कि, ये ज़मींदारियाँ कहां से पैदा हुईं।

तातारी हमले के पहिले, (जब इंगलैंड में नारमन लोग विजय प्राप्त करके राज्य कर रहे थे) रूस में कोई सम्राट् न था। छोटे २ प्रदेश जागीरों में बँटे हुए थे। इनके स्वामी 'प्रिंस' यानी राजा कहलाते थे। इनकी सेना में वेतन-भोगी सैनिकों के स्थान में 'अनुयायी-दल' रहते थे। इनको अस्थायी तौर पर भूमि मिलती थी। पर, साथ ही इन अनुयायियों को इतनी स्वतंत्रता प्राप्त थी, कि, वे एक राजा को छोड़ कर दूसरे राजा से

सम्बन्ध जोड़ लें। इस स्वतंत्रता का फल यह होता था कि, अनुयायीदल अमीर और पराक्रमी राजाओं के यहाँ ही रहने लगते थे। यद्यपि 'कीव' के राजा ने अपने को 'ज़ार' के नाम से प्रसिद्ध कर रखा था, पर उसकी संरक्षा में ही समस्त जागीरें थी। जब ज़ार की राजधानी मास्को में उठ गई और ज़ार को उत्तरी रूस में बहुत सी भूमि प्राप्त होगई, तो उसने अपने अनुयायियों को ज़मीदारियां बांटनी शुरू करदी। इस व्यवस्था से अन्य जागीरें टूट २ कर ज़ार के हाथ में आने लगीं। जागीरों का अन्त धीरे २ इस प्रकार हुआ और उधर ज़ार ने अस्थायी रूप से ज़मींदारियाँ बाँटकर सरकारी नौकरियों की स्थापना की।

इस ढंग से प्रत्येक जागीरदार द्वारा सीमाओं की रक्षा भी होती जाती थी, सेना के लिये भी मनुष्य मिल जाते थे और ज़ार इस प्रकार एक ढेले से कई शिकार मार दिया करते थे।

सोलहवीं शताब्दि में यह नियम लागू होने लगा कि, जो आदमी परम्परागत ज़मींदारी चाहे वह आजन्म ज़ार की नौकरी करे। अर्थात् ज़मीदारी को अपनी अस्थायी ज़मींदारी पर तभी स्थायी कब्ज़ा मिल सकता था जब वह ज़ार की आजन्म नौकरी करता रहे।

रूस में एक बात यह विशेष है कि ज़मींदारों के नाम किसी गढ़, जागीर या स्थान विशेष की अल्ल के साथ नहीं चलते थे।

× × × ×

इस अवस्था के बाद, ज़मीन्दारों की एक अवस्था और आई। सरकारी नौकरी करते रहने वाले ज़मीन्दारों ने अपनी अस्थायी ज़मीन्दारी को स्थायी बनाने के लिए अपने पदों पर क़ायम रहना लाज़िमी समझा। इस के लिए उन्होंने अपनी

सन्तान को भी अपने जीवित रहते ही अपने सरकारी ओहदों पर नियुक्त कराना शुरू कर दिया। इस प्रथा के कारण यह रीति काम में आने लगी कि, सरकारी नौकरों के इम्तहान पास-शुदा लड़के अपने पिता के स्थान पर नियुक्त होने लगे। इस भांति सरकार द्वारा दी गई ज़मींदारी स्थायी तौर पर उन्हें मिल गई।

इवान 'दि टेरिबिल' (१५४७) के समय तक सरकारी नौकरी करने वाले इन ज़मीन्दारों के जत्थे बन गये और धीरे२ वे व्यक्तिगत रूप से एक विशेष व्यक्तित्व रखने वाले हो गये। तात्पर्य यह कि, सरकार पर यह भार सा पड़ गया कि, ज़मीन्दारों की सन्तानों को ओहदे देने पड़ें। इवान 'दि टेरिबिल' ने इस में बहुत बड़ी हानि यह देखी कि, रूसी ज़मीन्दार एक ऊँचा श्रेणी के पुरुष कहलाने लगे हैं, और इनके अनुभव-हीन लड़के एक साथ ऊँचे ओहदों पर नियुक्त करने पड़ते हैं। ज़ार इवान ने इस व्यवस्था को एक दम तोड़कर ज़मीन्दारों के ग्रेड (पद) का महत्व कम कर दिया। इस के बाद पीटर 'दि ग्रेट' ने ज़मींदारों के सरकारी नाम 'बायर' (Boyer) को भी मिटा दिया।

इस प्रकार सर्वसाधारण से एक दर्जे ऊँचे कहलाने वाले ज़मीन्दार सरकारी दृष्टि में फिर मामूली हैसियत के रह गये। पर उनकी ज़मीन्दारी उन्हीं के पास बनी रही।

पीटर 'दि ग्रेट' के बाद सरकारी नौकरियों के लिए कुछ परीक्षायें नियुक्त हो गईं। क्रमशः इन परीक्षाओं की व्यवस्था के अनुसार ऊँचे और नीचे पद दिये जाने लगे। परन्तु, यूनीवर्सिटी का परीक्षायें पास करने वाले छात्र को उच्च से

उच्च पद के पाने का पूरा अवसर प्राप्त था। रेलवे-डिपार्टमेंट में एक क्लर्क बनकर धीरे २ उन्नति करने वाले व्यक्ति को अर्थ-सचिव और फिर प्रधान मन्त्री तक बन सकने का द्वार खोल दिया गया था।

पीटर 'दि ग्रेट' के बाद गद्दी पर बैठने वाले ज़ारों ने धीरे २ ज़मीन्दारों की अनिवार्य सरकारी नौकरी की नीति तोड़ दी था। पर कैथराइन 'द्वितीय' ने ज़मीन्दारों को फिर एक विशेष फिरक़ा बना दिया। उसने स्थानिक शासन-व्यवस्था की दृष्टि से ज़मीन्दारो को सरकार और जनता के बीच में मध्यस्थ शक्ति के रूप मे स्थापित किया। आगे चल कर यही व्यवस्था अधिकारीतंत्र का एक मुख्य अंग हो गई और रूसी क्रान्ति का एक मुख्य कारण भी हुई।

ज़मीन्दार लोग स्थानिक पंच या जज बनाये जाने लगे. शासन कार्य के लिए उन्ही में से एक व्यक्ति 'मार्शल' (मैजिस्ट्रेट) चुना जाने लगा। प्रान्तिक शासक के स्थान पर भी ज़मीन्दार-श्रेणी मे से ही लार्ड-लेफ्टीनेन्ट हर तीसरे वर्ष चुने जाते थे और चुनने वाली जनता नही, वरन् केवल ज़मीन्दार लोग ही होते थे! कैथराइन की यह कल्पना कि ये मार्शल तथा लार्ड-लेफ्टीनेन्ट सरकारी शासकों अर्थात् गवर्नरों की शक्ति को प्रभावित रक्खेंगे, आगे चलकर झूठी उतरी जनता के साथ यह घोर अन्याय किया गया था कि, उसकी सम्मति इन चुनावों में कभी नही ली गई। सम्भवतः इसी लिए मार्शल तथा लार्ड लेफ्टीनेन्ट की शक्ति का प्रभाव बढ़ न सका! और प्रान्तिक शासकों तथा जनता,

अलग करनी पड़ती थी। दक्षिण रूस में तो यह गुलामी खुले शब्दों में सम्बोधित की जाती थी।

किसानों को सरकारी तौर पर भूमि बँटने लगी थी सही, पर इस अवस्था में भी किसान निजी तौर पर भूमि नहीं ख़रीद सकते थे। भूमि की स्थायी मिलकियत का क़ानून सिर्फ सरकारी नौकरी करने वाले ज़मींदारों के लिए ही था। १८६१ में, यह बन्धन टूट गया।

भूमि की मिलकियत का द्वार सब लोगों के लिये खुल जाने से आधे ज़मीन्दार लुप्त हो गये! इस के बाद जो ज़मीन्दार हुए, वे मिश्रित श्रेणियों के थे। इस मिश्रित समुदाय में वे व्यापारी लोग भी शामिल हो गये, जो केवल व्यापार की दृष्टि से अपनी पूंजी फंसा कर भूमि लगान पर लिए हुए थे। अब वे भी स्वतंत्रता-पूर्वक भूमि ख़रीद सकते थे। १८६१ से १९०४ तक इस प्रकार के ज़मीन्दारों का प्रभुत्व रहा, पर पहिले जैसा हम कह आये हैं, किसान अपनी ग़रीबी के कारण ज़मीन्दार नहीं बन सके। एक ज़मींदार गये तो दूसरे आये। अंतर केवल इतना था कि, नये मिश्रित ज़मींदार लोग विशेष अधिकार नहीं रखते थे और इसलिए किसान उनके गुलाम बन कर नहीं रह सकते थे।

१९०५ में, किसानों को अस्थायी तौर पर दी गई भूमि सदा के लिए दे दी गई और 'गोष्ठी' (Commune) की व्यवस्था के अनुसार १२ वर्ष के बंटवारे की व्यवस्था भी टूट गई। किस्तों में सरकारी ऋण अदा करने की प्रथा भी समाप्त की गई और शेष ऋण मंसूख़ कर दिया गया।

इस प्रकार रूसी ज़मींदार एक ऐसे उद्भव से उत्पन्न हुआ

जब कि उसे सरकारी नौकरी (सेना और सिविल सम्बन्धी काम) कर के भूमि प्राप्त होती थी। स्थायी तौर पर उसे भूमि नहीं दी जाती थी, पर क्रमशः उसकी सन्तान को भी नौकरी के वे ही ओहदे दिये जाने लगे थे जो उनके पिता और पूर्व-पिताओं को प्राप्त थे। इसके बाद पीटर 'दि ग्रेट' ने इस विशेष अधिकारों की व्यवस्था तोड़ दी और धीरे धीरे रूसी ज़मींदारों की सरकारी नौकरी की अनिवार्य्यता भी भंग हो गई। बस, इसी समय से उनकी ज़मींदारियां छिन गईं और सरकारी क़िस्तों पर किसानों में बाँटी जाने लगीं। इसके पश्चात भूमि ख़रीदने का अधिकार समस्त समुदायों के लोगों को प्राप्त हो गया।

रूसी राज्य क्रांति के पूर्व, मिश्रित समुदाय के लोग भूमि ख़रीद सकते थे। पता नहीं, रूसी क्रांति के पश्चात ज़मींदारों के सम्बन्ध मे 'बोल्शेविक' सरकार ने क्या व्यवस्था दी है।

रूसी शासन।

ज़ार।

रूसी राज्य-क्रान्ति का इतिहास कहां से आरम्भ होता है, इस बात को पाठकगण पिछले दो अध्यायों को पढ़कर समझ गये होंगे। क्रान्तियां क्षणिक घटनाओं से सम्बन्ध नहीं रखतीं। उनका उद्भव सुदूर-वर्ती घटनाओं और उनके क्रम से होता है। जब घटनायें एक विस्फोटक केन्द्र पर पहुँच जाती है, तब ज्वालामुखी की भाँति क्रान्ति फूट पड़ती है! रूसी राज्यक्रान्ति के इतिहास को इतने पीछे से उठाने का हमारा यही उद्देश है। हम पाठकों को यह दिखलाने के प्रयत्न में हैं कि, जब एक देश में क्रान्ति का जन्म होता है, तब उसके कारणों का आरम्भ कहाँ से और कैसे होता है। अभी हमें इन उद्भवों में से कई एक को दिखलाना है। रूसी किसान, रूसी ज़मीन्दार, रूसी अधिकारी-तंत्र, ज़ार, रूसी पूंजी वाले तथा देश-व्यापी अशान्ति आदि प्रकरणों में भी ये ही बातें दिखलानी पड़ेंगी। इतने महत्वपूर्ण तथा विषाक्त कारणों का ज्वालामुखी रूस में फटा था, और इसी लिए आज भी उस की धमक से सारा ससार काँप रहा है!

फ़ास्टर फ़ेसर, मान० मारिस बेरिङ्ग आदि प्रसिद्ध लेखकों के ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि, १९०५ तक रूसी अधिकारी-तंत्र संसार भर के अधिकारी-तंत्रों से बाज़ी मारे

हुए था, यद्यपि, हम उनकी इस अत्युक्ति के क़ायल नहीं। इस का एक कारण यह भी है कि ये लेखकगण रूसी शासन को आरम्भ से ही स्वेच्छाचारी बतलाते आये हैं। हमारा विचार यह है कि, रूसी क्रान्ति का कारण शासनतंत्र नहीं था, वरन् वह था एक भीषण आर्थिक सङ्कट, जिसके प्रभाव से रूसी जनता व्याकुल हो उठी थी। भले ही आर्थिक संकट का दायित्व शासनतंत्र पर रखा जाय, पर केवल रूसी शासन-व्यवस्था को देखते हुए रूसी क्रान्ति के कारण सम्पूर्णतः उस पर लागू नहीं हो सकते। इतनी विशाल क्रान्ति के कारण इतने छोटे दायरे के भीतर समा नहीं सकते। और हम यह निर्भीकता-पूर्वक स्वीकार करने का साहस करते हैं कि, रूसी क्रान्ति संसार की वह पहिली क्रान्ति है, जो वास्तविक लोक-सत्ता को स्थापित करके ग़रीबों को शरण देगी और जिसके पीछे संसार के समस्त देशों में ऐसी ही क्रान्तियाँ किसी न किसी रूप में घटित होंगी और एक बार वर्तमान शासन-प्रणालियों की काया-पलट हो जायगी !

× × × ×

रूसी इतिहास बतलाता है कि, रूस के ज़ार ने जब से यूरोपीय शासन-व्यवस्था के ढंग की शासन-प्रणाली रूस में स्थापित की, तब से १६०५ तक, रूस में घोर निरंकुशता का दौर दौरा रहा। 'ज़ार' की ऐसी शक्ति थी, जो इच्छा मात्र से कुछ भी कर सकने में समर्थ थी। अलकज़ेन्डर (फर्स्ट) ने सब से पहिले एक व्यवस्थापक कौंसिल की स्थापना की थी, पर उक्त कौंसिल को केवल 'परामर्श-दात्री समिति' कहना अधिक मौज़ूं होगा। क्योंकि, इस की स्थापना के बाद, ज़ार ने जब २ जो कुछ चाहा, किया, और कौंसिल की एक

भी न चलो! पीटर 'दि ग्रेट' ने 'सीनेट' नामक एक सरकारी कौंसिल (हम उसे कार्यकारिणी कौंसिल कह सकते है) भी बनाई थी। सीनेट का काम केवल इतना था कि, वह यह देखे कि, शासन-व्यवस्था का पूरी तरह से पालन होता है या नहीं, और यह कि, ज़ार की आज्ञायें पालित होती हैं या नहीं।

ज़ार को अधिकार था कि, वह किसी भी समय कोई भी आज्ञा प्रचारित कर दें, और किसा भी मन्त्री को कोई भी नीति के पालन करने के लिए मजबूर करें। ज़ार खुद इन मन्त्रियों को नियुक्त करते थे। केवल देशी शासन तथा क़ानून-व्यवस्था का काम ही मंत्रियों के हाथों में दिया जाता था। मन्त्री लोग ही प्रस्ताव के रूप में किसी व्यवस्था को 'कौंसिल आफ़ इम्पायर' (व्यवस्थापक सभा) में पेश करते थे। वहाँ पर जो कुछ वाद-विवाद होता था, उसकी रिपोर्ट ज़ार के सामने पेश की जाती थी, तब ज़ार उक्त क़ानून के काम में लाये जाने की आज्ञा देते थे। इस प्रकार १९०५ तक, रूस में किसी क़ानूनी व्यवस्था का जन्म होता रहा।

जैसा कि हम पीछे कह आये हैं और आगे भी कहेंगे, १९०५ में शासन-व्यवस्था में परिवर्तन करने के लिए कुछ नये क़ानून बने। जनता की लगातार माँग के बाद कुछ व्यवस्था-सम्बन्धी अधिकार ज़ार को प्रजा के हाथों में देने पड़े, पर बहुत थोड़े समय के लिए। क्योंकि, जिन सिद्धान्तों पर उक्त नये क़ानून बने थे, यदि वे क्रमशः पूर्ण रूप में काम में लाये जाते, तो रूसी अधिकारी-तंत्र की निरंकुशता दब जाती और केवल १२ वर्ष के भीतर इतनी

किसानों को बराबर अधिकार मिलते देख कर कब चुप रह सकते थे, फिर उधर, कैथराइन ने ज़मीदारों को एक ऊँची श्रेणी में रखना चाहा था, इस लिए इस राष्ट्रीय प्रतिनिधि सभा का संगठित होना असम्भव होगया था।

१९०५ वाली ड्यूमा की स्थिति दूसरी प्रकार की थी। पहिले तो कहा गया था कि, बिना उसकी स्वीकृति के कोई क़ानून काम में न लाया जायगा, पर पीछे से नये मन्तव्यों के साथ भी सुधार प्रकाशित किये गये, उन में कहा गया कि, "इन सब के ऊपर ज़ार का व्यक्तित्व होगा और 'कौंसिल आफ़ इम्पायर' तथा ड्यूमा के सहयोग से ज़ार क़ानूनी व्यवस्था किया करेंगे!" इस वाक्य के दोनों खण्ड ड्यूमा के अधिकारों को भंग करने वाले थे। ज़ार की प्रभुता लोकसत्ता के भावों की घातक थी, फिर बीच में 'कौंसिल' का भी नाम रख दिया गया था। इसके अर्थ यह कि, ड्यूमा एक धोखे की टट्टी थी, जिस की आड़ में ज़ार और उनकी 'कौंसिल' शिकार खेलने की फ़िक्र में थी!

बात इतनी ही नहीं थी। ज़ार को यहां तक अधिकार था कि, वह ड्यूमा और 'कौंसिल' दोनों को स्वेच्छानुसार भंग कर सकता था! ज़ार दोहरी शक्तियों को रखने वाला ऐसा निरंकुश व्यक्ति था, जो किसी भी क़ानून की रचना में हस्तक्षेप कर सकता था और यदि ड्यूमा तथा 'कौंसिल' दोनों में से कोई भी उसकी बात मंजूर न करे, तो वह, उन दोनों को तोड़ देने की भी शक्ति रखता था। साथ में यह एक पोली व्यवस्था भी टाँग दी गई थी कि, ड्यूमा या कौंसिल को भंग करते समय ज़ार को नई ड्यूमा या कौंसिल के स्थापित करने की तारीख़ घोषित करनी पड़ेगी। पर इस से भी

कुछ तात्पर्य नहीं निकल सकता था। ज़ार स्वयं दोनों सभाओं के सभापति, उप-सभापति, तथा 'कौंसिल' के आधे सदस्यो को चुनते थे! पर इस व्यवस्था से 'अधिकारी-तंत्र' के नाम को आँच नहीं आसकती, क्योंकि, जिस किसी देश में अधिकारीतंत्र स्थापित रहा है, वहाँ २ ऐसी ही खोखली बातें देखने में आई हैं।

ज़ार ने किसी क़ानून के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णायक वाद देने का अधिकार भी अपने ही हाथों में रक्खा था! इसके सिवा, अपनी स्वतंत्र आज्ञायें निकालना, ज़रूरत के वक्त पर स्वनिर्मित किसी भी क़ानून को घोषित करना और युद्ध के समय में किसी भी तरह का ऋण ले लेना और कितना भी बड़ा खर्चा मंजूर करना आदि भी ज़ार की ही शक्ति के अन्तर्गत की बात थी।

ज़ार के निरंकुश हाथ में इन से भी अधिक भयंकर हथियार थे। प्रधान-मंत्री तथा अन्य मंत्रियों को भी वह अलग कर सकता था। परराष्ट्रीय मामले ज़ार की नीति पर ही परिचालित किये जाते थे। इसके साथ ही, ज़ार किसी भी स्थान पर अपनी इच्छा से फ़ौजी क़ानून घोषित कर सकता था।

कौंसिल आफ इम्पायर।

इंगलैंड की पार्लामेंट में कामन्स सभा तथा लार्ड्स सभा नामक दो सभायें हैं। कामन्स सभा द्वारा पास किया हुआ बिल लार्ड्स सभा में पेश होता है। रूस में भी ऐसी व्यवस्था थी। कौंसिल आफ् इम्पायर को ड्यूमा द्वारा पास किये गये बिलों पर विचार करने और अपनी स्वीकृति देने का अधि-

कार था। पर कौंसिल के आधे सदस्य सिर्फ ज़ार द्वारा मनोनीत होते थे! शेष आधे सदस्य ज़मींदारों, विश्वविद्यालयों, व्यापार- सभाओं और पोलैंड के निवासियों द्वारा निर्वाचित होते थे। इसके सिवा कौंसिल का सभापति तथा उप-सभापति भी ज़ार के द्वारा ही चुना जाता था। ज़ार जब चाहे तब कौंसिल को भंग भी कर सकता था। कौंसिल के सदस्यों की अवधि ६ वर्ष की रखी गई थी। पर इस कौंसिल को परराष्ट्रीय, फौजी, यौद्धिक तथा नौसैनिक मामलों में कुछ भी अधिकार न था।

ड्यूमा।

रूस की पार्लमेंट में, ड्यूमा कामन्स सभा की हैसियत रखती थी, पर अधिकार उसके बहुत ही परिमित थे, उसके जन्म के समय तो ज़ार ने जनता को लोक-सत्तात्मक व्यवस्था का अच्छा प्रलोभन दिया था, पर पीछे से, ड्यूमा के ऊपर कौंसिल और कौंसिल के ऊपर अपने को रख दिया! ड्यूमा भी कौंसिल की भांति एक परिमित क्षेत्र में ही काम कर सकती थी।

सार्वदेशिक बजट, विभागीय बजट आदि पर ड्यूमा का अधिकार था और जिन विषयों पर वह विचार कर सकती थी, उन विषयों के सम्बन्ध में लिये जाने वाले ऋणों पर भी वह विचार कर सकती थी। कभी कभी ड्यूमा में प्रश्नोत्तर भी हो जाते थे, पर हरेक बैठक में ब्रिटिश कामन्स सभा की भांति प्रश्नोत्तर नहीं हो सकते थे।

ड्यूमा के सदस्य-निर्वाचन की व्यवस्था बहुत उलझी हुई थी। सार्वजनिक प्रतिनिधित्व उसमें न था। ड्यूमा में

जो सरकारी प्रतिनिधि होते थे, उनका चुनाव सीधा नहीं हुआ करता था। प्रतिनिधियों को चुनने वाले निर्वाचकों का भी चुनाव होता था। फिर, सरकारी फौज के कर्मचारी सदस्य नहीं चुने जाते थे।

अब हम ग़ैर-सरकारी प्रतिनिधियों के चुनाव की तरफ़ आते हैं। वोट देने वाले वे ही हो सकते थे, जिनकी आमदनी या जायदाद एक ख़ास मिक़दार की होती थी। ख़ास तनख़ाह पाने वाले, मकान किराये पर उठाने वाले तथा निर्वाचक स्थल में कम से कम एक साल तक रहने वाले ही निर्वाचन कर सकते थे। पर यह निर्वाचन भी सीधा नहीं होता था। इसके सिवा, ग्राम के रजिस्टरों पर चढ़े हुये किसान-मुखिया ही प्रतिनिधि-निर्वाचन के लिए वोट दे सकते थे।

निर्वाचकों के पाँच समूह बनाये जाते थे। (१) ज़मींदार, (२) किसान, (३) व्यापारी (४) पूंजीवाले या ज़ायदाद रखने वाले, तथा (५) कल-कारखानों में काम करने वाले। ये निर्वाचक प्रान्तिक सभा के लिए प्रतिनिधि चुनते थे और प्रान्तिक सभा के ये सदस्य ड्यूमा के लिये प्रतिनिधि चुनते थे। प्रान्तिक सभाओं में उन्हीं समुदायों के सदस्य चुने जाते थे, जिन समुदायों की उक्त प्रान्त में बहुतायत होती थी। उदाहरणतः, यदि एक प्रान्त में किसान और ज़मींदार ही रहते हैं, तो उस में केवल इन्हीं दो समुदायों के प्रतिनिधि चुने जाते थे।

बड़े २ शहरों के अलग प्रतिनिधि रहते थे। इस प्रकार केवल धनी लोगों के ही प्रतिनिधियों की संख्या अधिक रहती थी। लोक-सत्तावादी, साम्यवादी तथा मज़दूर-दल के लोग बहुत थोड़ी संख्या में ड्यूमा में पहुंच पाते थे। ड्यूमा एक

व्यवस्थापक सभा थी, वह केवल क़ानून और व्यवस्था सम्बन्धी विषयों पर ही विचार करती थी, और कौंसिल आफ इम्पायर उसकी बातों को सही करने वाली या अस्वीकृत करने वाली सभा थी। पर असल में, सब कुछ करने धरने वाली एक सरकारी सभा थी। उसका नाम था 'सीनेट'।

सीनेट।

सीनेट के सम्बन्ध में कुछ कहने के पूर्व हम अपनी कही हुई बातों को फिर दुहरा देना चाहते हैं। रूसी व्यवस्थापक सभा अर्थात् पार्लामेंट की दो सभायें थीं। एक अपर हाउस अर्थात् कौंसिल आफ् इम्पायर और दूसरा लोअर हाउस अर्थात् 'ड्यूमा'। ये सभायें देश भर की व्यवस्थापक संस्थायें थीं।

प्रान्तिक व्यवस्था के लिए भी सभायें थीं और उनका नाम 'प्रान्तिक कौंसिल' था। गवर्नर के सहयोग में काम करने वाली एक २ कार्य-कारिणी सभा (सरकारी बोर्ड) होती थी। इसके बाद ज़िलों की व्यवस्था करने के लिए भी पञ्चा-यतें थीं। इस प्रकार रूस में चार तरह की व्यवस्थापक संस्थायें थीं, जिनका नाम हम नीचे क्रमानुसार देते हैं:—

(१) कौंसिल आफ् इम्पायर। सार्वदेशिक,
(२) ड्यूमा। „
(३) प्रान्तिक कौंसिल। प्रान्तिक,
(४) पंचायतें (Zemstvos) ज़िला-सम्बन्धी।

अब हम शासन-सम्बन्धी यानी सरकारी कार्य-कारिणी संस्थाओं की तरफ आते हैं। इनमें सबसे पहिले मंत्रि-मंडल का नाम आता है। इन मंत्रियों के अधिकारों की बात हम

ज़ार के अधिकारों के साथ कह चुके हैं। इसके बाद 'सीनेट' का नाम आता है।

१७११ में पीटर 'दि ग्रेट' ने सीनेट को जन्म दिया था। सीनेट देश की सबसे ऊँची कार्य-कारिणी-सभा मानी जाती थी। पीटर 'दि ग्रेट' ने इस सभा को इस ग़रज़ से बनाया था कि, सरकारी विभागों में यह सभा 'ज़ार के अधिकारों, का प्रतिनिधित्व रक्खे, साथ ही ज़ार की अनुपस्थिति में समस्त दायित्व इसके हाथ में रहे। सीनेट शासन के समस्त विभागों पर शासन रखती थी। साथ ही रूस भर का सबसे बड़ा न्यायालय भी वही थी।

सीनेट के कई विभाग थे। उसके एक विभाग को यह अधिकार भी प्राप्त था कि, किसी शासन-व्यवस्था को रोक दे और किसी पास-शुदा क़ानून के काम मे लाये जाने की कारवाई की जाँच करे। तात्पर्य यह कि, क़ानून ठीक २ काम में लाये जाते हैं या नहीं, इस बात के प्रबन्ध के लिए उक्त विभाग किसी भी मंत्री या किसी भी गवर्नर के किसी भी काम को रोक सकता था।

मंत्री, गवर्नर या किसी ज़िला-हाकिम के विरुद्ध आई हुई शिकायत की जाँच भी सीनेट द्वारा ही होती थी। सीनेटर्स की नियुक्ति स्वयं ज़ार करते थे।

मंत्री-विभाग।

ज़ार ने अपनी सहायता के लिए १२ मंत्री नियुक्त किये थे। मंत्री निम्नलिखित विभागों के थे:—

(१) परराष्ट्र-विभाग, (२) युद्ध-विभाग, (३) नौसैनिक विभाग, (४) अर्थ-विभाग, (५) शिक्षा-विभाग, (६) रेल, तार, मार्ग आदि का विभाग (७) कृषि-विभाग, (८) न्याय-विभाग, (९) औद्योगिक विभाग, (१०) शाही न्यायालय-विभाग, (११) अन्तर्देशीय विभाग, (१२) शासन-रक्षा-विभाग।*

प्रत्येक मंत्री को अपने प्रस्तावों अथवा मन्तव्यों को पहिले मंत्रि-मण्डल (Council of Ministers) के सामने पेश करना पड़ता था। कभी २ ये प्रस्ताव अपने २ विभाग की कमेटियों के सामने भी पेश करने पड़ते थे। इतनी क्रिया के पश्चात् उक्त प्रस्ताव या मन्तव्य कौंसिल आफ़ इम्पायर तथा ड्यूमा के सामने जाते थे। साथ ही नियुक्ति और पदच्युति के मामले भी उक्त सभाओं में रिपोर्ट के तौर पर पेश किये जाते थे।

प्रान्तिक शासन।

रूस का शासन प्रान्तों में बाँटा गया था। इन प्रान्तिक शासक-संस्थाओं को गवर्नमेंट (Government) कहते थे। सब से पहिले पीटर 'दि ग्रेट' ने इस प्रान्तिक शासन की रचना की थी। उसने रूस को ८ प्रान्तों में विभक्त किया था। कैथराइन (द्वितीय) ने इन प्रान्तों की संख्या बढ़ा कर चालीस कर दी। क्रांति के पहिले इन प्रान्तों की संख्या ७८ थी! यूरोपीय रूस में ४९ प्रान्त थे, १० प्रान्त पोलैण्ड में थे, ८ फिनलैण्ड में और ७ काकेशस तथा ४ साइबेरिया प्रदेश में रक्खे गये थे।

---

* इन मंत्री-विभागों के अतिरिक्त सैनिक कौंसिल, नौसैनिक कौंसिल, साम्राज्य-रक्षक कौंसिल, अर्थ-समिति आदि २ फुटकर परन्तु स्थायी सरकारी कमेटियाँ भी थीं।

इन प्रान्तों के सिवाय २३ अन्य उप-प्रान्त भी थे। इन्हें रूसी भाषा में ओब्लस्टी (Oblasta) कहते थे। उपर्युक्त प्रान्तों का आकार बेल्जियम, हालैण्ड या स्वीटज़रलैण्ड से हर हालत में बड़ा था। प्रांतों का विभक्ती-करण, बड़ा बेडौल था क्योंकि, वह भाषा, भेष या सभ्यता की दृष्टि से नहीं किया गया था, वरन् उनका विभाजन फ्रेंच सरकार की तरह पर था। प्रत्येक प्रांत में ज़िले बनाये गये थे। एक प्रान्त में कम से कम आठ और ज़्यादह से ज़्यादाह पन्द्रह ज़िले होते थे। प्रत्येक प्रान्त के शासक को गवर्नर कहते थे, और जिले के प्रबन्धकों का नाम रूसी भाषा में ज़ेम्स्की नेचल्नेकी (zemskie na ba'mki) कहते थे। अंग्रेज़ लेखकों ने इस ओहदे को "कैप्टन" के नाम से भी सम्बोधित किया है। ये केप्टन लोग १८८९ में नियुक्त हुए थे। १९१४ में केप्टन लोगों के स्थान पर 'शान्ति-रक्षक' (Justices of Peace) नियुक्त होने लगे थे। १८८९ के पहिले भी 'शान्ति-रक्षक' नामक अफ़सर ही ज़िले के हाकिम थे। कैप्टनों को न्याय, दीवानी, प्रबन्ध तथा फ़ौजदारी सम्बन्धी काम करने पड़ते थे। पर अधिकारों की दृष्टि से ये लोग पुलिस अधिकारी मालूम पड़ते थे। इनको गवर्नर चुनते थे और अन्तर्देशीय मंत्री द्वारा इनकी नियुक्ति की स्वीकृति होती थी।

ज़िला शासन।

इन कैप्टनों के अधिकार में कृषक-गोष्ठियों का प्रबन्ध था। कृषकों में १२ वर्ष के लिए भूमि का बाँटना, भूमि का मूल्य किस्तों में वसूल करना तथा लगान और मालगुज़ारी लेना भी इन्हीं का काम था। ग्राम-सम्बन्धी प्रस्ताव तथा छोटी अदालतों के मामले भी कैप्टन के पास ही पेश होते थे। पाठक सम्भवतः यह समझ बैठे होंगे कि कैप्टन एक ज़िले में एक ही

रहता होगा। ऐसी बात नहीं थी । एक ज़िले में कई कैप्टन होते थे । इन सब की एक सम्मिलित बैठक होती थी, इस सभा को 'डिस्ट्रिक्ट बोर्ड' कह सकते हैं। इस बोर्ड का प्रेसीडेन्ट 'मार्शल' नामक अफ़सर होता था। ज़मींदारों द्वारा यह 'मार्शल' निर्वाचित होता था और सरकारी अफसर समझा जाता था। पर अकेला 'मार्शल' भी ज़िले के पूरे इन्तज़ाम का मालिक नहीं था। गवर्नरों द्वारा नियुक्त किया गया पुलिस सुपरेन्टेन्डेंट (Ispravnik) उसे सहायता देता था ! इस प्रकार रूसी ज़िलों का शासन मार्शल, पुलिस सुपरेन्टेन्डेंट तथा कैप्टनों द्वारा होता था।

ज़िले के शासन की देख-रेख के लिए प्रान्तिक सरकार के साथ बोर्ड आफ़ एडमिनिस्ट्रेशन (शासन-सभा), गवर्नर तथा कौंसिलर्स काम करते थे । गवर्नर ज़िलों की शान्ति-रक्षा के लिए विशेष आज्ञायें भी प्रचारित कर सकता था। "मार्शल" की नियुक्त की स्वीकृति भी गवर्नर ही देता था। (इसी प्रकार प्रांतिक शासन में सहयोग देने वाले 'मार्शल' की नियुक्ति स्वयं ज़ार द्वारा मंजूर की जाती थी। पर प्रान्तिक 'मार्शल' को कोई विशेष अधिकार प्राप्त नहीं थे। वह केवल प्रान्तिक बोर्ड का एक सदस्य मात्र के रूप में रहता था।)

ज़िले के मार्शल को कई विशेष अधिकार प्राप्त थे। वह ज़िले की समस्त शासन-सम्बन्धी कमेटियों का सभापति था। किसानों के मामले उसी के हाथों में रहते थे और साथ ही सैनिक भर्ती, न्यायालयों, तथा सरकारी पंचायतों अर्थात् ज़ेम्सट्वोस् (Zemstvos) का भी वह सभापति रहता था। तीन वर्ष बाद ज़मीन्दारों द्वारा उसका चुनाव होता था।

'मार्शल' के अधिकार एक विचित्र स्थिति के होते थे, बहुतेरे अधिकारों के रखते हुए भी वह केवल एक अर्द्ध-सरकारी आदमी था। उसे वेतन भी नहीं दिया जाता था और उसे पदच्युत करने के लिए 'सीनेट' की आज्ञा लेनी पड़ती थी। जिस प्रकार 'पब्लिक प्रासीक्यूटर' एक गवर्नर के ग़ैर-क़ानूनी कामों की शिकायत कर सकता था, उस प्रकार 'मार्शल' की शिकायत करने वाला कोई ज़िला-हाकिम नहीं था।

क़स्बाती शासन।

पिछले अध्याय में कहा जा चुका है कि, १८६१ में, किसानों की गोष्ठियां बना दी गई थीं, १२ वर्ष के लिए जोतने-बोने के निमित्त उन्हें किस्तों पर कुछ भूमि मिलती थी। इस का प्रबन्ध करने के लिए ग्राम-सभायें थीं। कई ग्रामों की ऐसी सभाओं का प्रबन्ध देखने के लिए 'कैन्टन' नामक सभायें बनाई गई थी। इस 'कैन्टन' के सभापति (क़ानूनगो) को 'एल्डर' कहते थे। 'कैन्टन' में किसानों द्वारा चुने हुए पांच पञ्च भी रहने थे।

ज़ेम्सटोव्स।

रूसी शासन-व्यवस्था के साथ 'ज़ेम्सटोव्स' का नाम भी बड़े महत्व का है। १८६४ में इनकी सृष्टि हुई थी। जिले की ज़ेम्सटोव में भिन्न २ सम्प्रदायों के लगभग ४० सदस्य रहते थे। प्रान्तिक ज़ेम्सटोव के सदस्य जिले की ज़ेम्सटोव के मेम्बरों द्वारा चुने जाते थे। पर अधिकतर ज़मींदार ही प्रान्तिक ज़ेम्सटोव में रह पाते थे, क्योंकि, उसमें एक निश्चित जायदाद के रखने की पख भी रक्खी हुई थी। ये ज़ेम्सटोव ज़िले और प्रान्तों की आवश्यकताओं और नये सुधारों के

लिए प्रस्ताव पेश करतीं और पास करके मार्शल तथा गवर्नर के पास भेज देती थी। विचारार्थ विषयों में सड़कों, डाकघरों, अस्पतालों, अनाथाश्रयों आदि की बातें शामिल रहती थीं। शिक्षा, कृषि, व्यापार आदि के विषय भी ज़ेम्स-टोव्स के हाथों में ही रहते थे।

यद्यपि सरकारी विभागों की रिपोर्टों में ज़ेम्सटोव्स को उन्नति-कर नहीं बतलाया गया, पर १६१६ तक के कामों से स्पष्ट प्रकट था कि, रूसी शासन-सत्ता तथा जनता के बीच में इन संस्थाओं ने अत्यन्त उपयोगी काम किया। उनकी बराबर उन्नति हुई और कई सरकारी विभागों को उन से आशातीत सहायता मिली। ये ज़ेम्सटोव्स ही थीं, जिन्हों ने १६०५ में सरकार से स्पष्टतः कह दिया था कि समस्त देश शासन-सुधार चाहता है।

× × × ×

इस प्रकार रूसी शासन-व्यवस्था का रूप समाप्त होता है। पाठक देखेंगे कि, शासन की यह कितनी जटिल और उरझी हुई व्यवस्था थी। इस से पता चलता है कि, निरंकुश ज़ारों ने किसी पुरानी प्रणाली को जड़ से नहीं तोड़ा। नये प्रबन्ध किये, पर इन नये प्रबन्धों से नित्यप्रति व्यवस्था उलझती हो गई। नीचे हम क्रमानुसार कार्यकारिणी तथा व्यवस्थापक शक्तियों और संस्थाओं के पुनः नाम देते हैं, तब हम उन पर अपनी राय देंगे।

(कार्यकारिणी)	(व्यवस्थापक)
(१) ज़ार,	(१) कौंसिल आफ़ इम्पायर
(२) सीनेट	(२) ड्यूमा

बहुत कुछ काम किया, पर गवर्नर उसकी किसी भी बात को तोड़ सकते थे। और ऐसा हुआ भी। जब २ जेम्सटोव ने प्रजा-हित के प्रस्ताव पेश किये, अधिकारीतंत्र ने उन्हें ठुकरा दिया। इसी प्रकार 'मार्शल' तथा ग्राम-सभाओं को भी कार्यकारिणी शक्तियों के आगे झुकना पड़ता था। आगे के अध्यायों में हम इस निरंकुश अधिकारी-तंत्र की क्रूर नीति से उत्पन्न होने वाले असन्तोष की व्याख्या करेंगे।
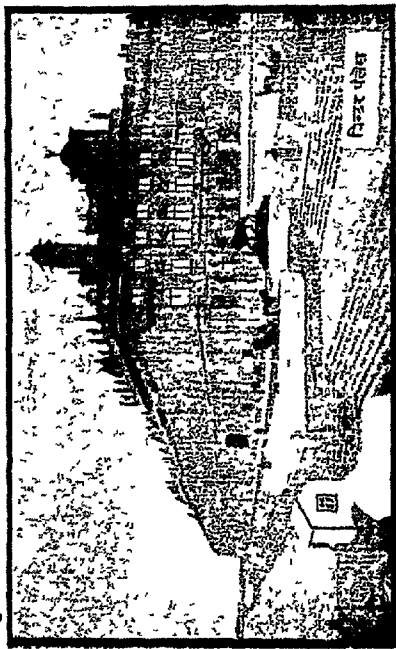
(८) ज़ार का विन्टर पैलेस (शरद महल)।

राजनैतिक असन्तोष ।

"The seeds of discontent, where they exist are the result of one simple fact. In 1905 explicit promises were made to the Russian people, which, if carried out, would insure their complete political liberty and the ful rights of citizenship. Those promises have in some cases not been carried out at all, and in other case they have only been carried out partially or according to the letter and not according to the spirit." Maurice Baring. (1914)

× × × × ×

ड्यूमा की असफलता ।

रूसी शासन-व्यवस्था की कठोरता असह्य थी। जब कि, सारे संसार में लोकसत्ता का विकास होरहा था, रूसी जनता स्वेच्छाचारी शासकों के हाथों में गुलाम थी। १९०५ के पहिले भी अधिकारी-तंत्र ने जनता को साथ लेकर शासन करने के ढोंग रचे थे, उनसे भी असन्तोष फैल चुका था, १९०५ के सुधार, सिद्धान्ततः रूसी जनता को लोकसत्ता की तरफ लेजाने वाले थे। पर जैसा वचन दिया गया था, वैसा प्रतिपालन नहीं हुआ। प्रधान मंत्री पी० ए० स्टोलिपन ने सुधार-स्कीम की रचना की थी और उसमें 'ड्यूमा' की स्थापना तथा उसके

अधिकारों की सृष्टि की गई थी। नये सुधारों के अनुसार रूसी नागरिक को नागरिकता के पूर्ण अधिकार मिलने चाहिये थे, पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। यहां तक कि, जो कठोरता पहिले थी, उसमें कुछ भी अन्तर नहीं पड़ने दिया गया। समाचार-पत्र शासन के विरुद्ध तनिक भी मुंह नहीं खोल सकते थे। सार्वजनिक सभा स्थापित करना और राजनैतिक सभा-समितियाँ स्थापित करना लगभग असम्भव था। रूसी नागरिक जीवन हर प्रकार से जकड़ा हुआ था। शासन और व्यवस्था में जो कुछ अधिकार दिये गये थे, वे नहीं के बराबर थे। रूसी शासन इतनी उलझी हुई समस्या थी कि उसके समझने के लिए भी बहुत बड़े समय की आवश्यकता पड़ जाती थी। इस प्रकार की व्यवस्था में, सरकार की तरफ से सुधार के नाम पर जो कुछ दिया गया, वह सचमुच जनता के प्रति एक षड़यंत्र अथवा जाल-भरी चाल थी। लोकसत्ता के विकास के नाम पर 'ड्यूमा' बनाई गई थी। नागरिकों के हक़ों के नाम पर निर्वाचन की स्वाधीनता समस्त फिरक़ों के लिए खोल दी गई थी। पर न तो 'प्रेस एक्ट' ही रद्द किया गया और न 'ड्यूमा' को ही पूरी स्वाधीनता दी गई। उसकी सब बातें परवशता से जकड़ दी गई थीं, पर ढोंग यह रचा जाता था कि, व्यवस्था के सब मामले 'ड्यूमा' के विचार और सम्मति बिना काम में नहीं लाये जासकते, जब कि होता यह था कि, ज़ार जब चाहते थे, 'ड्यूमा' को कठपुतली की तरह उठाकर दे मारते थे और चूर २ कर देते थे! इस प्रकार से ज़ार और सीनेट सदा लोकसत्ताक भावों का खून किया करते थे। ज़ार को एक विचित्र अधिकार यह प्राप्त था कि, वह ड्यूमा को तोड़ भी सकते थे और जब चाहते उसके अधिकार भी घटा

सकते थे! फिर सीनेट ने कई ऊँची बातें 'ड्यूमा' की पहुंच के बाहर करदी थीं, जैसे युद्ध-सम्बन्धी मामला, न्याय-सम्बन्धी मामला, सैनिक भर्ती सम्बन्धी मामला आदि २। 'बजट' के बनते समय प्रायः 'ड्यूमा' के अधिकार घटा दिये जाते थे!!

असन्तोष का पहिला कारण यह था। अब हम अन्य कारणों की तरफ़ चलते हैं।

ड्यूमा के अतिरिक्त जिन सुधारों के देने का वादा किया गया था, या तो उक्त सुधार बिल्कुल दिये ही नहीं गये, और यदि दिये भी गये, तो स्थायी क़ानून बनाकर नहीं दिये गये, बल्कि अस्थायी मन्तव्यों द्वारा दिये गये। अस्थायी मन्तव्यों के प्रचलित करने का यह अवश्य ही उद्देश रहा होगा कि, जब चाहेंगे जनता के इन अधिकारों को ले लेंगे। और सचमुच ऐसा एक बार नहीं, वरन् अनेक बार हुआ!

मनुष्य के अधिकार।

एक शासन-युक्त देश में मनुष्य के क्या अधिकार हैं, इस बात पर डेढ़ शताब्दि से रूसी जनता जोर देती चली आरही थी। पर इस तरफ सरकार ने १९०५ में ध्यान दिया! मगर दिल्लगी यह कि, हुआ कुछ भी नहीं! अन्तिम ड्यूमा (यानी ज़ार ने दो बार ड्यूमा को तोड़ कर जब तीसरी ड्यूमा रची!) में इस सम्बन्ध में एक बिल सरकार की तरफ से पेश हुआ था, पर उससे रूसी जनता को कोई व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार नहीं मिलते थे, अतः ड्यूमा ने उक्त बिल को अस्वीकृत कर दिया।

१९१४ में फिर इसी क़िस्म का एक बिल पेश किया गया

था, पर वह भी यथेष्ट न था, बल्कि क़ानून के साथ लगाई गई व्यवस्था-प्रणाली की दृष्टि से उक्त अधिकार कुछ भी नहीं रह जाते थे। अधिकारी-तंत्र जब चाहता, किसी भी मनुष्य के साथ कितनी भी कड़ाई का बर्ताव कर सकता था, और ड्यूमा तथा क़ानून उसकी रक्षा नहीं कर सकते थे। तात्पर्य यह कि, रूसी अधिकारी-तंत्र किसी भी प्रकार की राजनैतिक स्वाधीनता जनता को मिलती हुई नहीं देख सकता था। जिस प्रकार एक विदेशी अधिकारी-तंत्र अपने उपनिवेशों में क्रूरता के साथ शासन करता है, उसी प्रकार रूस के शासकगण भी प्रजा को अपना विरोधी और उनकी माँगों को अपना नाश समझते थे। देशीय शासकों और जनता के बीच में ऐसे कटु भाव निश्चय ही असह्य थे। और इस कटुता का एक बार नहीं, वरन् अनेक बार यह फल हुआ कि, जनता को क़ानूनों की परवाह न करके सरकार के विरुद्ध निष्क्रिय और सक्रिय, दोनों प्रकार से खड़ा होना पड़ा, पर ज़ार ने इसे अराजकता और षड़यंत्र बतलाकर निरंकुश और क्रूर उपायों द्वारा दाबना चाहा। इस पर भीतरी असन्तोष और बढ़ा। १९०५ में जब सुधारों की माँग के लिए कई हज़ार रूसी स्त्री-पुरुष तथा बाल-वृद्ध लोग ज़ार के महल के चारों तरफ़ धरना देकर बैठे हुए थे, अत्याचारी ज़ार ने फ़ौज़ें बुलवाकर उनका क़त्ल करवाना शुरू कर दिया! जो लोग विदेशी शासन सहन करते हैं, उनके लिए तो ऐसा अन्याय सहना असम्भव है ही, पर, सजातीय सरकार द्वारा ऐसे अत्याचारों का होना भी कोई सहन नहीं कर सकता। आग लगी ही थी, निरंकुशता ने समय २ पर उसमें आहुतियाँ दीं। रूप बढ़ता गया, और जनता के प्रबल वेग ने एक दिन वह समय उपस्थित कर दिया, जब वह आग सारे देश में एक साथ दहक उठी।

रूस में, साधारण क़ानूनों के रहते हुए भी, क़ानून एक सुरक्षित वस्तु थे। अधिकारी-तन्त्र जनता के साथ जब पेश आता था, तब, विशेष स्थितियों में काम में लाई जाने वाली, आज्ञाओं और प्रतिबन्धों से ही पेश आता था! ये अस्थायी प्रतिबन्ध सचमुच में फ़ौज़ी क़ानून के दूसरे रूप थे।

इन विशेष प्रतिबन्धक उपायों का नाम था:— (१) शासन-रक्षा-क़ानून और (२) विशेष रक्षा-क़ानून।

"शासन-रक्षा-क़ानून"।

(Reinforced Protection)

उपर्युक्त दोनों विशेष प्रतिबन्ध अन्तर्देशीय मंत्री द्वारा घोषित किये जासकते थे। मंत्रि-मण्डल के सामने उक्त मंत्री को प्रस्ताव भर पेश करना पड़ता था कि उक्त स्थान की स्थिति नाज़ुक हो रही है, अतः अमुक प्रतिबन्धक क़ानून घोषित करने की ज़रूरत है। ज़ार की सम्मति भी किसी ऐसे क़ानून की घोषणा के समय आवश्यक होती थी।

जब शासन-रक्षा-क़ानून ज़ार की सम्मति से किसी ज़िले में लागू कर दिया जाता था, तब गवर्नर-जनरलों, गवर्नरों तथा ज़िला-अफ़सरों को यह अधिकार प्राप्त हो जाता था कि, किसी भी सरकारी आज्ञा के उल्लंघन करने पर, किसी भी व्यक्ति पर वे ७५० रु० का जुर्माना करदें और चाहे तो तीन मास तक की कड़ी से कड़ी क़ैद की सज़ा दे दें। उन्हें यह अधिकार भी रहता था कि, यदि वे चाहें तो, सार्वजनिक अथवा प्राइवेट सभाओं का होना, व्यापार-कार्य एवं दूकानदारी तक बन्द करदें तथा किसीभी मनुष्य को उक्त क्षेत्र-फल से निकाल बाहर करें।

फ़ौज़ी क़ानून में और इन बातों में कुछ भी अन्तर नहीं है।

विशेष परिस्थिति में अधिकारी-तंत्र चाहे कितना अमानुषिक अत्याचार करे, पर वह तो भी न्याय के नाम से ही पुकारा जाता था!

"विशेष-रक्षा-क़ानून"।

(Extraordinary Protection)

विशेष-रक्षा-क़ानून की घोषणा से अधिकारी-वर्ग की निरंकुशता और बढ़ जाती थी। विशेष पुलिस बढ़ाई और रक्खी जा सकती थी। कई अभियोगों का विचार साधारण अदालतों से उठाकर कोर्ट-मार्शल के सिपुर्द किया जा सकता था। समाचार-पत्रों और मासिक पत्रों का प्रकाशन तथा आवागमन रोका जा सकता था। यहां तक कि, स्कूल और कालेज भी एक महीने तक बन्द किये जा सकते थे! इस पर दिल्लगी यह थी कि, रूस के समस्त ज़िलों में से सदा किसी न किसी ज़िले में यह क़ानून बना ही रहता था! अधिकारी-तंत्र की कठोरता का इससे बढ़कर और उदाहरण हो ही क्या सकता था? रूसी शासन-तन्त्र का इतिहास प्रकट करता है कि, बहुधा एक स्थान पर ऐसा क़ानून घोषित कर के छोड़ दिया जाता था, महीनों उसके उठाने का ध्यान नहीं रहता था, चाहे वहाँ अशान्ति का नाम-निशान भी न रहा हो। इतना ही नहीं, स्वच्छन्द अधिकारी एक तमाशे के तौर पर प्रायः ऐसे स्थानों पर भी अपने विशेष अधिकार काम में लाया करते थे, जहाँ कभी उक्त विशेष क़ानून घोषित भी नहीं किया गया था!

धार्मिक पराधीनता।

यद्यपि रूसी शासन धार्मिक स्वतंत्रता के विद्यमान रहने की

बात सदा से कहता रहा है, पर वास्तव में,रूस धार्मिक परा-धीनता की ज़ंजीरों से भी जकड़ा हुआ था ! बने हुए गिर्जा-घर तक इस बुनियाद पर गिरवा दिये जाते थे कि, इसकी इमारत ठीक नहीं है, और इस लिए नागरिकों की सुविधा इस से पूरी नहीं हो सकती !! प्रधान मंत्री स्टोलीपन ने सेन्टपीटर्सबर्ग में जिस गिर्जाघर के बनाये जाने की आज्ञा देदी थी, बन चुकने के बाद १९१२ में, अन्तर्देशीय मंत्री मेकला-काव ने उसे बन्द करवा दिया था। धार्मिक इमारतें भी अधिकारीतंत्र की क्रूर दृष्टि से नहीं छुटने पाई थीं। रूसी शासकवर्ग सदा पुरानेपन का संरक्षक रहा है, इस लिए यदि कोई नव-धार्मिक सम्प्रदाय किसी काम में हाथ लगाता था, तो तुरन्त, उसे रोक दिया जाता था ! मुक्ति फौज के सदस्य भी रूस में काम नहीं कर सकते थे। सचमुच में, धार्मिक जनता इन अनावश्यक बन्धनों से त्रस्त थी, मनुष्य-हृदय में धर्माघात बहुत कड़ुवी ठेस पहुंचाता है, अतः रूस का धार्मिक-जगत अधिकारी-तंत्र की इस क्रूरता के कारण राजनैतिक क्षेत्र में भी असन्तोष रखने लगा था।

समाचार-पत्रों की पराधीनता।

समाचार-पत्रों ने संसार में बहुत थोड़े समय के भीतर नाना प्रकार के नये भावों तथा नये ज्ञान का प्रचार किया है। पिछड़े हुए राष्ट्रों को संसार की दौड़ में भाग ले सकने योग्य समाचार-पत्रों ने ही बनाया है। सचमुच में, यह बड़े दुर्भाग्य की बात है, यदि किसी देश की सरकार समाचार-पत्रों से शत्रुता रखती है। ऐसी सरकारें बहुत शीघ्र विनष्ट हो जाती हैं, क्योंकि जो काम सर्व-साधारण तक पहुंचने वाले पत्र नहीं कर पाते, उसे गुप्त समाचार-पत्र किया करते

हैं। और एक दिन वह आजाता है, जब जनता बड़ी विकट कटुता के साथ शासन-तंत्र को मिट्टी के घड़े की भाँति चूर २ कर देती है। रूस का अधिकारी-तन्त्र पुरानी बातों का क़ायल था। उसे यह भय था कि, अगर नये भाव रूस में फैलेंगे, तो फिर इतनी निरंकुशता क़ायम न रह सकेगी, और चूंकि, शासक और शासित में सदा से विरोध-भाव रहता चला आया था, इस लिए रूसी शासक-वर्ग सदा जनता को अपढ़-कुपढ़ और गुलाम बनाये रखने की फिक्र में लगा रहता था।

१६०५ के पहिले रूसी पत्रों की स्थिति अत्यन्त करुणा-जनक थी। सरकारी मामलों में उन्हें भला बुरा कुछ भी लिखने का अधिकार न था, क्योंकि, यदि कोई सरकारी ख़बर ज़रा भी ग़लत हुई तो, बस, उसी दम उक्त पत्र की शामत आजाती थी। सेंसर-विभाग के प्रतिनिधि बिना बात की बात में टाँग अड़ाते फिरते थे। उनके गश्त लगा करते थे, और जिस पत्र के कार्यालय में वे पहुँच जाते थे, उस दिन उक्त पत्र का 'अंक' काट छाँट और भावों की हत्या के कारण मुर्दा होकर ही प्रकाशित होता था! पूर्व निरीक्षण (Previous Censure) के कारण रूसी पत्रों को बिल्कुल स्वाधीनता प्राप्त नहीं थी।

तनिक सी भूल और छोटे से छोटे अपराध में, एक समाचार-पत्र पर ७५० रु० का जुर्माना हो सकता था। गवर्नमेंट किसी हालत में इस बात को सहन नहीं कर सकती थी। विशेष-रक्षा-क़ानून की हालत में तो कोई भी पत्र बिना कारण दिखलाये ही ज़ब्त किया जा सकता था, बन्द किया

जा सकता था और उसका प्रकाशन कुछ दिनों के लिए रोका जा सकता था।

अधिकारी-तंत्र के हथकण्डे बड़े मार्के के होते थे। ऊंचे ढंग के नगरों में प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्रों के साथ तो कम छेड़छाड़ की जाती थी, पर अज्ञान जनता की सेवा करने वाले प्रान्तिक समाचार-पत्रों का ढूंढ़ २ कर शिकार खेला जाता था! सरकार इस बात से अच्छी तरह से परिचित थी कि देहातों और ग्रामों में पहुंचने वाले पत्र ही असली हानि कर सकते है।

उदाहरण के लिए, नीचे हम कुछ अंक देते हैं, जिन्हें मास्को के प्रसिद्ध दैनिक रूसी पत्र "रस्को स्लावो" ने एक राजनैतिक मामले के फैसले के पश्चात् प्रकाशित किया था। इन अंकों से प्रकट होगा कि 'बेलिस केस' में टिप्पणी मात्र करने के अपराध में कितने समाचार-पत्रों तथा पैम्फलेटों की हत्या की गई थी: —

(एक मास के भीतर होने वाले मामले)

(१) ६ सम्पादक गिरफ्तार किये गये।
(२) ६ सम्पादकों को कोर्ट में तलब किया गया।
(३) २७ समाचार पत्र ज़ब्त कर लिये गये।
(४) ६ पैम्फलेट ज़ब्त किये गये।
(५) ३ समाचार-पत्रों का प्रकाशन बन्द किया गया।
(६) ४२ समाचार-पत्रों पर जुर्माना हुआ!

इस प्रकार लगभग १६:२५ रु० केवल जुर्माने और जब्ती की मेशीनरी से सरकार को प्राप्त हो गये!

पत्रों पर होने वाले जुर्माने की रक़में देखने में भले ही छोटी मालूम पड़ें, पर जब एक पत्र पर लगातार ऐसे जुर्माने होते थे, तो निश्चय ही उसका अन्त हो जाता था, जो कि, अधिकारी-तंत्र का एक उद्देश था! संसार से परे, एक बात और रूस में विद्यमान् थी। मान लीजिए, एक राजनैतिक नेता सरकार द्वारा गिरफ़्तार किया गया और उसकी गिरफ़्तारी का समाचार किसी अख़बार में छप गया, पर यदि इसी बीच में उक्त व्यक्ति छोड़ दिया गया और भूल से उसके छुटकारे का समाचार उक्त अखबार ने न छापा, तो बस, ख़ैरियत नहीं। कम से कम ७५० रु० का जुर्माना तो हो ही जाता था!

सार्वजनिक सभा विरोध।

रूस में कोई भी सार्वजनिक सभा बिना स्थानिक अधिकारी की आज्ञा पाये नहीं की जा सकती थी। आज्ञा लेते समय सभा के उद्देश तथा कार्य-विषय भी बतलाने पड़ते थे। यदि किसी कारण वश स्थानिक अफ़सर आज्ञा देने से इनकार कर दे, तो फिर सभा का होना असम्भव था। फिर, यदि सभा करने का अधिकार मिल भी गया, तो वह चाहे कैसी भी सभा हो, उस में पुलिस का एक दूत अवश्य उपस्थित रहता था। वह दूत ख़ास अधिकार रखता था! यदि पुलिस के दूत की समझ में यह बात धँस जाय कि, सभा की कार्रवाई सरकार के विरुद्ध भाव फैलाने वाली है, और वक्तागण कटु आलोचना कर रहे हैं, तो वह सभा को भंग कर सकता था!

पुलिस के लिए वह काम एक मज़ाक के तौर पर था,

पर देश की जनता का इस ढंग से बड़ा नुकसान होता था। १६०६ और १६१४ के बीच तो पुलिस की यह धींगाधींगी इतनी बढ़ गई थी कि, सार्व-जनिक सभायें नाम मात्र को सुनने में आती थीं। कठोरता यहां तक बढ़ी-चढ़ी थी कि, कौंसिल तथा प्रतिनिधि-चुनने की ग़रज़ से होने वाली सभायें भी बड़ी अल्प संख्या में होती थीं! कन्सर्ट-प्रोग्राम भी पुलिस की आज्ञा से हो पाते थे!!

सभाओं की स्थापना की रोक।

जिस प्रकार सभाओं के अधिवेशन करने मे कठिनता पेश आती थी, उसी प्रकार, बल्कि उस से भी, अधिक रुकावट किसी सार्वजनिक उद्देश रखने वाली सभा की स्थापना के सामने आ जाती थी। तात्पर्य यह कि, रूसी अधिकारी-तंत्र ने जनता की बोलने, सुनने, लिखने, पढ़ने और यहां तक कि, एकत्रित होने और किसी बात पर मिलकर विचार करने तक की स्वाधीनता को अपने वश में कर लिया था, और घोर अन्यायपूर्ण तथा कठोर क़ानूनों द्वारा वह जनता पर अपना निरंकुश पजा जमाये रखना चाहता था।

उपर्युक्त अध्याय में कही हुई बातों से स्पष्ट है कि, रूसी जनता के असन्तोष के दो मुख्य कारण थे। एक तो ड्यूमा को कोई उचित अधिकार नहीं दिये गये थे, दूसरे छोटे २ अधिकारियों ने नागरिक स्वाधीनता को शासन-व्यवस्था के नाम पर बुरी तरह से जकड़ रखा था। नागरिकता के स्वत्व दिये जाने वाले थे, वे कभी नहीं दिये गये, और पुरानी शासन-प्रणाली को निरन्तर दृढ़ बनाये रखने की कोशिशें की गई। छोटे अधिकारियों के बीच "पहिले शासन तब

सुधार' की नीति काम कर रही थी। ऐसा सरकारी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए किया जाता था, पर यह समझने वाला कोई नहीं था कि इस प्रकार स्वाधीनता और सभ्यता के के विकास-मार्गों को रोकने से परिणाम क्या होगा?

खुफ़िया पुलिस।

असन्तोष का एक भयानक कारण।

हम पहिले कह चुके हैं कि, रूसी अधिकारी-तंत्र अपने कामों की किसी भी प्रकार की आलोचना नहीं सुनना चाहता था। सरकारी कार्रवाइयों की आलोचना करने वाले उस की दृष्टि में राजद्रोही और क्रान्तिकारी थे। चूंकि शासक-वर्ग को पुरानी प्रतिष्ठा की किसी भी क़ीमत पर रक्षा करनी लाज़िमी थी, इस लिए, निम्न अधिकारियों ने अपना यह एक काम मान लिया था कि, जहाँ तक हो, आलोचकों और नये भावों के फैलाने वालों का नाम-निशान मिटा दिया जाय। चूंकि, अधिकारी-वर्ग को यह भय लगा हुआ था कि, जनता में क्रान्ति-कारी भाव फैल रहे हैं, इसी लिए देश भर में खुफ़िया पुलिस का विकट जाल बिछा दिया गया था। संसार के किसी देश में शायद ही कभी इतनी बड़ी खुफ़िया पुलिस रही होगी। इस के ख़र्चे भी लम्बे-चौड़े थे, इस लिए अपने विभाग की दक्षता और आवश्यकता प्रमाणित करने के लिए ये लोग जिस स्थान पर थोड़ा सा भी असन्तोष होता था, वहाँ राजद्रोह तक उत्पन्न करके दिखला देते थे। ये लोग स्वयं अराजक-व्याख्याता बन कर व्याख्यान देते फिरते थे। और लोगों को ऐसा करने के लिए उत्साहित किया करते थे। कई बार इन्होंने साधारण विरोध और असन्तोष को दंगे के रूप में परिणत कर दिया और ज़ार के सामने "खुला बलवा"

(Open rebellion) प्रमाणित किया! ऐसे अवसरों पर सैकड़ों और हज़ारों निरपराध रूसियों के खून से पृथ्वी रँग जाती थी, और यह सब रूसी अधिकारी-तंत्र की सत्ता स्थापित रहे, इसी ग़रज़ से होता था। कैसा भीषण षड़यंत्र था!

ऐसी अवस्था में, जब कि, जनता को यह मालूम होजाय कि, गुप्तचर उनके बीच में काम कर रहे हैं, और सर्वसाधारण की रक्षा का कोई उपाय नहीं है, यह स्वभावतः ही सम्भव है कि, प्रत्येक आदमी अपनी २ रक्षा के लिए चिन्तित हो उठे। क्योंकि, पता नही, बीच में काम करने वाले लोग कब झूठी-सच्ची रिपोर्ट स्थानिक अफ़सर के पास करदें और वहाँ से आजन्म क़ैद या कठिन काले पानी की सज़ा दे दी जाय। किसी देश में, जब इस प्रकार के ख़तरे के भाव उत्पन्न होजाते हैं, तब, असन्तोष किसी भी प्रकार रोके नहीं रुक सकता। यही हाल रूस का हुआ। लोग हथेली पर प्राण ले कर अपने काम में बड़ी कटुता और तन्मयता के साथ जुट पड़े।

उपर्युक्त असन्तोष के कारण उकरेनिया पोलैण्ड, काकेशस, बाल्टिक प्रान्त तथा फिनलैंड के प्रान्तों में विष का बीज बो गया। जहाँ असन्तोष था, वहाँ क्रान्तिकारी भाव फैल गये! धीरे २ भीषण और गुप्त षड़यंत्रों का काम भी आरम्भ हुआ।

मज़दूरों में असन्तोष।

"If the employers on their side are able, as one hopes they will be, to rise to a sense of their responsibilities if the Government, that we may confidently expect to introduce many new measures, acts with wise and far-sighted energy, Russia will come victoriously through her present trials and set a great and beneficial example to the World,"

*　　*　　*　　*

" It was neither his rate of pay nor the conditions under which he works that led the Russian workman to engage in the present revolutionary movement. The Revolution was from the first political, in the strictest sense of the word. It was directed against Czarism. Its aim was to win liberty."

Emile Vandervelde

जिन लोगों ने रूसी क्रान्ति के बाद प्रजातंत्र-शासन-व्यवस्था-सम्बन्धी समाचार पढ़े हैं, वे यह समझने लगे होंगे

कि, रूसी क्रान्ति का एक यह भी कारण रहा होगा कि, रूसी मज़दूर अपने मालिकों से असन्तुष्ट थे। इसी के पक्ष में, लोग यह दलील भी देंगे कि, यदि मज़दूरों की कोई शिकायत न होती, तो आज बोल्शेविक सरकार फ़ैक्टरियों और कारख़ानों का राष्ट्रीकरण (Nationalization) न कर देती। पर बात ऐसी नहीं थी। यद्यपि रूसी क्रान्ति का प्रभाव सामाजिक एवं आर्थिक जगत पर ही पड़ा है, पर, क्रान्ति का कारण था केवल राजनैतिक। बेल्जियम के प्रसिद्ध साम्यवादी नेता इमाइल वेन्डरवेल ने भी मुक्त कण्ठ से रूसी क्रान्ति को राजनैतिक असन्तोश का फल बतलाया है।

हाँ, इतना माना जा सकता है कि, ज़ार के अत्याचारी शासन में जनता मात्र दुःखी और त्रस्त थी। दूसरे युद्ध के आरम्भ होजाने के कारण देश में अन्न-कष्ट बढ़ गया था। साधारण आमदनी के मज़दूरों के लिए अन्न-कष्ट से बढ़ कर और कोई वस्तु अधिक कष्ट-प्रद नहीं, और ख़ास करके यूरोप में।

रूस में ८५ फ़ीसदी किसान बसते हैं, पर उन्हीं किसानों में से लोग मज़दूरी में भी लग गये हैं और उन्हीं किसानों में से लोग सैनिक बन गये हैं। मज़दूर-दल की दो शाखायें हैं। इस लिए, जब किसानों ने राजनैतिक असन्तोष के कारण ज़ार के कठोर शासन के विरुद्ध अपनी कमर कस ली तो, मज़दूर और सैनिक लोग भी चुप नहीं बैठ सकते थे। आगे चलकर पाठक देखेंगे कि, किसानों के साथ उक्त दोनों दलों ने क्रान्ति में कैसा भाग लिया।

असन्तोष का पहिला कारण।

इस प्रकार मज़दूरों का क्रान्ति के लिए कोई प्राचीन

(८) रूस का अन्तिम ज़ार, निकोलस।

आन्दोलन नहीं था। तात्कालिक परिस्थितियों के कारण हो उनमें असन्तोष फैल गया और इसी कारण उन्होंने अपने स्वामियों की मिलों और कारख़ानों पर क्रान्ति आरम्भ होते ही क़ब्ज़ा कर लिया।

जर्मनी से युद्ध छेड़ने के कारण रूस को बहुत बड़े इन्तज़ाम करने पड़े, ऐसे समय पर अन्न-कष्ट का उपस्थित हो जाना स्वाभाविक था, क्योंकि, रूस के एक भाग से दूसरे भाग तक माल पहुंचाने के लिए रेलें बिल्कुल नही मिलती थीं। यही एक कारण था, जिस से मज़दूरों में शासन-तंत्र के प्रति अप्रीति और विरोध-भाव उत्पन्न हो गया। परिश्रम करके नित्य खाने वालों के लिए इस से अधिक कष्ट और क्या हो सकता था।

असन्तोष का दूसरा कारण।

युद्ध के कारण, कल कारख़ानों के बहुतेरे चतुर कारीगर सैनिक विभाग तथा सेना-सम्बन्धी माल-असबाब बनाने के कारख़ानों में ले लिये गये थे। इस प्रकार, साधारण फैक्ट्रियों एवं कारखानों को घाटा उठाकर अपना २ काम बन्द कर देना पडा। इस कारण से बहुत से मजदूर निठल्लू होकर इधर उधर भटकने लगे। इस अवस्था का भी बहुत बुरा असर पड़ा। ग़रीब लोग भूखों मरने लगे, और इस सब का कारण शासन की अनुपयुक्तता, प्रबन्ध की कमी, समझी गई।

इस प्रकार मज़दूरों को भी ज़ार के निरंकुश शासन की व्यवहारिक क्रूरता का पता चला, और क्रान्तिकारी व्याख्याताओं के बहुत थोड़े प्रयत्न करने पर मज़दूर-दल उन से मिल गया।

सेना में असन्तोष।

ऊपर एक अध्याय में कहा जा चुका है कि, किसानों में से ही सैनिक भर्ती की जाती थी। एक तो कृषकावस्था में ही उन्हें सरकारी अत्याचारों का यथेष्ठ अनुभव हो जाता था, इसके बाद सेना में भर्ती होने पर उन्हें और अधिक कड़े क़ानूनों की पाबन्दी करनी पड़ती थी। ऊंचे सैनिक अफ़सर सदा "तू" कह कर सम्बोधन करते थे। किसी भी अवस्था में, अफसर के सामने जाने पर कई फ़ीट की दूरी पर खड़े रहकर सलाम करना पड़ता था और जब तक उक्त अफ़सर कुछ बोलता न था, सलामी का हाथ माथे से टेके रहना पड़ता था। इसी प्रकार के अनेक कड़े क़ानून थे, जो सैनिकों में असन्तोष उत्पन्न कर रहे थे। युद्ध के समय में यह असन्तोष दो कारणों से और बढ़ गया। एक तो भर्ती की कड़ी कार्रवाई, दूसरे यथेष्ठ गोली बारूद न रहने के कारण, लाखों रूसियों के व्यर्थ प्राण गंवा ,कर युद्ध जारी किये रहने से असन्तोष उत्पन्न होगया था।

रूसी सैनिक युद्ध से भय नहीं खाते, पर वे यह यथेष्ठ रूप से जानते है कि, बिना उचित वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्रों के पाये, सबल शत्रु से लड़ना असम्भव है। रूस-जापान युद्ध में उन्हें इस का काफ़ी ज्ञान प्राप्त हो चुका था, इसी लिए यूरोपीय महा संग्राम में उन्हें यह भासित हो गया कि ज़ार की सरकार युद्ध छेड़ने या उसे सफलतापूर्वक चलाने में असमर्थ है। ऐसी परिस्थिति में, यह असन्तोष स्वभावतः ही उन में पैदा होना चाहिए था कि, ज़ार अपनी ज़िद के कारण ही लाखों रूसियों का बलिदान कर रहे है।

—०—

अराजकता के केन्द्र।

गुप्त षड्यंत्र और बम-निर्माण।

अब अराजकता के कारणों पर प्रकाश डाला जा चुका है, तब यह भी आवश्यक है कि, अराजकों के कार्यों पर भी कुछ ध्यान दिया जाय। कम से कम इस से इस बात का तो पता चल ही जायगा कि, जब किसी देश में राजनैतिक असन्तोष सीमा को पार कर चुकता है, तब निरंकुश शासकों के बीच में रहकर भी राष्ट्र की स्वाधीनता प्राप्त कर सकने के लिए क्या २ उपाय लोग सोच सकते हैं।

१८६१ के बाद से ही रूस में अराजक संस्थायें स्थापित हो चली थीं, समय २ पर उन्होंने जनता के भावों को प्रकट करने के लिए भीषण प्रयत्न किये, पर संगठन की कमी और बलवान विरोधी के कारण सफलता नहीं हुई। लेकिन जिस प्रकार शासकों का अत्याचार बढ़ता गया, उसी प्रकार अराजकों की संख्या भी बढ़ती गयी। विकास के इस मार्ग पर चलते चलते १९०५ में रूस भर में अराजकता के भाव बो दिये गये थे। कुछ अमेरिकन लेखकों का कहना है कि, रूसी जनता का क्रान्ति के पूर्व प्रजातंत्र-राज्य स्थापित करने का लक्ष्य नहीं था, रूसी जनता परिमित राज-सत्ता चाहती थी। हम नहीं कह सकते कि, उनका ऐसा कहना सच है। अस्तु, जो कुछ भी हो, पर रूसी अराजक-संस्थाओं के इतिहास से पता चलता है कि, वे सेन्ट पीटर्सबर्ग (पेट्रोग्राड)

कीव, मास्को तथा फिनलैंड, पोलैंड एवं काकेशस में बड़ी सरगर्मी से काम कर रही थी। यद्यपि गुप्त पुलिस के कारण प्रत्येक रूसी का जीवन ख़तरे में था, पर तो भी षड्यंत्र-कारियों ने दोनों तरह से राष्ट्र के नाम पर बलि होजाने में ही कल्याण देखा। जहाँ तक हम समझते हैं, रूसी अराजक लोगों ने जितने त्याग और साहस की सेवा की, सम्भवतः संसार के किसी देश के अराजकों ने न की होगी। हज़ारों युवक-युवतियों ने 'प्रचार' के पवित्र काम को हाथ में लेकर या तो अपने प्राण देश के नाम पर दे दिये, या फिर आजन्म काले पानी की सज़ा पाकर द्वीपान्तर-वास एवं साइबेरिया के ठंढे मुल्क में रहने के लिए वे भेज दिये गये। १९०५ और १९१४ के बीच में ही, अराजकता ने रूस में दृढ़ता से पैर जमा पाये थे। इस के पहिले भी प्रिंस क्रापेटकिन, मेडम ब्रेल्डेयवस्की आदि २ ने देश के नाम पर अपने प्राण हथेली पर रखकर काम किया और कई बार बड़ी २ सज़ायें भुगतीं, जेल से भागे और फिर दण्ड पाया। इसी प्रकार साम्यवादी नेता मोशिये लेनिन तथा ट्राटस्की आदि ने भी देश की पवित्र सेवा और राष्ट्र की जागृति के लिए अपना मार्ग नहीं छोड़ा।

यद्यपि रूसी अराजकों के सम्बन्ध में अभी तक विशेष और विशद वर्णन-युक्त किताबों का प्रचार नहीं हो पाया है, पर तो भी विदेशी लेखकों ने अपनी पुस्तकों में जो कुछ लिखा है, उस से पता चलता है कि, रूसी अराजकों का संगठन दृढ़ता के साथ किया गया था। यद्यपि सार्वदेशिक संगठन नहीं किया गया था, पर काम लगभग सभी संस्थाओं का समान था। प्रत्येक संस्था के दो उद्देश थे, और एक २ उद्देश

के अलग अलग सदस्य थे । एक दल क्रान्तिकारी पुस्तकों और अख़बारों का प्रचार करता था, और केवल असन्तोष के भावों को और अधिक स्पष्ट रूप देने के लिए ग्राम २ व्याख्यान आदि देता फिरता था। इसी प्रकार एक दूसरे दल का काम केवल यह था कि वह निरंकुश शासकों की हत्या की घात में लगा रहता था। ऐसे लोग अपने प्राणों की तनिक भी परवाह नहीं करते थे, और सचमुच इसी कारण उनके संगठन ने उन्हें बहुत कुछ सफलता दिलाई। उन्हों ने एक प्रधान मंत्री की हत्या कर डाली, अन्य कई निरंकुश शासकों को भी बम से उड़ा दिया । ज़ार और युवराज तक की हत्या के लिए उन्हों ने प्रयत्न किया ।

(यदि इस स्थान पर अराजकता की फ़िलासफ़ी पर बहस की जाय, तो कुछ पाठक ऐसे अवश्य होंगे जो कहेंगे कि, अराजक लोगों के बम-प्रहार या किसी एकाध निरंकुश शासक के मार डालने से किसी देश का उद्धार नहीं हो सकता, पर जिस भाव को हम अराजकता का नाम दिये हुए हैं, वास्तव में वह एक उचित परिभाषा नहीं है। 'अराजकता' भी व्यक्तिगत शासन-व्यवस्था का एक रूप है। यद्यपि अभी तक अराजकता को लोग केवल इसी माने में लेते आये हैं कि, निरंकुश अधिकारियों की हत्या करना, क़ानून भंग करना तथा स्थापित शासन का कार्य कठिन बना देना ही उसका उद्देश है। पर सचमुच में बात ऐसी नहीं है । अराजकता की फ़िलासफ़ी बतलाती है कि, शासन-तंत्र का बिल्कुल नाश करके ऐसी सार्वजनिक व्यवस्था पेश कर दी जाय कि, शासन-कार्य चलाने वाली संस्थाओं (अर्थात् सरकारों) की आवश्यकता ही न रहे। साम्यवाद अथवा गोष्ठीवाद का यह

एक अत्यन्त शुद्ध रूप भासित होता है। पर जबतक किसी देश में, सब लोग इस सिद्धान्त की प्रक्रिया के उपयुक्त नहीं हो जाते—जैसा कि अभी तक असम्भव सा भासित होता आया है—तबतक अराजकता की पूरी व्यवस्था व्यवहारिक रूप में नहीं आसकती। यही कारण है कि, संसार भर में अराजकता के माने केवल मारकाट और क़ानून भग के लिये जाते रहे हैं!)

हाँ, तो रूसी अराजकों का संगठन बतलाता है, रूस में उन्हें जो कुछ सफलता मिली, उसके तीन मुख्य कारण थे। एक तो सार्वजनिक असन्तोष और शासन-सुधार की निराशा। दूसरा यह कि, बड़े २ विद्वान भी रूसी परिस्थिति को देखते हुए आरम्भिक उपायों में अराजकता को सर्वश्रेष्ठ मानने लगे थे। तीसरा कारण था यह कि, समस्त यूरोप में लोकसत्ता के विकास का डंका बज रहा था, पर ज़ार उस हालत में भी प्रजा को गुलाम जाति का बनाये रखने की फ़िक्र में थे, अतः रूसी अराजकों को आस पास के देशों ने—भले ही अपने दूरवर्ती स्वार्थ के लिए हो, पर—अच्छी सहायता दी।

यहां पर इससे अधिक बतलाने की आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती कि, अराजकों ने प्रचार-कार्य में अच्छा काम किया। देश की मुख्य जनता—किसानों—में अराजकता के भाव खूब कूट २ कर भरे गये, और स्थिति के सयोग से एक दिन वे भाव बड़े विकट रूप में फट पड़े, जिन की धमक सारे संसार को सुनाई पड़ी!

क्रान्ति के सहायक कारण।

"Although the people were revolt-ripe, few had any idea that a successful revolution could be undertaken. They realized that any such attempt would only increase their disorganization and really be capitalized by the enemy. ......"

—Isaac F. Marcosson.

क्रान्तियों का निर्माण क्रमशः होता है, तात्त्वणिक कारणों से उनकी रचना नहीं होती। हाँ, पूरी तैयारी हो जाने पर, कुछ तात्त्वणिक कारण ही ऐसे होते हैं, जो क्रान्ति का विस्फोटन करते हैं। प्रत्येक क्रान्ति में स्थायी और तात्त्वणिक कारणों का सम्मेलन होता है। रूस की जनता लगभग ५० वर्ष से इस क्रान्ति के निर्म्माण में हाथ डाले हुई थी। उसकी तैयारी घोर असन्तोष और अत्याचारी क़ानूनों की नींव पर दृढ़ता के साथ रक्खी जारही थी। पता चल गया था, और अधिकारी-तंत्र इस अवसर की फ़िक्र में था, कि, कहीं कुछ दंगा-फ़साद हो, तो बस सार्वदेशिक फ़ौजी क़ानून घोषित करके क्रान्ति-कारियों का नाश कर दिया जाय, और इस प्रकार सदा के लिए सार्वजनिक उत्साह तथा सहानुभूति का बखेड़ा ही समाप्त कर दिया जाय!

क्रान्तिकारियों को भी पता था, कि, यदि दृढ़ संगठन के

विना काम शुरू किया गया, तो, शत्रु की बन आवेगी। वे भी मौक़ा देख रहे थे, जब केवल क्रान्तिकारी ही नहीं, वरन् रूस की समस्त जनता क्रान्ति-भावों से परिपूर्ण हो जाय। युद्ध छिड़ चुका था, पर उसकी प्रगति ने रूसी क्रान्तिकारियों को कुछ विशेष सहायता नहीं दी। क्रान्ति का विस्फोटन भीतरी कारणों से हुआ था, और उक्त कारण रूसी जनता के सामने एक एक करके आये।

१६०५ में, बहुत कुछ सम्भावना थी कि, क्रान्ति का विस्फोटन हो जायगा, वारसा के स्कूल और कालेज के प्रोफेसरों तथा छात्रों ने "नागरिक क्रान्ति" कर दी थी। पर उस समय अधिकारीतंत्र को अपने क्रूर उपायों द्वारा सफलता मिली थी, इसी लिए १६०५ के सुधारों में ज़ार ने जनता को धोखा दिया। उसी सन् में, अंग्रेज़ी पत्र नेशनल रिव्यू (National Reviеw) में एक रूसी "अज्ञात पुरुष" ने निम्नलिखित विचार प्रकट किये थेः—

"It is hard to realise that the Autocracy, with no Constituent Assembly to harm it, is already in its death-throes; that the Autocrat is a life-prisoner albeit there has been no flight to Copenhagen or to Darmstadt; and that the nation is in intermittent revolution without the stimulus of August 10 th."

जब यह लेख छपा था, 'ड्यूमा' के संगठन-सम्बन्धी सुधार भी प्रकट नहीं किये गये थे। लेखक के कहने का तात्पर्य यह है कि, रूसी जनता क्रान्ति की तरफ़ बढ़ चुकी है, और स्थिति प्रकट कर रही है कि, निरंकुश सत्ता का निर्वाण अत्यन्त

निकट है। और अब उसका अन्त किसी भी प्रकार रोकने से रुक नहीं सकता।

१६०५ की तैयारी से मालूम पड़ता है कि, रूसी जनता उसी समय सुधारों की परवाह न करके एक राजनैतिक क्रान्ति करने जारही थी और उसकी तैयारी लगभग परिपक्व हो चुकी थी। "हिंदुस्थान रिव्यू" में मि० एन० गुप्त ने लिखा है कि:—

"Th ngineers in Russia formed a permament association to demand a Legislative Assembly. An order was issued forbidding them ever to meet again. Nevertheless, the engineers met and discussed the politics Their example was followd by academicians, professors, barristers men of letters—in a word, by all the groups and sections of thinking, writing and articulate Russia"

डाक्टरों ने मास्को में सुधारों की मांग करने के लिए एक कांग्रेस करनी चाही, अधिकारी-तंत्र ने तुरन्त मना कर दिया कि, कांग्रेस न की जाय। पर जनता ने इसकी तनिक भी परवाह न की। ("The order was disregarded, the Cangress met and boldly passed a resolution rebuking Autocracy) उसने अधिकारी-तंत्र को कटु आलोचना करते हुए सुधारों की मांग का प्रस्ताव पास किया।

इसी प्रकार खास राजधानी के बैरिस्टरों ने भी निर्भीकता-पूर्वक अपनी सभा में सुधारों की ज़रुरत बतलाई।

यद्यपि प्रसिद्ध अमेरिकन सम्पादक मि० इसाक एफ० मारकासन ने अपनी पुस्तक (The Rebirth of Russia) में यह बात दिखलाने का प्रयास किया है कि, रूसी जनता का लक्ष्य प्रजातंत्र नहीं था, वह परिमित राजसत्ता चाहती थी, पर, १६०५ के पूर्व के भावों पर ही सम्मति बनाने वाला यह कह सकता है कि, जनता का सुधारों में तनिक भी विश्वास नहीं था, और उसकी क्रान्तिकारियों (Nihilists) के साथ पूरी सहानुभूति होगई थी। निहिलिज़्म (Nihilism) का जन्म लगभग एक शताब्दि पूर्व हो चुका था। १८६१ में उसने अधिक बल और विकास पाया। उसका लक्ष्य ज़ार की सत्ता का पूर्ण विनाश करना था।

*   *   *   *   *

क्रान्ति का प्रथम सहायक कारण युद्ध था, पर इसके साथ ही एक बात और थी। कई वर्षों से जर्मनी का प्रभाव रूस में गुप्त षड़यंत्र रच रहा था। ज़ार की पत्नी ज़ारीना एक जर्मन राजकुमारी थी। क़ैसर युद्ध के पहिले से ही रूस की शक्तियों को क्षीण कर देने के लिए प्रयत्न कर रहे थे। कई मंत्रियों को उन्होंने बड़ी २ रक़में देकर अपने वश में कर लिया था। ज़ारीना अलग अपनी कोशिशों में थी। इस सबका फल जनता पर यह पड़ा कि, रूसी अधिकारी-तंत्र दिन पर दिन अधिक अत्याचारी होता गया। जब युद्ध आरम्भ होगया, और रूस, जो युद्ध के लिए, कभी समय पर तैयार नहीं हो पाता था, अपने कन्धे डालने की फ़िक्र में ही था, क़ैसर को अच्छा मौक़ा मिला। रूसी मंत्रियों में क़ैसर के षड़यंत्र ने काम किया और मित्र-राष्ट्रों को छोड़कर जर्मनी से अलग सन्धि कर लेने का आन्दोलन रूस

में उठ खड़ा हुआ। इसी बीच में युद्ध-मंत्री सुखोम्लीनाफ ने
गैलेशिया युद्ध-क्षेत्र के नक़शे क़ैसर के हाथ बेंच दिये।

जब स्टर्मर प्रधान-मंत्री बनाया गया, तब क़ैसर की और
बन आई। स्टर्मर ने पुराने राजभक्त मंत्रियों को धीरे २ षड़यंत्र
रचकर मंत्रि-मण्डल से निकालना आरम्भ किया। रिक्त
स्थानों पर जारीना, रासपुटिन (जो कि, क़ैसर का दाहिना
हाथ होरहा था, और एक बिना पदवी का मंत्री था) तथा
प्रधान-मंत्री के प्रयत्न से कमजोर ज़ार ने ऐसे आदमियों को
मंत्री बना दिया जो गुप्त रूप से क़ैसर से मिले हुए थे।
अन्तर्देशीय मंत्री प्रोटोपोपाफ महा धूर्त आदमी था, क़ैसर
की इच्छा पूरी करने के लिए उसने अपनी शक्तियों द्वारा प्रजा
में क्रान्ति उत्पन्न करने का एक भीषण षड़यंत्र रचा। ज़ार
यही समझते रहे कि, युद्ध के समय प्रजा पर अपना पूरा
प्रभुत्व बनाये रखने के लिए ये उपाय उचित हैं, पर प्रोटो-
पोपाफ उन उपायों को क्रान्ति फैलाने के लिए काम में ला
रहा था।

१९१६ में, ड्यूमा की एक बैठक में प्रसिद्ध देशभक्त वीर
मिलियोकाफ ने जर्मन षड़यंत्र की पोलों पर एक अत्यन्त
महत्वपूर्ण वक्तृता दी। जार को तब एक क्षण के लिए
होश आया। परन्तु वह बहुत जल्दी बेहोशी के रूप में
फिर बदल गया।

प्रधान-मंत्री स्टर्मर के अलग किये जाने पर जनता को
कुछ आश्वासन मिला था और नये प्रधान मंत्री ट्रिपाफ से उसे
आशा थी कि, देश की बढ़ती हुई आग अच्छे ढङ्ग से शान्त
की जायगी। पर जर्मन षडयंत्र बराबर काम कर रहा था,

और अन्त में ट्रिपाफ भी अपने पद से अलग कर दिया गया। उसके स्थान पर गुलस्टिन की नियुक्ति हुई। बस, इस अकेले कारण से रूसी जनता का क्षोभ सीमा के बाहर होगया। दिल्लगी यह थी कि, रूसी शासन में प्रधान-मंत्री की प्रोटो-पोपाफ के सामने कुछ भी न चलती थी। सारे अधिकारी-तंत्र की नकेल प्रोटोपोपाफ के हाथ में थी। वह ज़ार को लगातार भीतरी दंगे की चिन्ता से व्याकुल किये रहता था और सदा ऐसे प्रयत्न करता रहता था, जिनसे रणक्षेत्र में रूसियों की हार हो और रूस के भीतर क्रान्ति खड़ी होजाय। इसके साथ ही, वह भीतर ही भीतर रूसी शासन की नीव पोली कर रहा था। गोली-बारूद की बहुत बड़ी मिक़दार रणक्षेत्रों में न भेजकर उसने राजधानी के निकट एकत्रित कर रक्खी थी। सीमा पर रूसी हार रहे थे, पर भीतरी स्थिति की भयंकरता दिखलाते हुए प्रोटोपोपाफ गोली-बारूद को सुरक्षित रक्खे हुआ था। युद्ध के आरम्भ में, रूसी सरकार ने खाद्य-पदार्थों का बहुत बड़ा स्टाक एकत्रित करके सुरक्षित कर लिया था, पर जब रूसी जनता में खाद्य-सामग्री की कमी के कारण असन्तोष बढ़ा, तब भी, उक्त स्टाक काम में नहीं लाया गया। जब राजधानी में बहुत असन्तोष बढ़ा, तो प्रोटोपोपाफ ने यह ढोंग रचा कि, अनाज की गाड़ियां ग़ल्ले के बाज़ारों की तरफ़ घुमानी शुरू की। पर उनका अनाज बिक्री के लिए व्यापारियों के हाथ बिलकुल नहीं बेचा गया, वरन् घुमा फिराकर गाड़ियां फिर वापस भेज दी जाती थीं। प्रोटो पोपाफ रूस में खाद्य-पदार्थों की कमी करके ग़रीब लोगों में क्रान्ति मचा देने का षड्यंत्र रच रहा था और इस काम में वह पूरी तरह से सफल हुआ।

ज़ार निकोलस।

(१८६४—१६१७)

ज़ार निकोलस की कहानी बताने के पूर्व हम १८८१ की एक घटना की तरफ चलते हैं। १८८१ से १६०६ तक निहिलिस्टों (अराजकों) ने जो कार्य रूस में किया है, वह इतिहास-बद्ध होने योग्य है, और सम्भवतः रूस के प्रधान अन्तर्राष्ट्रीय विशेषज्ञ इस विषय पर शीघ्र ही प्रकाश डालेंगे।

१८८० में निहिलिस्टों का आन्दोलन एक ऊँची सीमा तक पहुंच गया था। सुधारों और उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन की मांग से सारा रूस गूँज उठा था, यद्यपि यह आन्दोलन अभी केवल शिक्षित जनता तक ही जड़ पकड़ पाया था, पर, सरकार की तरफ से जो कार्रवाई इस आन्दोलन को उखाड़ फेंकने के लिए की गई, वह संसार के इतिहास में, क्रूरता और अत्याचार की किसी भी सीमा को परास्त कर सकती है। हजारों आदमी पकड़ २ कर जेल में ठूंस दिये गये। सैकड़ों फांसी पर लटका दिये गये। पचासों आदमी क़ैद की सज़ा देकर नदियों में डुबा दिये गये और मशहूर कर दिया गया कि वे मर गये। सारे यूरोप में इन अत्याचारों की कहानियाँ बड़ी मनोरंजकता के साथ पढ़ी और लिखी जाती थी, पर

उधर रूस में, इन रक्ताञ्जलियों से ईंटों के लिए गारा और देश-भक्त वीरों की हड्डियों पर राष्ट्र-भवन का निर्माण हो रहा था। अलेक्जेन्डर (द्वितीय) ने अपने पिछले दिनों में कुछ सुधार करने की घोषणा की, पर घोषणा होने में बहुत देर हो चुकी थी और शासकों के अत्याचारों का प्रायश्चित अलेक्जेन्डर तथा उसकी रानी की हत्या करके निहिलिस्टों ने कर दिया।

इसके बाद अलेक्ज़ेन्डर (तृतीय) का ज़माना आया। निहिलिस्टों का काम बहुत क्षेत्रों में घृणा की दृष्टि से देखा गया और अनेक स्थानों पर उनकी सराहना भी हुई। असल बात यह थी कि, जनता अब भी क्रान्ति के लिए तैयार नहीं थी। सुधारों की मांग अवश्य थी, पर राजा की हत्या या प्रजा-तन्त्र की स्थापना के लिए, कोई निर्दिष्ट लक्ष्य नहीं था। अलेक्ज़ेण्डर (तृतीय) के समय में अत्याचार और दमन-नीति की सीमा खूब बढ़ी, पर, देश में एक प्रकार का आतंक छाया हुआ था, अतः निहिलिस्ट लोगों ने अपना प्रचार-कार्य (Propaganda work) छोड़ दिया। गुप्त रूप से सैकड़ों पढ़ी-लिखी स्त्रियों और सुशिक्षित युवकों ने प्राण हथेली पर रखकर प्रचार-कार्य आरम्भ किया। डिबेटिंग कमेटियां स्थापित हुईं, पुस्तकायें प्रकाशित की गईं और पत्र निकाले गये। व्याख्याता-गण घूमघूम कर व्याख्यान देते फिरे और इस प्रकार रूसी जनता तैयार की गई। फल यह हुआ कि, १८९४ में अलेक्ज़ेण्डर (तृतीय) गद्दी से उतार दिये गये। इसके बाद अन्तिम ज़ार निकोलज (तृतीय) गद्दी पर २६ वर्ष की अवस्था में बैठाये गये। लोगों को आशा थी कि, निकोलस उदारता के साथ काम करेंगे, क्योंकि, वह यूरोप भर की सैर कर आये थे और एक बार भारतवर्ष की यात्रा भी कर चुके

थे। साथ ही युवावस्था होने के कारण उनके नई दृष्टि से काम करने की आशा थी। पर आशा निराशा के बादलों में परिणत हो गई। जब प्रान्तिक "जेम्स्टोव" ने आकर उन्हें एक अभिनन्दन-पत्र भेंट किया, तो अपने उत्तर देते हुए अपने परम्परागत भावों का इस प्रकार दिग्दर्शन किया:—

"मैं इस बात को सब पर प्रकट कर देना चाहता हूं कि, मैं यथाशक्ति जनता की भलाई का प्रयत्न करूंगा, पर साथ ही, मैं सारी शक्तियों को उसी प्रकार अपने हाथ में रखूंगा, जिस प्रकार मेरे पूर्व-पुरुषों ने रक्खा था"। बस, ज़ार की इस घोषणा से अधिकारी-तंत्र की क्रियाशीलता फिर बढ़ गई। प्रेसएक्ट कड़ा हो गया, सेंसर-शिप के बन्धन और फैल गये, और स्कूल और कालेज के अध्यापकों को राजनैतिक विवाद में पड़ने से सख्त मनाही कर दी गई। सैकड़ों किताबें ज़ब्त की गईं, उनका प्रकाशन तथा प्रचार रोका गया, साथ ही, हर्बर्ट स्पेंसर सरीखे लेखकों की पुस्तकें भी रोक दी गईं। सैकड़ों और हजारों की संख्या में राजनैतिक मामले विशेष अदालतों में चलाये गये, देश-निकाले और साइबेरिया-निर्वासन के दण्ड बहुतायत से दिये गये और इस प्रकार एक बार 'ज़ार' का नाम फिर संसार में गूंज उठा। फिनलैण्ड के निवासियों के साथ जो दुर्व्यवहार ज़ार ने किया, वह सारे संसार में घृणा की दृष्टि से देखा गया।

इस अत्याचार से असन्तोष दबा नहीं, वह सुलग २ कर एक बार उभरा, फिर दूसरी बार उभरा। अन्त में, वह देश के

open politic il discussion is possible, where there is no redress against the irresponsibility of obsolute power through out the whole bueareoucratic organization, (and where we are) obliged to right the violence of tyranny with the force of revolutionary right..."

क्रान्ति-कारियों का कहना था कि, जब हमें इस देश में निरंकुश शासन की बदौलत स्वतंत्रता-पूर्वक बोलने, बैठने-उठने और कुछ कह सकने तक का हक़ प्राप्त नहीं है, तब हमें इस बात का हक़ होना चाहिए कि, हम क्रान्तिकारी उपायों द्वारा अत्याचारी शक्ति को अलग करें। इसी सिद्धान्त पर निहिलिस्ट लोग काम कर रहे थे और देश की बड़ी २ शक्तियां उन के इन कामों से सहानुभूति रखती थीं।

१९०५ में ज़ार कुछ नीचे पड़े। उन्होंने सुधारों के मांगने की स्वाधीनता ज़ेम्स्टोव को दी, और प्रेस तथा पत्रों के भी बन्धन कुछ ढीले कर दिये। पर इसी बीच में एक दुर्घटना घटित हो गई। रूस-जापान युद्ध में दग़ाबाज़ अफसरों ने करोड़ों रुपये उड़ा दिये थे, इधर प्रजा के लिए भूखों मरने की स्थिति तक आगई थी! इस हालत में शासकों का कर्त्तव्य था, कि, यथासाध्य शीघ्र ग़रीबों की सहायता का वे कुछ उपाय करते, पर जब २२ जनवरी (१९०५) को रूसी प्रजा ने ग़रीबों की सहायता के लिए एक प्रार्थना-पत्र दिया और "छोटे पिता" के निर्णय को सुनने के लिए महल के मैदान में एकत्रित होने की सूचना दी, तो उस रविवार के दोपहर के समय ज़ार की विश्वस्त सेना ने उन हजारों स्त्री-पुरुषों,

ज़ार ने कुछ सुधारों का वचन दिया और 'ड्यूमा' की सृष्टि की। इस सभा में समस्त रूसी जनता के प्रतिनिनिधि रखे गये, और इसे व्यवस्था तथा परामर्श देने के अधिकार दिये गये। पर असली कार्य कारिणी-शक्ति तब भी अधिकारियों तथा सीनेट के हाथों में ही रही। इस पर फिर घोर असन्तोष उठा और बहुत से समुदायों ने अपना २ काम छोड़ दिया। एक बार फिर मज़दूरों की हड़तालें, प्रोफेसरों तथा डाक्टरों की हड़तालें, रेलों की रोक तथा व्यापार एवं दूकानों की बन्दी आरम्भ हो गई! अन्त में, प्रेस की स्वाधीनता, सभाओं की स्वतंत्रता घोषित की गई और 'ड्यूमा' को यह अधिकार दिया गया कि, बिना उसकी स्वीकृति के कोई क़ानून न बनाया जायगा।

इस के पश्चात् किस प्रकार ज़ार ने तीन बार 'ड्यूमा' के तोड़ा और १९१६ में किस प्रकार ज़ार के मंत्रियों ने जर्मनी के चंगुल में फंसकर प्रजा में असन्तोष के बीज बोये, यह सब पाठकों पर प्रकट है।

युद्ध के आरम्भ से क्रान्ति तक, रूसी सरकार में पांच बार परिवर्तन हुआ! पांच प्रधान मन्त्री, एक के बाद एक, नियुक्त हुए। स्टर्मर तथा गुलिस्टन ने किस प्रकार जर्मनी से मिलकर दग़ा दी, और युद्ध-मंत्री ने युद्ध के नक़शे बेंच कर गैलेशिया में किस प्रकार रूसी पराजय कराई, ये बातें भी हम पीछे कह चुके हैं। मोशिये प्रोटोपोपाफ ने पेट्रोग्राड में खाद्य-सामिग्री की कमी करके अन्त में रूसी शासन को असम्भव स्थिति में ला दिया। इसके बाद जो कुछ हुआ, उसे पाठक आगे पढ़ेंगे।

———:o:———

क्रान्ति का आरम्भ।

पेट्रोग्राड में अशान्ति!

बृहस्पतिवार का दिन था और तारीख़ थी आठ मार्च १९१७। यह पवित्र तिथि छिपी हुई थी आशंकाओं के उन गहरे बादलों में, जो संसार की स्वाधीनता पर कभी २ छा जाते रहे हैं, और फिर स्वयं-प्रकाश्य तीक्ष्ण किरणों के द्वारा भेदे जाते रहे हैं। स्वयं प्रकाशित होने वाले पवित्र और स्वाधीन भावों ने सदा ही पराधीनता के बन्धनों को छिन्न-भिन्न किया है। संसार का कोई राष्ट्र और कोई जाति सदा के लिए किसी दूसरे राष्ट्र, जाति या व्यक्ति विशेष के हाथ बिक नहीं गई है, उसकी कृत्रिम गुलामी का पट्टा एक न एक समय मज़बूत हाथों ने नष्ट कर दिया है। इसी प्रकार रूसी जनता की पराधीनता का महाकाल-दिवस प्रकट हुआ।

आशंका के न रहते हुए भी बड़ी २ घटनायें घटित होती रहती थीं और इसी प्रकार रूस की काया-पलट हुई। युद्ध छिड़ा हुआ था, और समस्त रूस उसकी ओर टकटकी लगाये हुए था। यद्यपि हार-जीत से बहुत कम लोगों का सरोकार था, पर युद्ध-गत घटनाओं के प्रभाव से कोई नहीं बचा था। असन्तोष था, पर सम्भावना के भाव इतने ज़बर्दस्त नहीं हो पाये थे कि, लोग देश-व्यापिनी क्रान्ति की आशंका कर सकते। पर ग़रीब से अमीर तक और नीच से

ऊंच तक प्रभाव डालने वाला एक प्रश्न व्याप रहा था। पेट्रोग्राड में खाद्य-सामिग्री का एक दम टोटा पड़ गया था, और मज़दूरों तथा ग़रीबों के घरों में 'त्राहि त्राहि' मची हुई थी। शाम को छुट्टी पाते ही, ये लोग रोटी-बाज़ार में रात २ भर खड़े रहते, पर तो भी रोटी मोल न मिलती ! सवेरे खाली-पेट फिर मिलों और फैक्ट्रियों में काम करने के लिए जाना पड़ता। यह हालत २४ घंटे से अधिक नहीं सही जा सकती थी।

'डयूमा' में भी रोटियों का सवाल था, और ज़ेम्स्टोव की सम्मिलित सभा ने भी एक बैठक करके खाद्य-सामिग्री को अपने प्रबन्ध में रखने का प्रस्ताव पास किया था, पर प्रधान मंत्री ने ऐसा कुछ भी नहीं होने दिया। मोशिये प्रोटोपोपाफ की मनमानी चलती थी। उसने ही यह अन्न-संकट मचा रखा था।

* * * * *

रात भर वर्फ के कोहरे में खड़े रह कर भी रोटी न पाने के कारण मज़दूरों में एकाएक असह्य असन्तोष उठ खड़ा हुआ और कई दूकानों में घुस कर उन्होंने रोटियाँ उठा कर और मिल-बाँट कर खा डालीं ! लूटने वालों के चेहरे पर क्रोध या आवेग का नाम तक नहीं था और दूकानदार लोग भी इस घटना पर उत्तेजित नहीं हुए, वरन् वे हक्काबक्का से रह गये ! पर यह क्रम भी स्थायी नहीं रह सकता था। खाने को कुछ नहीं था, और विना भोजन पाये कोई मनुष्य काम नहीं कर सकता। दूसरे दिन असन्तोष और बढ़ा। स्थान २ पर लूट-मार शुरू हो गई। लक्षण स्पष्ट थे, और इसी लिए

६ मार्च से प्रजा-पक्षीय "वोर्स गज़ट" तथा "रस्कया वोल्या" नामक पत्रों का प्रकाशन रुक गया। कई पत्र एक दिन तक और निकले। उन में से "रेच" (Retch) नामक पत्र ने जिस के सम्पादन में प्रसिद्ध देश-हितैषी मिल्यूकारू का भी हाथ था, बड़ी निर्भीकता से स्थिति का सामना किया। दूसरे दिन के अंक में उसने स्थिति पर इस प्रकार टिप्पणी दी थी:—

"..... समस्त देश को एकता के संगठन में बँध जाना चाहिए, और सर्व-साधारण को इस बात को जान लेना चाहिए कि, इस नाज़ुक समय पर जनता के कष्टों को दूर करने का प्रत्येक उपाय किया जायगा। यदि जनता को इस पर विश्वास बना रहे, तो, हम तुरन्त ही एक नया दृश्य अपने सामने पावेंगे! पर एकता के विना सब प्रयत्न निष्फल होंगे और सारी कार्रवाइयाँ धूल में मिल जाँयगी।"

जैसे २ सूर्य का प्रकाश फैला, ६ मार्च के दिन धड़ाधड़ मज़दूरों की हड़तालें शुरू हो गईं। लेकिन इन हड़तालों का कारण सरकारी षड्यन्त्र नहीं था। इन हड़तालों का डोरा अराजक केन्द्रों से डाला गया था। लोगों में यह भाव बिजली की तरह फैला दिया गया था कि "विना भोजन पाये, खाली पेट काम नहीं हो सकता।"

"भूख! भूख!!" की चिल्लाहट चारों तरफ फैल गई। 'नवस्की' सड़क के चारों तरफ लोग एकत्रित होने लगे, उनका उद्देश, यद्यपि, दंगा करना नहीं था, पर वे कहने यही गये थे कि विना भोजन पाये, कुछ ही क्षणों में सर्व व्यापी

अशान्ति उठ खड़ी होगी और पेट्रोग्राड की स्थिति डांवा-डोल हो उठेगी ! इस भीड़ में सभी प्रकार के स्त्री-पुरुष, और बालवृद्ध थे।

एकाएक 'कोसक' जाति के (ज़ार के विश्वस्त) सैनिकों की पल्टनें नगर में एकत्रित होने लगी ! दृश्य और भी भयानक हो गया। इन सैनिकों ने रूसी इतिहास में सदा प्रजा के उभड़ते हुए भावों को कुचला था। एक प्रकार से, भीतरी अशान्ति को कुचल डालने के लिए ये 'कोसक' सैनिक अधिकारी-तंत्र के एक मात्र हथियार थे। यद्यपि ज़ार की पुलिस—रूस की निरंकुश सत्ता—भी इस काम में यथेष्ट बदनाम रही थी, पर बड़े २ अवसरों पर 'कोसक' लोगों ने ही ज़ार के नाम की रक्षा की थी। सैनिकों को देखते ही भुक्खड़ों में कुड़बुड़ाहट फैल गई। पर इस घटना के बाद ही रूस को इतिहास-स्तम्भक घटनायें घटित हुईं। जनता पर गोली छोड़ने या उन्हें खदेड़ने के स्थान में, इन भयानक तथा वीभत्स वेश वाले सैनिकों ने बड़ी सावधानी से अपने घोड़े भीड़ के बीच से निकाले और दूसरी तरफ चले गये !

इस घटना पर, जनता के बीच से एक अत्यन्त ऊँची और गहरी आवाज़ उठी, बड़ी करतलध्वनि और हर्षध्वनि के साथ जनता ने कहा—"सहयोगियो !··· ··········"

सैनिकों ने मधुर स्वर में इस का उत्तर दिया, मानो जल्लाद भी मनुष्य-श्रेणी में उतर आये ! एक स्थान पर, जहाँ अधिक गड़बड़ी थी, और सैनिक कुछ हस्तक्षेप करने ही जा रहे थे, एक स्त्री ने अपनी भुजाओं को फैला कर

करुण स्वर में सैनिकों से कहा—"भाई ! हम लोग भूखे है !"

इस के उत्तर में कठोर हृदयों से भी एक मीठी प्रतिध्वनि निकली—"और उसी प्रकार हम !"

यद्यपि यह एक घटना थी, पर थी ठीक। उन भयंकर सैनिकों के कोड़े, जो एक समय में निरपराध तथा निरस्त्र जनता की पीठ पर अन्याय की मार मारने के लिए पड़ा करते थे, आज आलस्य और लापरवाही के साथ लटक रहे थे। जिन विद्यार्थियों को एक वार 'कोसक' सैनिकों ने, वन्दूकों और संगीनों का निशाना बनाया था, इस वार, उन्हीं विद्यार्थियों ने बड़ी निर्भीकता और स्नेह के साथ 'कोसक' सैनिकों से से बातचीत की। कोसक सैनिकों ने गुप्त रूप से उन पर यह भी प्रकट कर दिया कि, "हम अफसरों की आज्ञा होने पर भी किसी पर गोली न चलावेंगे !"

दूसरी रात्रि भी हलके सन्नाटे और गुनगुनाहट के साथ व्यतीत हो गई। हाँ, रात्रि में एक घटना अवश्य घटी। जनता पुलिस से एक ही दिन में पूरा बदला चुका लेना चाहती थी। इस लिए, लोगों ने कई पुलिस स्टेशनों पर ईंट और पत्थर फेंके। 'कज़ान कैथड्र्ल' के थाने पर ईंट-पत्थरों का गहरा आक्रमण हुआ, और जब पुलिस ने चार आदमियों को गिरफ्तार करके हवालात में डाल दिया, तो थाने के चारों ओर नगर-निवासियों की भीड़ लग गई। सम्भावना थी कि, जनता आवेश में पुलिस पर बुरी तरह टूट पड़ती, अथवा पुलिस ही एकदम गोली चलाने लगती, पर ज्यों ही पुलिस सैनिकों ने अपनी बन्दूकें साधी, त्यों ही

'कोसक' सैनिकों ने आकर उन चारों आदमियों को पुलिस की संरक्षा से लेकर जनता को सौंप दिया!

इतना सब हो जाने पर भी क्रान्ति के कोई लक्षण प्रकट नहीं हुए थे। जनता के भावों से प्रकट होता था कि, वह आगामी घटनाओं की प्रतीक्षा में थी। केवल पुलिस के साथ ही उसकी मार-पीट छिड़ी हुई थी।

लेकिन, शीघ्रही इस स्थिति में परिवर्तन हुआ। 'कोसकों' की बातों से उत्साहित होकर मज़दूर-दल आगे बढ़ा!

'नेवस्की' नामक सड़क के मैदान में एकत्रित हुए मज़दूरों में से एक ने बीच में आकर ज़ोर से कहा—

"अब हमें स्टर्मर, गुलिस्टन तथा प्रोटोपोपाफ़ से छुटकारा पा लेना चाहिए। जनता बिना भोजन के कोई काम नहीं कर सकती।"

तुरन्त ही दूसरी आवाज़ आई—"युद्ध शीघ्र बन्द होना चाहिए!"

तीसरी आवाज़ ने कहा—"नहीं, युद्ध तो जारी रहना चाहिए, हमारे भाइयों का रक्त व्यर्थ नहीं जाना चाहिए। केवल गवर्नमेंट से छुटकारा पाना हमारा उद्देश है!"

जब ये बातें हो रही थीं, कुछ 'कोसक' सैनिक घोड़ों पर सवार जनता के बीच में खड़े हुए इन छोटी २ वक्तृताओं को बड़े मनोरंजन के साथ सुन रहे थे। उन्होंने किसी प्रकार की गड़बड़ी या हस्तक्षेप नहीं किया।

* * * * * * * *

——o——

से दूसरे हिस्से तक नगर बिल्कुल प्रशान्त महासागर की तरह सन्नाटे की लहरें मार रहा था।

अब अधिकारियों की तरफ से कार्रवाई आरम्भ हुई। घुड़सवार पुलिस 'कोसक' सैनिकों के साथ सम्मिलित कर के भीड़ के बीच में भेजी गई। पुलिस ने लोगों से सड़कें छोड़ने के लिए कहा। पर कोई अपने स्थान से टस से मस नहीं हुआ! इस पर पुलिस ने क्रान्ति का पहिला निशाना साधा। "बैंग" की आवाज करती हुई गोली एक मज़दूर के शरीर को पार गई। स्वाधीनता का पहिला बलिदान मातृ-भूमि की धूल में लोटने लगा!

मंदिर के घंटे की गम्भीर आवाज़ की तरह यह समाचार सारे नगर में एक क्षण के भीतर फैल गया! अभी तक केवल भुक्खड़ों की हड़ताल थी, पर अब एक क्षण में ही स्थिति का रूपान्तर हो गया। "क्रान्ति—क्रान्ति!" का जनरव उठा और जनता, निरस्त्र जनता, सशस्त्र भयंकर पुलिस पर प्राणों को हथेली पर रख कर टूट पड़ी। स्थान २ पर लोगों ने ईंट-पत्थर और लोहे-लंगड़ से पुलिस पर आक्रमण किया। उधर बन्दूकें छुट रही थीं! भुक्खड़ों की अशान्ति रोकने का उपाय सरकार के हाथ में था, पर क्रान्ति का, ऐसी क्रांति का, जिसमें, जनता अपने पवित्र भावों की प्रेरणा से स्वाधीनता औरमनुष्यता की विजय के लिए मुँह-माँगा बलिदान—केवल प्राणों का बलिदान——करनेके लिए उद्यत होगई हो, सरकार के पास कोई उपाय न था। प्राणों का मोह कायरता थी और पीछे फिर कर देखना पाप। रक्त की रेखायें सफलता की सूचनायें थीं, और गोली की बौछारें संजीवनी वृष्टि!

स्वाधीनता के शिशु बड़े मुग्धकारी भावों में झूम २ कर जूझ रहे थे, क्योंकि, उन्होंने समझ लिया था कि, मुक्ति का केवल यही मार्ग है!

जैसी कि,आशंका मात्र थी,वैसी ही घटना सचमुच में घटित हो गई। जब अफसरों ने 'कोसक' सैनिकों को गोली छोड़ने की आज्ञा दी, तो, बन्दूकों के मुँह या तो आसमान की तरफ उठ गये या फिर ज़मीन की तरफ! गोलियों की बाढ़ दाग़ी गई, पर किसी के प्राण नहीं गये। एक अफसर ने एक सैनिक घुड़सवार के हाथ से बन्दूक छीनकर उसी को बन्दूक का निशाना बना दिया! इस घटना से जनता को और आशा हुई, और उसे ऐसा मालूम पडने लगा, मानों शीघ्र ही सेना उनसे मिल जायगी। इस मार्मिक अवसर पर, रह २ कर यही आशंका हो रही था कि, अब क्रान्ति अपना भीषण रूप प्रकट ही करना चाहती है।

तीसरे पहर के समय कुछ पुलिस कान्स्टेबिलों ने सैनिकों के कपड़े पहिन कर 'कोसकों' के बीच में खड़े होकर कुछ बन्दूकें दागीं! पहिले तो जनता ने समझा कि, 'कोसक' सैनिकों ने ही ये फायर किये हैं, पर उसने धीरज के साथ इसकी जाँच की और थोड़ी देर में पुलिस की चालबाज़ी का पता चल गया! पुलिस जनता को सैनिकों के विरुद्ध कर देने के लिए ही ये चालें खेल रही थीं।

शाम को कोई झगड़ा नहीं हुआ। थियेटरों और बायस-कोपों के दर्वाजे खुल गये, और स्थान २ पर लोग दिन की घटनाओं पर बातचीत करते हुए नज़र आ रहे थे। केवल ट्रामकार बन्द थी।

बीसियों स्थानों पर मज़दूरों की सभायें होरहीं थीं। ड्यूमा चुपचाप बैठी हुई, चिन्ता और प्रतीक्षा का अनुभव कर रही थी। कोई ख़ास बात नहीं हुई और इस रात्रि में भी थोड़ी बहुत चुगपुग और गुनगुनाहट के साथ पेट्रोग्राड निद्रा देवी की गोद में सो रहा। किसी को यह पता नहीं था कि, कल क्या होगा !

* * * * * *

रात्रि में रूसी गवर्नमेंट चुपचाप न थी। उसने स्थिति की गम्भीरता को पूरी तरह समझा। सर्वसाधारण के आवेश को कुचल देने का उसने निश्चय किया। प्रातःकाल सड़कों की दीवारों पर निम्नलिखित फौजी गवर्नर की आज्ञा चिपकी हुई मिली:—

"अगर मज़दूर लोग अपने काम पर न जाँयगे, तो उन्हें पकड़ कर सीमान्त पर रण-क्षेत्रों में भेज दिया जायगा। सर्वसाधारण को चेतावनी दी जाती है कि, वे सड़कों पर एकत्रित न हों, यदि वे इसके विरुद्ध काम करेंगे, तो, पुलिस और सेना किसी भी प्रकार उन्हें हटा देगी।"

पर जनता ने इसकी तनिक भी परवाह न की ! चौराहों पर पुलिस और घुड़सवार सैनिकों का विकट पहरा बैठाया गया था। पर एक बात थी। सैनिकों में एक भी 'कोसक' सैनिक न था ! उन की अनुपस्थिति से बड़ी कुड़कुड़ाहट फैली। पर कड़े पहरे और सैनिकों की भीड़ से जनता भय-भीत नहीं हुई। उसका आवेश बढ़ता गया और उसने अपने रक्त से मातृभूमि का तर्पण करना निश्चय कर लिया। वर्जित

है। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि, इस वार किसी दुर्घटना का दायित्व ज़ार पर आरोपित न हो।"

इस तार की कई प्रतियाँ रण-क्षेत्रों पर गये हुए कमान्डरों के पास भी समर्थन के लिए भेजी गईं। इस घटना से, यह प्रकट हुआ कि, अन्त में एक वीरपुरुष आगे बढ़ा।

ज़ार के पास से किसी उत्तर के आने के पूर्व ही, रूसी सरकार ने अपनी बंधी हुई नीति से काम लिया। वह समझती थी कि, ऐसे अवसर पर 'डयूमा' तोड़ दी जानी चाहिए, प्रधान मंत्री गुलिस्टन ने डयूमा के तोड़ देने की घोषणा करदी! सरकारी दृष्टि से डयूमा टूट गई, पर निश्चय ही अब डयूमा गवर्नमेंट द्वारा टूटने की वस्तु नहीं रह गई थी। मोशिये रोडजिन्को ने अपने कर्तव्य का पालन किया। अपने हाथ में सरकारी आज्ञा का काग़ज़ लिये हुए उस वीर-पुरुष ने बादलों की तरह गरजते हुए कहा-"रूसी सरकार ने डयूमा को तोड़ दिया है, पर डयूमा टूट नहीं सकती। सहयोगियो, मेरे साथ खड़े होकर स्थिति का सामना करो। आज से, डयूमा रूस की संगठित सत्ता है!"

यद्यपि रोडजिन्को ने कई बार स्पष्टतः मृत्यु का सामना किया था, पर आज उन्होंने जानबूझ कर मृत्यु का आवाहन किया। लेकिन, वह अकेले नहीं थे, उनके भीम सदृश विशाल शरीर से राष्ट्रीय क्रोध की चिनगारियाँ निकल रही थीं, उनका वीभत्स मुख-मण्डल क्रान्ति का ज्वाला-मुखी भासित हो रहा था, लोगों को एक वीर नेता की आवश्यकता

(१२) मो० अलेक्ज़ेण्डर करेन्स्की, प्रजातंत्र का द्वितीय प्रधान मन्त्री ।

थी, और वह नेतृत्व रोडजिन्को में सम्पूर्ण अंशों के साथ अवतरित हुआ था।

रोडजिन्को क्रान्ति-स्तम्भ थे और क्रान्ति के उपासक उनके चारों तरफ श्रद्धा के साथ एकत्रित हो रहे थे। इस दिन से लेकर उस दिन तक, जब तक प्रजातंत्रीय अस्थायी सरकार का संगठन नहीं हो पाया, ड्यूमा की पीली इमारत क्रान्ति का उपदेश-मन्दिर बनी रही। ड्यूमा के भवन में ही रूस की स्वाधीनता का जन्म हुआ था।

रविवार की रात्रि ने पेट्रोग्राड को ही नहीं, वरन् समस्त रूस को दो प्रबल सहायक दिये। एक तो ड्यूमा, और दूसरी सेना, जिसने मनुष्यता की रक्षा के लिए, अपने शस्त्रास्त्र जनता की तरफ से हटा कर ऊपर की ओर कर दिये! पेट्रोग्राड में आई हुई सेना ने निश्चय कर लिया कि, कल से जनता और हम एक हैं।

इस प्रकार अशान्त और तमाच्छादित रजनी ने पेट्रोग्राड में क्रान्ति का लाल झण्डा खड़ा कर दिया, जो रूस की स्वाधीनता का एक पवित्र चिन्ह हुआ!

क्रान्ति की सफलता !

पेट्रोग्राड पर क़ब्ज़ा !!

१२ मार्च, सोमवार का प्रातःकाल रूस की स्वाधीनता के सूर्य के साथ उदित हुआ था। पता नहीं क्यों और कैसे, सारे नगर में लाल झंडियाँ फहरा रही थीं। स्वाधीनता का " राष्ट्रीय गान " स्थान २ पर अलापा जा रहा था! रविवार की चिन्तायें और दुःशंकायें निर्जल और धुँधले बादलों की तरह आँधी में बह गई थीं, भावनायें स्वतंत्रता के नवीन क्षितिज से उठ कर रूसी निरंकुशता और स्वेच्छाचार की रूढ़ियों को मिटा रही थी। ऐसा मालूम पड़ता था कि, जनता का कार्य-क्रम निश्चित हो चुका है, और वह क़दम ब-क़दम अपने ध्येय की पूर्ति की ओर चली जा रही है।

६ बजे प्रातःकाल तक पेट्रोग्राड की सभी सड़कें भीड़ से पट गईं! सब लोग भावी घटनाओं के जानने के लिए उत्सुक नेत्रों से इधर-उधर ताक रहे थे। स्थान २ पर सैनिकों का पहरा था, पर इस बात के पता चलने में तनिक भी विलम्ब न हुआ कि, सैनिकों ने अपना फ़ैसला आप करना विचार लिया है, और उनके फ़ैसले पर ही रूस का फैसला निर्भर है। बड़ी २ सड़कों पर घुड़सवार सैनिक साथ ही 'कोसक' सैनिक भी, पहरे पर नियुक्त थे। इतना ही नहीं, पेट्रोग्राड में जितने भी शाही और सरकारी गार्ड थे, सब के सब नगर भर में फ़ैला दिये गये थे। पर, आज

घटनाओं का क्रम कुछ और ही था। और ये घटनायें, कुछ ही घंटों के भीतर एक के बाद दूसरी, घटित हुई!

सचमुच में, यह अत्यन्त असम्भव बात थी, पर यह घटित अवश्य हुई। शाही गार्डों में से "प्रियोब्रिजेन्स्कीज़" नामक दल के गार्डों को जब यह हुक्म दिया गया कि, "भीड़ पर गोली दागो!" तो, उन्होंने क्रान्ति मचा दी! उन्होंने अपने अफसरों को ही गोली का निशाना बनाया और फिर स्वतन्त्र होकर बड़ी लापरवाही के साथ इधर-उधर घूमने लगे! यही हालत "वालन्स्कीज़" और "पैत्लोवस्कीज़" नामक गार्डों की हुई। ये दल भी अपने अफसरों को मार कर जनता से जा मिले! सेना के चुने हुए दल अब जनता के पक्ष में थे। यह घटना १५ मिनट के भीतर हुई और कुछ ही मिनटों में इस की ख़बर चारों तरफ फैल गई। जिस प्रकार स्कूल से छूटे हुए छात्र इधर-उधर भटकते फिरते हैं, उसी प्रकार की स्थिति इन सैनिक-दलों की थी। इन्होंने लूट-मार नहीं की, और न शराब पीकर हुल्लड़ मचाना ही शुरू किया। वे सिर्फ प्रसन्नता और आनन्द से किलकते फिर रहे थे, उनके मुखमण्डल की आह्लाद-रेखायें जनता को शुभ विजय का सन्देश देरही थी। थोड़ी ही देर में इन सैनिक-दलों ने शाही मेगज़ीन पर क़ब्ज़ा कर लिया! पेट्रोग्राड का सब से बड़ा अस्त्रालय अब जनता के हाथों में था, थोड़ी ही देर में क्रान्तिकारी जनता भी सशस्त्र होकर निकल पड़ी! पुलिस, जो सरकारी हुक्म में थी, और अन्त तक रही, अब जनता के मुक़ाबिले में गोली का जवाब गोली से ही पारही थी। धीरे २ जितनी सेनायें उद्दण्ड क्रान्तिकारियों को दबाने के लिए भेजी गईं, सब की सब जनता से मिल गईं!

क्रान्ति की खुली लड़ाई आरम्भ होगई ! जनता भी सशस्त्र थी और पुलिस भी । जनता की तरफ २० हजार सैनिक खड़े थे, और पुलिस की संख्या थी केवल ३॥ हजार ! सेना की सहायता ने ही जीवन-वंशी फूँकी थी, और रूसी क्रांति का यह पहलू सदा चिरस्मरणीय रहेगा, क्योंकि, अत्याचारियों के राज्य में, सरकारी नौकर भी——यहां तक कि शासन-रक्षा का मुख्य स्तम्भ सेना भी —— राज-भक्त नहीं रहती ! स्वाधीनता और लोकसत्ता का सत्य प्रेम अन्याय की ऊँची से ऊँची मनमोहक अट्टालिकाओं को एक क्षण में चूर कर देता है। भावों के इस संग्राम में अन्यायी के नमक से पली हुई रूसी सेना बाग़ी हो चुकी थी, अब अन्याय से सताये गये क़ैदियों की मुक्ति की पारी आई । पेट्रोग्राड के जेल तिलस्मी तहख़ाने थे, पता नहीं कितने राजनैतिक क़ैदी जेल के भीतर ही सड़ाकर या पानी के हौज़ों में डुवाकर मार डाले गये थे, कितनों ही के प्राण लेकर अधिकारियों ने उनके बीमार होकर मरजाने की सूचनायें निकाल दी थीं ! क्रोध-भरी जनता जेलों की ओर लपकी, हाथ लगाने की ज़रूरत नहीं पड़ी, सहायक सैनिकों ने जेल के फाटक तोड़ दिये ! इस प्रकार प्रेवेन्टिव क़ैदखाना, क्रेस्टी क़ैदखाना तथा डिपोर्टेशन जेल के फाटक खुल गये और राजनैतिक एवं फौजदारी आदि सभी तरह के क़ैदियों ने आश्चर्य-चकित नेत्रों से बाहर आकर स्वाधीन पृथ्वी पर पैर रखे और स्वतंत्र वायु-मण्डल में श्वास ली। स्वाधीनता की पूज्य देवी अपनी पीड़ित सन्तान को बुला २ कर गले से लगा रही थी ! रूसी जनता गद्गद् हृदय और प्रसन्न तथा सजल नेत्रों से अपने कारागार-मुक्त भाइयों का स्वागत कर रही थी, एक २

स्थान का यह आनन्द-दायी कोहराम शहर के बहुत बड़े भाग को गुंजा रहा था।

क्रांति की आंधी में पेट्रोग्राड बहा जा रहा था, पर एक आश्चर्य-प्रद बात यह थी कि, क्रान्तिकारियों का अभी तक कोई नेता नहीं था। सड़कों पर सैनिकों, छात्रों और मज़दूरों तथा स्त्री-पुरुषों की खचाखच भीड़ थी। जेलों के तोड़ने के बाद लोग पुलिस पर टूट पड़े। रूसी जनता के व्यवहारिक जीवन में पुलिस सदा से कांटा रही थी, स्वाधीनता के इच्छुकों ने भावों के आवेश में पुलिस से बड़ी पशुता के साथ बदला निकाला। कई थाने और हेड पुलिस-स्टेशन फूंक दिये गये, कान्सटेबिलों पर गोलियों की बौछारें छोड़ी गईं, और अभी तक, जनता की स्वाधीनता को पराधीनता की बेड़ियाँ पहिनाने वाली हवालातें और दण्ड-प्रद अग्निदेव की रक्त-वर्ण शिखाओं के बीच में विलीन हो गये। इस से भी अधिक महत्व की घटना यह हुई कि, खुफिया पुलिस का दफ़्तर भी इसी प्रतिहिंसक अग्नि के समर्पण होगया! यह दफ़्तर रूस में दमन-नीति का केन्द्र तथा जर्मन चालों का अड्डा समझा जाता था। रूसी मात्र इस विभाग को घृणा की दृष्टि से देखते थे, इस बड़ी इमारत के जलते समय ऐसा दृश्य मालूम पड़ता था, मानों स्वाधीनता-प्रिय रूसियों ने किसी पर्व्वत के ऊपर अपनी स्वतन्त्रता के नाम पर पवित्र दीपक प्रज्वलित किया हो। फ्रांसीसी क्रान्ति के समय जो बात 'बैस्टिल' के ले लिये जाने से समझी गई थी, वही बात रूसी खुफिया पुलिस के दफ़्तर के जला देने से रूस में समझी गई!

जब इधर रूसी पराधीनता की चितायें भस्म हो रही थीं, तब दूसरी तरफ थोड़े से ही विरोध के पश्चात सेन्ट पीटर

और सेन्ट पाल के गढ़ भी जनता के हाथों में आ गये। अब अधिकारियों के खड़े हो सकने योग्य भी कोई सुरक्षित स्थान बाक़ी नही बचा!

* * * * * *

पेट्रोग्राड में इतनी घटनायें घटित हो चुकीं, पर, ज़ार के पास से कुछ भी उत्तर नहीं आया! इतनी शक्ति रखते हुए भी पेट्रोग्राड में रूसी सरकार शिथिल सी हो गई थी, तब ड्यूमा के सभापति मोशिये रोडज़िन्को ने निम्न-लिखित दूसरा तार ज़ार के पास भेजाः—

"......स्थिति और अधिक भयङ्कर होती जा रही है। तुरन्त कोई उपाय कीजिए, नहीं तो कल तक हाथ की वस्तु बेहाथ हो जायगी। यह अंतिम घड़ी है, जिसके भीतर देश और राज-कुटुम्ब के भाग्य का निपटारा हो जाना चाहिए।"

इस तार के पहुंचने पर ज़ार की निद्रा भंग हुई। उन्होंने पेट्रोग्राड के सैनिक गवर्नर को यह तार दियाः—

"मैं सीमान्त से सेनायें भेज रहा हूं, यदि इस पर भी उपद्रव शांत न हुआ, तो मैं खुद आऊंगा। कठोर से कठोर उपायों द्वारा जनता को दाब दो।"

रूसियों के लिए 'छोटे पिता' (*Little Father*) की यह आज्ञा थी, लेकिन उन्हें यह नहीं मालूम था कि उनकी (ज़ार की) सत्ता का अब लोप हो चुका है।

उधर ज़ार की आज्ञा का आना हुआ, और इधर जनता का काम पक्के संगठन पर आरम्भ हो गया। नगर के समस्त मार्ग तथा चतुर्थांश नगर क्रान्तिकारियों के क़ब्ज़े में आ चुका था। साथ ही, सैकड़ों मोटरों, बग्घियों, तथा बाइसि-

कलों पर भी उनका अधिकार हो गया था, और उन सब पर अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित ड्राइवर नियुक्त कर दिये गये थे। इन ड्राइवरों के टोपों में लाल कपड़े की छोटी २ झण्डियां फहरा रही थीं। ये लोग बड़े मस्त ढङ्ग से नगर में इधर उधर घूमते-फिरते थे।

इस समय तक, पेट्रोग्राड में जितनी भी सेना थी, जनता से मिल चुकी थी, केवल क्रूर पुलिस अभी तक सरकारी हुक्म में थी, सो भी केवल इसलिए कि अन्तर्देशीय मन्त्री मो० प्रोटोपोपाफ ने उसे खाद्य-सामिग्री देने का लोभ दे रखा था। एक मकान के ऊपर से पुलिस ने फिर जनता पर गोलियाँ दागीं। बस, सशस्त्र जनता ने पुलिस को ढूंढ़ २ कर मारना आरम्भ कर दिया, इसके सिवा पेट्रोग्राड में क्रान्तिकारियों के लिए कोई दूसरा काम बचा भी नहीं था। जिस प्रकार बिल खोद कर चूहे पकड़े जाते हैं, ठीक उसी तरह क्रोध पूरित जनता ने पुलिस को ठिकाने लगाया। संसार की भीषण घटनाओं में शायद ही कभी ऐसा दृश्य देखने में आया होगा, जब कि, इतनी बेदर्दी के साथ पुलिस जैसी ज़बर्दस्त सत्ता का विनाश किया गया हो। शायद फ्रांसीसी क्रान्ति के समय भी ऐसी निर्दयता के साथ क्षुब्ध जनता ने पुलिस की हत्या नहीं की थी।

सचमुच में, यह समय रूस के राष्ट्रीय अभिमान का द्योतक है। जब कि लोग निरंकुश और अत्याचारी पुलिस के पीछे पड़े हुए थे, ऐसे ही समय, एक अत्यन्त छोटी, किन्तु, रूस के लिए बड़े गर्व की घटना भी घटित हुई, और उसका उल्लेख कर देना इस अवसर पर हमें बहुत भला मालूम पड़ता है।

एक १० वर्ष का लड़का, एक छोटी सी गली से दौड़ता हुआ कुछ सैनिकों के पास आया। उसके एक हाथ में भूरे रँग की बड़ी सी पिस्तौल था। उसने आते ही सैनिक की तलवार का निचला हिस्सा पकड़ लिया और फिर व्यग्र स्वर में उसने ज़ोर से कहाः—

"अरे आदमियो! मेरे साथ आओ। मैं जानता हूँ, जहाँ पर दो पुलिसमैन छिपे हुए हैं!"

मुसकराते हुए कई सैनिक उस लड़के के नेतृत्व में चल दिये! थोड़ी ही देर में, वह छोटा लड़का अपने सैनिक अनुयायियों के साथ उन दोनों पुलिसमैनों को पकड़वा कर चौरस्ते पर ले आया!

* * * * * *

साम्राज्य की राजधानी में, जनता की इस सफलता में बहुत बड़ा अंश इस बात का भी था कि, सर्व-साधारण उदारता की शिक्षा प्राप्त किये हुए थे। उन्होंने आपस में किसी प्रकार की लूट-मार नहीं की, अन्यथा ऐसे नाज़ुक अवसरों पर दङ्गों का होना बहुत सम्भव रहता है। एक दिन के कार्य्य के बाद, ड्यूमा के सभापति मो० रोडज़िन्को ने स्थिति को देखते हुए नागरिक पुलिस के संगठन की आवश्यकता समझी। उन्होंने अपने एक सार्वजनिक व्याख्यान में कहा कि, यदि हमें अपने ध्येय को आगे बढ़ाना है, तो, इस बात की आवश्यकता है कि, नगर का प्रबन्ध ठीक २ कर दिया। सार्वजनिक संरक्षा पहिली आवश्यक वस्तु है।

सिर्फ विद्यार्थियों की पल्टनें, जिन में छोटे बड़े सभी प्रकार के विद्यार्थी सम्मिलित थे, बनाई गई, और ये कई

(१२) मो० मिल्यूकाफ़ प्रजातन्त्र का परराष्ट्र-मन्त्री।

महीने तक पेट्रोग्राड की नागरिक पुलिस का काम करती रहीं। यह किसी पूर्व सङ्गठन का फल नहीं था, छात्रों से यह बात पहिले कभी नही कही गई थी, कि, क्रांति के दिनों में तुम्हे पुलिस का काम सौंपा जायगा, या तुम्हें इस प्रकार से पुलिस का काम करना पड़ेगा। केवल समय का आवश्यकता और स्थिति की उपयुक्तता ने ही ये भाव उनमे भर दिये थे। और सारे काम शान्ति-पूर्वक निभते चले जा रहे थे।

बाजारों में थोडी बहुत लूटमार हुई, पर इसे लूट कहना कलङ्क की बात है। भूखे लोग लूट नहीं करते। वे अपनी अनिवार्य्य आवश्यकता की पूर्ति करते है। इस लिए ग़रीबों का रक्त चूसने वाले कृपण व्यापारियों की दूकानों से अपनी आवश्यकता की वस्तुयें उठा लेना रूसी जनता ने अनुचित नहीं समझा।

इन्हीं घटनाओं के बीच में कुछ पुलिस-मैनों ने "अस्टोरियन होटल" की छत पर से सैनिकों पर गोलियाँ दाग़ीं, इस होटल में अधिकतर सरकारी अफ़सर रहा करते थे, और युद्धारम्भ में शराब की बिक्री बन्द कर देने की आज्ञा निकाल देने पर भी, यह होटल सरकारी अफ़सरों के हाथ शराब बेंचा करता था। सैनिकों ने तुरन्त होटल की तलाशी ली और शराब की बहुत बड़ी मिक़दार पाई। लेकिन, पीने के स्थान पर सैनिकों ने सब की सब शराब नाली में बहा दी। सैनिकों में इस भाव का होना सचमुच रूसी जाति मात्र के लिए एक सौभाग्य और सराहना की बात थी। और इसी व्रत तथा उसकी पालना से, आगे चल कर इस राष्ट्रीय महा संग्राम में बहुत कुछ सफलता मिली। लेकिन, दूसरी तरफ, पिछली घटनाओं को देखते हुए यह मानना पड़ेगा कि, रूसी अफसरों के

लिए शराब की मनाही करके ज़ार ने अपने हाथों अपनी मौत का परवाना लिखा!

जब, होटल में गिरफ्तारियां हो रही थीं, तब एक स्त्री ने कुछ रुपयों की थैलियाँ लाकर सैनिकों को दीं, और कहा कि-"हमारी रक्षा करो।"

पर सैनिकों ने कहा कि-"अपनी थैली अपने पास रखो, इस समय हम दूसरे ही प्रकार का काम कर रहे हैं।"

यद्यपि यह बात सब पर प्रकट थी कि, यह विचित्र परिवर्तनों का समय है, पर उन परिवर्तनों का विवरण सर्व-साधारण तक पहुंचाने के लिए कोई मार्ग नहीं रहा था। समस्त समाचार-पत्रों का प्रकाशन बन्द हो गया था, केवल कभी २ हाथ के लिखे हुए नोटिस स्वयं-सेवकों द्वारा बांट दिये जाते थे। इन नोटिसों में घटनाओं का संक्षिप्त, परन्तु, सच्चा विवरण रहता था। डयूमा की बैठकें बराबर होती थीं, और रोडजिन्को तथा उनके अनुयायी समस्त घटनाओं पर पूरी दृष्टि रखते थे। डयूमा क्या थी, अदालत भी थी, फौजी स्टेशन भी थी और प्रबन्धक संस्था भी थी। एक २ करके समस्त सेनाओं ने डयूमा के प्रति अपनी भक्ति प्रकट की और उसकी आज्ञाओं को मानना स्वीकार किया। जब, "प्रियोब्रिजेन्स्कीज़" नामक गार्डों ने भी डयूमा की आज्ञा-कारिता अपने ऊपर ली, तो बड़ा दर्शनीय दृश्य सामने आया। इस सैनिक-दल के सिपाही और अफसर बड़े लम्बे चौड़े जवान थे, जब उन्होंने डयूमा के सभापति मो० रोड-जिन्को को आते हुए देखा तो, एक अफसर ने बड़े गौरव-स्वर में कहा—"प्रियोब्रिजेन्स्की, सावधान!"

समस्त सैनिक सलामी के लिए झुक गये । मो० रोडजिन्को ने सैनिकों की ओर देखते हुए कहा—"मैं तुम्हारे यहाँ आने के कारण तुम्हें धन्यवाद देता हूं, क्योंकि, तुमने 'ड्यूमा' को सार्वजनिक संरक्षा तथा देश के राष्ट्रीय मान की रक्षा में सराहनीय सहायता दी है । तुम्हारे अन्य भाई रूसी सत्ता और स्वाभिमान-रक्षा के लिए रणक्षेत्रों में लड़ रहे हैं । मुझे इस बात का बड़ा गर्व है कि, तुम्हारे ही दल के साथ मेरा लड़का भी युद्धारंभ से लड़ाई पर गया हुआ है ! लेकिन अब आवश्यकता है कि, जिस ध्येय को तुम ने अपने सामने रखा है, उसको आगे बढ़ाने के लिए तुम लोग एक सुसङ्गठित रूप में फिर बँध जाओ, और नियत किये गये अफसर की आ-ज्ञाओं का पूरी तरह से पालन करो । तुम लोग, और हम भी, इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं कि, बिना अफसर के सैनिक लोग कुछ भी नहीं कर सकते । मैं आशा करता हूं कि, तुम लोग अपने अफसरों की आज्ञाओं को मानोगे और उन पर उसी प्रकार विश्वास करोगे जिस प्रकार हमारा उन पर विश्वास है । अब तुम लोग अपने कैंपों में जाओ, और जब तुम्हारी पुकार हो, तो सब से पहिले आओ !

सैनिकों ने सभापति के व्याख्यान के उत्तर में कहा-"हम लोग सेवा में उपस्थित हैं, हमें आप आज्ञा दीजिये !"

मो० रोडजिन्को ने कहा कि—"रूस के पुराने अधिकारी रूस को उचित मार्ग द्वारा शासित करने में असमर्थ हैं । नई सरकार का संगठन शीघ्र होगा, इस सरकार पर सब लोग विश्वास करेंगे । तुम भी इस सरकार में विश्वास रखना ।"

इसी प्रकार अन्य सैनिक-दलों को भी मो० रोडजिन्को ने उपदेश दिया ।

इसी दिन सैनिकों के बीच में और भी उपयुक्त कार्य किया गया। बहुतेरे कैम्पों में जा जा कर मो० मिल्यूकाफ़ ने नये संगठन पर उनको विश्वास करने का आदेश दिया। इसी प्रकार मोशिये अलेक्ज़ेण्डर करेन्स्की ने भी तोप-विभाग के "मिखैलीवस्की" कालेज में जाकर नई सरकार के आज्ञा-पालन की शिक्षा दी।

उसी दिन एक सैनिक-डेपूटेशन के सामने ड्यूमा के सभापति ने यह घोषणा भी की कि—

"...वर्तमान नाज़ुक स्थिति का एक ख़ास पहलू यह है कि, पुराने अधिकारियों के हाथों से निकल कर रूसी शासन-सत्ता नये अधिकारियों के हाथों में आरही है। इस काम की पूर्ति में, ड्यूमा पूरी तरह से भाग ले रही है। इस कार्य की पूर्ति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि, शान्ति और रक्षा बनी रहे।"

प्रत्येक नेता के मुह से सार्वजनिक रक्षा और शान्ति की बात निकल रही थी, और इसी कारण से सर्व-साधारण को भी पता चल गया कि, ड्यूमा की आज्ञा शिरोधार्य करने में ही क्रान्ति की सफलता है। इस के अतिरिक्त एकाध दिन के सिवा लूट-मार भी किसी स्थान पर नहीं हुई। "प्रियो ब्रिजेन्स्की" गार्डों ने अपने ऊपर 'ड्यूमा' की रक्षा का भार ले लिया।

क्रान्ति का क्रम अब तक एक अच्छे ढंग से चला जा रहा था, पर इस के होते हुए भी नई अस्थायी सरकार की स्थापना अत्यन्त आवश्यक हो रही थी। इसलिए ड्यूमा ने अपनी एक बैठक में नई सरकार की स्थापना का प्रस्ताव

पास कर दिया! केवल अन्तिम स्वीकृति के लिए वोट लेने रह गये थे, तब तक "मेरी पैलेस" से पुराने (ज़ार के) मंत्रिमण्डल का मो० रोडज़िन्को के नाम यह बुलावा आया कि, हम लोग आप से मिलना चाहते हैं।

मो० रोडजिन्को निर्भीकता-पूर्वक, नगर की रक्षा का पूरा प्रबन्ध करके, मन्त्रिमण्डल के सामने जा उपस्थित हुए। सभी विभागों के मंत्री वहाँ पर उपस्थित थे, और साथ ही, जार के भाई ग्रैन्ड डयूक मिकाइल भी वहाँ पर थे। मोशिये रोडजिन्को ने उन लोगों से कहा कि, डयूमा सर्व-साधारण की इच्छा के अनुसार काम करती हुई, नई सरकार की स्थापना करने जा रही है। क्योंकि, यदि नई अस्थायी शासन-सत्ता की स्थापना न की जायगी, तो राजधानी में किसी भी प्रकार शान्ति और संरक्षा नहीं रह सकेगी, और देश की अराजकता तथा उपद्रवों से रक्षा करना भी असम्भव हो जायगा।"

आधे से अधिक मंत्री-गण आत्म-समर्पण कर देने के लिए तैयार थे, उन का कहना केवल यह था कि, नई अस्थायी सरकार के मुखिया-पद पर ग्रैन्ड डयूक मैका-इल की नियुक्ति की जाय, पर युद्ध-मन्त्री जनरल वेलियफ ने कहा,-"हम तब तक सर्वसाधारण से युद्ध छेड़े रहेंगे, जब तक जार से पास से कोई आज्ञा न आजायगी, क्योंकि, मैंने एक सैनिक की हैसियत से ज़ार की आज्ञा-कारिता की शपथ ली है।"

कोई बात तय नहीं हुई। अन्त में, मो० रोडज़िन्को चले आये। डयूमा ने, सर्व-मति से नई अस्थायी सरकार के संगठन की अन्तिम स्वीकृति देदी। इस के साथ ही पुराने

मंत्रियों की गिरफ्तारी के आज्ञा-पत्र भी निकाल दिये गये। पर, जब "मेरी पैलेस" में गिरफ्तारी के लिए सैनिक पहुंचे, तो मालूम हुआ कि, सब चिड़ियाँ उड़ गई हैं! मंत्रिमण्डल के सब सदस्य प्रेफेक्ट पैलेस में जाकर छिपे थे।

इसी दर्म्यान में, कई सौ सैनिक अफसर, जो अभी तक पुरानी सरकार की तरफ थे, डयूमा से आ मिले। ये लोग फुटकर सैनिकों के ऊपर नियुक्त कर दिये गये। कैप्टन कारोलाफ (कोसक सैनिक) ने डयूमा की रक्षा करने वाली फौज का इन्तज़ाम अपने हाथों में लिया और कर्नल इगलहर्ट पेट्रोग्राड की सैनिक रक्षा के कमाण्डर बनाये गये। ये दोनों व्यक्ति अत्यन्त योग्य तथा अनुभव-शील थे।

इतना काम कर चुकने के बाद, रोडजिन्को ने तुरन्त नई सरकार का संगठन कर डाला।' असल में, नई सरकार डयूमा के चुने हुए सदस्यों की एक छोटी सी कार्य-कारिणी कमेटी थी, जिसे "नई अस्थायी सरकार" का रूप दिया गया था। इस में, मो० रोडजिन्को, प्रिंस लौफ, करेन्स्की, मिल्यूकाफ़, नेकरासाफ, कोनोवलाफ, डमिट्र्यूकाफ, चेज़, शल्गिन, शिडलोवस्की, कारोलाफ तथा रिजवस्की नामक १२ आदमी थे।

इस कार्य-कारिणी कमेटी ने शीघ्र ही निम्न-लिखित घोषणा-पत्र प्रकाशित किया:—

"ड्यूमा की कार्यकारिणी कमेटी, उन स्थितियों को देखते हुए, जिन्हें पुरानी सरकार ने अपने शासन के ढंगों से इस समय उत्पन्न कर दिया था, यह आवश्यक समझती है कि, सार्वजनिक संरक्षा और शासन की दृष्टि से वह शासन-भार अपने ऊपर लेले।

"स्थिति को पूरी तरह समझते हुए, कमेटी सर्व-साधारण तथा सेना से प्रार्थना करती है कि, वे इस नाज़ुक समय पर इस दायित्वपूर्ण कार्य-निर्वाह में हमें सहायता दें, और राष्ट्र की मनोकामना पूर्ण करने तथा नई सरकार में विश्वास उत्पन्न करने के लिए भी मदद करें।"

निम्न-लिखित दूसरी घोषणा प्रकाशित की गई थी:—

"...ड्यूमा की कार्य-कारिणी कमेटी, पेट्रोग्राड-निवासियों से प्रार्थना करती है कि, वे सार्वजनिक उपयोग की सरकारी संस्थाओं को—जैसे कि, तार, नल, बिजली-घर, ट्रामवे तथा सरकारी दफ़्तरों आदि को—रक्षा करते रहें। इसी प्रकार कमेटी यह प्रार्थना भी करती है कि मिल, कल-कारखानों तथा फैक्टरियों की भी रक्षा आप लोग करें। इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि, ऐसी चीज़ों के नष्ट हो जाने से देश का बड़ा भारी नुक़सान हो जाता है, क्योंकि, पानी, रोशनी और अन्य आवश्यक वस्तुओं की सभी को ज़रूरत रहती है।

"साथ ही, यह भी ग़ैर-क़ानूनी है कि, किसी की जान माल को नुक़सान पहुँचाया जाय। बिना कारण रक्त बहाना या किसी का माल लूटना, ऐसा करने वाले के अन्तःकरण को अपवित्र कर देता है, और साथ ही ऐसे कामों का प्रभाव भी बुरा पड़ता है।"

इन घोषणाओं का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा और बहुत कुछ इसी प्रभाव के कारण, रूसी क्रान्ति में रक्त की धारायें नहीं बहीं।

* * * * *

ठीक रात्रि के १२ बजे, एक व्यक्ति ऊनी लबादा पहिने हुए, ड्यूमा के दर्वाजे पर आया, और एक सैनिक अफसर से पूंछने लगा कि—"क्या आप एक अफसर हैं?"

अफसर ने कहा—"जी हाँ!"

"तो फिर, मुझे ड्यूमा की कमेटी के पास ले चलो, मैं, पुराने मंत्रिमण्डल का अन्तर्देशीय मन्त्री प्रोटोपोपाफ हू, मैं आत्म-समर्पण करने आया हूँ!"—उस अपरिचित व्यक्ति ने कहा।

इस समय यदि कोई सैनिक चाहता, तो मोशिये प्रोटोपोपाफ के टुकड़े २ कर सकता था, और राष्ट्रीय दुःखों के ऋण से मुक्त हो सकता था, पर केवल एक सैनिक के पहरे में मो० प्रोटोपोपाफ ड्यूमा की कमेटी के सामने भेज दिये गये।

* * * * *

इस प्रकार १२ मार्च, सोमवार का दिन समाप्त हुआ। नेवस्की इमारत के आस पास अन्वेषण-प्रकाश की दीप्तमयी किरणें छितरी हुई थीं, इन किरणों के प्रकाश बतला रहे थे कि, रूस की स्वाधीनता का दिवस आ गया है!

नवीन रूस का जन्म।

पहिले पेट्रोग्राड के निवासियों को यह आशंका थी कि, ज़ार द्वारा भेजी गई सेनायें पेट्रोग्राड में आकर युद्ध छेड़ देंगी। पर यह कल्पना केवल कल्पना निकली, क्योंकि, जो २ सेनायें पेट्रोग्राड में आती गईं, सबकी सब क्रान्ति-कारियों से मिलती गईं! लाल झण्डे के नीचे समस्त पेट्रोग्राड अपनी नवीन स्वाधीनता के भावों में भरा हुआ, ललाट ऊंचा किये हुए खड़ा था।

१३ मार्च (मङ्गलवार) का दिन न केवल पेट्रोग्राड के लिए ही महत्व का था, वरन् सारे रूस भर की स्वाधीनता का इसी दिन जन्म हुआ समझिये। १३ मार्च के प्रातःकाल तक पेट्रोग्राड की पूरी विजय नहीं प्राप्त हो पाई थी। जहां तहां पुलिस से चोटें हो रही थीं, और साथ ही पुलिस के कर्मचारी गिरफ़्तार कर के ड्यूमा के सामने भेजे जा रहे थे। मो० प्रोटोपोपाफ़ के अनुयायी अभी तक पुलिस के थानों की छतों पर छिपे हुये कभी २ जनता पर गोलियां दाग देते थे! अन्त में, अकेली पुलिस का नाम मिटाने के लिए कई हजार सैनिक शहर में गस्त लगाने लगे, और इस प्रकार सैकड़ों पुलिस कान्स्टेबिल पकड़ २ कर जेल में ठूँस दिये गये, सैकड़ों भेष छिपाकर भाग गये!

पेट्रोग्राड में, अभी तक केवल एक सरकारी इमारत नहीं ली जा सकी थी! यह थी नौसैनिक विभाग की इमारत। इसकी रक्षा जनरल खोबानाफ़ कर रहे थे। क्रान्तिकारी सैनिकों ने बड़ी २ तोपें मैदान में रख कर इस इमारत को भी घेर लिया! दोनों

तरफ से एक दिन और एक रात्रि भर गोलियां दगतीं रहीं। अन्त में, १३ ता० मंगलवार को प्रातःकाल के समय नौसैनिक मंत्री जनरल-एडमिरल ग्रिगोरोविच के पास यह पत्र भेजा गया कि, यदि नौसैनिक विभाग (Admirality) की इमारत समर्पित न कर दी जायगी, तो, आध घण्टे के भीतर समस्त इमारत बड़ी तोपों द्वारा नष्ट कर दी जायगी। नौसैनिक मंत्री ने यह सोचकर कि, बड़ी तोपों द्वारा सचमुच इमारत टूट जायगी और साथ ही उसमें रखे हुए पुराने तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण रिकार्ड नष्ट हो जांयगे, जनरल खोवानाफ से कह कर इमारत खाली करादी और नौ-सेना ने भी आत्म-समर्पण कर दिया। इस प्रकार समस्त पेट्रोग्राड 'ड्यूमा' के अधिकार में आ गया।

ड्यूमा की ओर से निम्न-लिखित विज्ञप्ति इमारत के द्वार पर लगा दी गई :—

"ड्यूमा की संरक्षा में।"

जब ड्यूमा इन सब बातों में फँसी हुई थी, एकाएक खाद्य-पदार्थों की कमी पड़ गई। भूख स्वाधीनता की प्राप्ति से भी नहीं बुझ सकती। तुरन्त खाद्य-पदार्थ एकत्र करने के लिए एक कमेटी बनाई गई। समस्त देश के भिन्न २ शहरों को तार देकर अन्न भेजने का प्रबन्ध किया गया और २४ घण्टे के भीतर इतना अनाज आ गया, जिससे पेट्रोग्राड की गुज़र चल सकती थी। प्रो० प्रोटोपोपाक के छिपाये हुए अन्न-भण्डारों का भी पता चल गया, और तुरन्त बाज़ारों में अन्न बिक्री के लिए भेजा जाने लगा।

तीन दिन से, अन्न कष्ट के कारण ही होटल भी बन्द हो

गये थे। इसलिए अमीर नागरिक भी भोजन के लिए फड़फड़ा रहे थे। उनके यहां तो सदा होटलों से ही खाना जाता था। ग़रीब दूकानदारों को जब बिक्री के लिए अन्न मिल गया, तब फिर उन्होंने अपनी दूकान का भाव इस लिए सस्ता रखा, क्योंकि, अब उन्हें पुलिस के गुण्डों की मुट्ठी गर्म नहीं करनी पड़ती थी!

इसके अतिरिक्त कुछ दूकानदार ऐसे उदार भी थे, जो ग़रीब लोगों को जलपान कराते और चाय पिलाते थे! एक दूकानदार ने अपनी दूकान पर यह लिख कर टांग दिया था:—

"प्यारे नागरिको, स्वाधीनता का यह शुभ दिवस देखने के लिए आपको बधाई! भीतर पधारिये, और यथेच्छानुसार खाइये-पीजिए।"

इस दूकान का दूकानदार लाल कपड़े की कमीज़ पहिने हुए था, वह बड़ी उमङ्ग से आने वालों का स्वागत करता था, खाना खिलाता और खूब चाय पिलाता था!

× × × × ×

१३ ता० को प्रधान मंत्री इंग्लिश क्लब से गिरफ्तार करके ड्यूमा भेजे गये, इसके बाद और भी कई मन्त्री पकड़े गये। इसके बाद पिटीरिम, करलाफ, गोरिमेकिन तथा उब्रोविन भी गिरफ्तार होगये' विश्वास-घाती सुखोमलीनाफ की सनसनी भरी गिरफ्तारी हुई। सैकड़ों आदमी इस विश्वास-घातक के प्राण ले लेने के लिए टूट पड़ने को तैयार थे! यह स्थिति देखकर मोशिये करेन्स्की ने बड़ी गम्भीरता से लोगों के सामने आकर कहा कि—"अब रूस में प्रत्येक मनुष्य का सच्चे न्यायानुसार विचार किया जायगा। मैं स्वयं सुखोमलीनाफ

के लिए उत्तरदाता बनता हूँ। अगर आप लोग उसे मार डालना ही चाहते हैं, तो, पहिले मुझे गोली से मार दीजिए।"

यह पहिला ही मौक़ा था, जब क्रान्ति के बाद, न्याय और शासन का ढँग अख़्त्यार किया गया! सुखोमलीनाफ़ की सरकारी पोशाक तथा चिह्न उतार लिये गये और वह जेल में भेज दिया गया।

पेट्रोग्राड में नित्य ही ऐसी घटनायें घटित होती थीं, जिनसे क्रान्ति का महत्व बढ़ रहा था। आज अमुक सेना ने आत्म-समर्पण किया तो, कल अमुक नौ-सेना ने ड्यूमा की सत्ता स्वीकार कर ली! १३ ता० की घटनाओं में से यह एक ख़ास घटना थी कि, ग्रैण्ड ड्यूक साइरेल की अध्यक्षता में प्रसिद्ध नौ-सैनिक गार्डों ने भी आत्म-समर्पण कर दिया! ग्रैण्ड ड्यूक ने स्वयं ड्यूमा के सामने हाजिर होकर अपनी सेना का समर्पण कर दिया। उन्होंने ड्यूमा के सभापति मो० रोडज़िन्को से कहा:—

"मुझे आज सादर आपकी सेवा में उपस्थित होने का अवसर मिला है, मैं अपने आपको आपकी इच्छा पर छोड़ता हूँ। मैं भी अपनी रूसी जाति के साथ उसके भविष्य की कुशलता का इच्छुक हूँ। आज प्रातःकाल मैंने अपने सैनिकों को एकत्रित कर के उन्हें बतला दिया है, कि, वर्तमान घटनायें कितने महत्व और इतनी गुरुता की हैं, और अब मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि, समस्त नौ-सेना ड्यूमा की सत्ता स्वीकार करती है।" करतल-ध्वनि के बीच में रोडज़िन्को ने कहा:—

"ग्रैण्ड ड्यूक की वक्तृता से मुझे बड़ा सन्तोष हुआ है,

मुझे विश्वास है कि, अन्य सेनाओं की भांति नौ-सैनिक गण भी हमें अपने शत्रुओं के विनाश में सारयुक्त सहायता देंगे!"

इस के बाद, समस्त नौ-सैनिक गार्ड सभापति को सलाम करते हुए ग्रैण्ड ड्यूक के साथ चले गये।

थोड़ी ही देर में सैनिक स्टाफ के कालेज ने भी आत्म-समर्पण कर दिया, इस कालेज में ३५० अफ़सर थे। 'कोसक' अफ़सर ने ड्यूमा की सत्ता स्वीकार कर ली, और इस प्रकार देश भर की सेनाओं के मुख्य २ दलों ने नई सरकार को मान लिया समझिये।

अब बाहरी लड़ाई-झगड़े समाप्त हो चुके थे, पर उनके अन्त होते ही ड्यूमा में एक नया झगड़ा उठ खड़ा हुआ। सरकारी की स्थापना में बहुत बड़ा मतभेद उठ खड़ा हुआ। कौंसिल आफ़ लेबर, जिसका जन्म क्रान्ति के पहिले ही दिन हुआ था, अब, विस्तृत-रूप धारण करती जा रही थी। सैनिक प्रतिनिधि भी इस में सम्मिलित हो गये, और इस प्रकार इसका नाम "कौंसिल आफ़ वर्कमेन्स एण्ड सोल्ज़र्स डेलिगेट्स" पड़ा। इसी संस्था ने क्रान्ति की सम्भावना को जन्म दिया था, अब इस कौंसिल के प्रतिनिधियों ने जो कि, साम्य-वादी (Socialist) और जनसत्तावादी (Radical) थे, साम्यवादक प्रजातन्त्र शासन की स्थापना की माँग शुरू की!

मो० रोडज़िन्को, प्रिंस लौफ़ तथा मो० मिल्यूकाफ के दल के लोग प्रातिनिधिक शासन की स्थापना चाहते थे। पर साम्यवादी मोशिये चेज़ तथा मोशिये करेन्स्की ने इसके विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ किया। मज़दूरदल तथा सैनिकदल

की शक्ति नित्य-प्रति बढ़ती जा रही थी। क्योंकि, नित्य नई फौजें पेट्रोग्राड में आ रही थीं। अब साम्यवादी दल और ड्यूमा की कार्य्य-कारिणी कमेटी के बीच लड़ाई आरम्भ हो गई! दोनों दलों ने अपनी २ विज्ञप्तियाँ निकालनी शुरू कीं। ड्यूमा की विज्ञप्तियाँ गम्भीर तथा शान्त होती थीं, पर मज़दूरों एवं सैनिकों की कौंसिल की सूचनायें अत्यन्त भावुक एवं उकसानेवाली होती थीं। 'कौंसिल' की एक सूचना नीचे दी जाती है:—

' सैनिकों के नाम.........।"

" सैनिको! रूस की जनता तुम्हें इस स्वाधीनता की जन्मदात्री क्रान्ति के लिए बधाई देती है!

' उन लोगों के लिए हार्दिक स्मृति, जो इस अवसर पर काम आये हैं।

"सैनिको! तुम में से अभी कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो क्रान्ति का साथ देने से हिचकिचाते हैं।

"सैनिको! उस असह्य जीवन का स्मरण करो, जब तुम गांवों में, फैक्टरियों में एवं कल-कारखानों में, सरकार द्वारा ठूंसे जाते थे। सब के साथ तुम भी होजाओ, रूसी जनता, तुम्हें तथा तुम्हारे घर वालों को स्वाधीन जीवन का सम्पूर्ण सुख प्रदान करेगी!

"सैनिको! यदि तुम कैम्पों से निकाल दिये गये हो, तो, ड्यूमा को चले जाओ। वहाँ तुम्हें तुम्हारे सुख दुःख के बंटाने वाले साथी मिलेंगे।

" सैनिको! तितर-बितर ढंग से गोलियाँ मत चलाओ।

बची हुई पुलिस को या तो पकड़ लो, या फिर सामने आने पर सीधा निशाना मारो !

सैनिको ! सब जगह शान्ति-स्थापन करो। अपने दलों को सुसंगठित कर लो, और उन सब कामों को अपने हस्तगत करलो, जिन से शत्रु की हार हो !

"सैनिको ! ऐसा न होने दो कि, लुच्चे बदमाश दूकानें लूट सकें या सर्वसाधारण के घरों पर छापा मारें। ऐसा होना बुरी बात है।

"हरेक प्रकार के समाचारों के लिए ड्यूमा से पूँछ-ताछ करो। वहाँ सैनिक कमीशन प्रत्येक समय तुम्हें सूचना देगा।

"स्वाधीनता के लिए जीने और मरने के लिए दृढ़-निश्चय बनो।

"शत्रु की जीत की अपेक्षा मर जाना बहुत अच्छा है। अगर तुम मरते हो, तो याद रखो, रूस तुम्हारी सेवाओं और तुम्हारे आदर को कभी न भूलेगा। स्वाधीनता चिरायु हो !"

पर ज्यों २ सैनिकों और मज़दूरों की इस कौंसिल की शक्ति बढ़ती गई, त्यों २ इसकी घोषणायें उद्दण्ड तथा अराजक होती गईं। साम्यवादक प्रजातंत्र चाहने वाले दल का ही ऊंचा हाथ था, उसने सेना तक में लोकसत्ता के भाव जाग्रत करने का प्रयत्न किया। नीचे की एक घोषणा से इसका पता चलेगा:—

"(१) ड्यूमा की कमेटी की समस्त आज्ञाओं का पालन होना चाहिए, सिवा उन आज्ञाओं के, जो हमारी 'कौंसिल' के नियमों का खण्डन करती हों या उन के विरुद्ध हों।

"(२) निजू जीवन-चर्या के समय सैनिकों के लिए यह बिल्कुल लागू नहीं है कि, वे अफसरों को सलाम करें! ऐसा नियम उठ गया है।

"(३) इसी प्रकार अफसरों को आदर-रूपक पदवियों सहित सम्बोधित करने का नियम भी उठा दिया गया है। अब अफसरों को "गोस्पोडिन जनरल" (मि० जनरल) कह कर सम्बोधित किया कीजिए।

"(४) सैनिकों को "तू" कह कर पुकारने तथा उनके साथ निचाई का व्यवहार कर मानने की प्रथा भी उठा दी गई है। यदि अफसरों से कोई मत-भेद हो जाय, तो केवल सैनिकों को अपनी कम्पनी की कमेटी के पास शिकायत भेजने का अधिकार रहेगा।"

इस प्रकार 'कौंसिल' तथा ड्यूमा के बीच में मत-भेद शुरू हो गया। पर, सैनिक लोग, जो, इतने दिनों से भाँति २ के बन्धनों से जकड़े हुए थे, नई स्वाधीनता के प्रथम प्रसाद की तरफ वेतरह झपटे! उन्होंने अपने अफ़सरों की इज़्ज़त करना बिल्कुल छोड़ दिया, और सलाम करना भी छोड़ दिया! इस प्रकार सैनिक व्यवस्था का संगठन टूट चला।

ड्यूमा की कार्य-कारिणी कमेटी ने अन्त में निम्न-लिखित घोषणा प्रकाशित की:—

"नागरिको!

स्थानिक अधिकारियों और सैनिकों की सहायता से कार्य-कारिणी कमेटी ने पुरानी सत्ता को जीत लिया है, अतः यह आवश्यक है कि, अब शासन का स्थायी तथा उपयोगी संगठन किया जाय। इसी उद्देश को लेकर कमेटी ने राष्ट्रीय

(१५) मो॰ कोनवलाफ, प्रजातंत्र का व्यापारिक मंत्री।

मंत्रि-मण्डल के चुनाव का काम अपने हाथ में ले लिया है।

नवीन मंत्रि-मण्डल निम्न-लिखित सिद्धान्तों को साथ लेकर काम करेगाः—

"(१) समस्त राजनैतिक, सैनिक तथा कृषिक अपराधों की माफ़ी कर दी जायगी।

"(२) व्याख्यान देने, प्रेस स्थापित करने, समाचार-पत्रों को स्वतन्त्रता प्रदान करने, सभा संस्थायें स्थापित करने, मजदूर-दल के संगठन कराने, और इन्हीं अधिकारों को सैनिकों और सरकारी अफसरों के लिए भी (उस स्थिति तक, जहाँ तक इन से कोई शासन-सम्बन्धी क्षति न पहुँचे) दिये जाने की स्वाधीनता प्रदान की जायगी।

"(३) सब प्रकार के सामाजिक, धार्मिक तथा राष्ट्रीय प्रतिबन्ध दूर कर दिये जाँयगे।

"(४) सार्वजनिक मत के अनुसार एक प्रतिनिधि-संस्था स्थापित की जायगी, जो शासन और संगठन का स्थापन करेगी।

"(५) पुलिस के स्थान पर राष्ट्रीय सैनिकों की नियुक्ति की जायगी और उसका सम्बन्ध स्वयं-शासक संस्थाओं (म्युनिसिपलिटियों) के साथ रहेगा, उस के अफसर निर्वाचन द्वारा नियुक्ति हुआ करेंगे।

"(६) प्रातिनिधिक ढंग से जातीय प्रतिनिधियों तथा संस्था-गत प्रतिनिधियों का निर्वाचन जारी किया जायगा।

"(७) जिन सैनिकों ने क्रान्ति में भाग लिया है, उनके हथियार नहीं छीने जाँयगे, लेकिन उन्हें चाहिए कि, वे, पेट्रोग्राड में ही बने रहेंगे।

"(८) यद्यपि, आज्ञा-पालन के समय सैनिकों को पूरे नियमों का पालन करना पड़ेगा, पर निजू तथा सामाजिक जीवन का पूरा उपभोग कर सकने की उन्हें स्वाधीनता प्राप्त रहेगी।…"

इन सब घटनाओं के होने का समाचार बाहर वालों को अभी तक नहीं मिल पाया था, क्योंकि, पुरानी सरकार ने तार तथा डाक का इन्तज़ाम एक दम बन्द कर दिया था। इस लिए कई दिनों तक पेट्रोग्राड अपनी घटनाओं के सहित बाहर वालों के लिए गूँगा बना रहा।

इसके बाद, मास्को से यह समाचार पेट्रोग्राड पहुंचा कि, मास्को ने भी अपनी स्वाधीनता घोषित करके ड्यूमा की सत्ता स्वीकार कर ली। मास्को की सेनायें भी इसी लिए पेट्रोग्राड चली आईं, लेकिन, पुलिस का जाल वहाँ भी क्रान्तिकारियों का विरोध कर रहा था। पर सैनिकों ने तुरन्त उनकी सत्ता तोड़ दी।

इसके बाद, रणक्षेत्रों से शुभ समाचार आने शुरू हुए। जनरल रस्की तथा ब्रुसीलाफ ने ड्यूमा की सत्ता स्वीकार करके अपनी सेनाओं को भी नई सरकार की हुकूमत में रख दिया। इस प्रकार स्थिति के इस रूप ने क्रान्ति को सफल बनाया, और प्रकट कर दिया कि, बहुत थोड़ी क्षति के साथ भी क्रान्ति अपना काम कर सकती है, यदि जनता सच्चाई और साहस के साथ आगे बढ़ने के लिए तैयार हो।

लेकिन, जहाँ शान्ति-पूर्वक नये शासन की स्थापना का यह रूप नजर आ रहा था, वहाँ आशंका और अशान्ति के

बादल भी घिरने लगे। ड्यूमा और मजदूरों तथा सैनिकों की कौंसिल का मत-भेद विकट रूप धारण करने लगा। 'कौंसिल' "क्रान्ति-जन्य प्रजातन्त्र" की मांग कर रही थी, इसी लिए, उसने पेट्रोग्राड भर में अराजक साहित्य का प्रचार बड़े ज़ोर शोर से करना आरम्भ कर दिया।

ड्यूमा अब भी परिमित राज-सत्ता की स्थापना करना चाहती थी। कौंसिल आफ़ इम्पायर ने जो तार ज़ार को भेजा था, उस में इसी लक्ष्य के सुधारों का ज़िक्र था:—

"' पुरानी सरकार तथा संगठन के बने रहने से शासन, कानून तथा शान्ति की व्यवस्था नष्ट हो जायगी। ऐसा होने से रणक्षेत्रों में हार, राजवंश के नाश तथा रूस को दुर्भाग्य का भी सामना पड़ेगा।

हम लोग समझते हैं कि, पुरानी व्यवस्था एकदम तोड़ देने में ही अच्छाई है। होना यह चाहिए कि, तुरन्त एक प्रातिनिधिक संस्था का सङ्गठन किया जाय और किसी ऐसे व्यक्ति के हाथ में नये मन्त्रिमण्डल का निर्माण सौंपा जाय, जिस पर सर्वसाधारण का विश्वास हो।''' "

लेकिन, दिन पर दिन, स्थिति का रूप तेज़ी के साथ बदलता गया। क्रान्ति ने एक नई क्रान्ति को जन्म दिया। 'नरमदल' तथा 'गरम दल' का मत-भेद स्पष्ट हो चला। नई स्वाधीनता की व्यवस्था के लिए भी झगड़ा उठ खड़ा हुआ।

इस अवसर घुले-मिले पर साम्यवादी होते हुए भी मोशिये करेन्स्की ने पारस्परिक मत-भेद को स्थगित कर देने का शुभ

प्रयत्न किया और उन्हें इस काम में पूरी सफलता मिली। थोड़े दिनों के लिए ड्यूमा तथा मज़दूर-दल और सैनिक दल की कौंसिल का झगड़ा रुक गया और इसी के फल स्वरूप में नये मन्त्रिमण्डल की स्थापना की विज्ञप्ति प्रकाशित की जा सकी। सारा झगड़ा ज़ार की निरंकुशता और सम्पत्ति वादियों के के ऊपर था, इसी लिए प्रजातंत्र की मांग की जा रही थी।

लेकिन, क्रान्तिकारी प्रजातंत्र की स्थापना चाहने वाले लोग ज़ार के प्राणों के भी भूखे थे।

ज़ार का सिंहासन-त्याग।

जब ड्यूमा परिमित राज-सत्ता और प्रजातंत्र की स्थापना के वाद-विवाद में पड़ी हुई थी, रूसी इतिहास अपना स्वयं निर्म्माण कर रहा था। इतिहास का यह अध्याय इतने महत्व का होगा, इसकी उस समय किसी को आशंका नही थी। इतिहास की यह घटना ज़ार के अन्तिम दिनों की दिन-चर्या थी। जिस अत्याचार का शासन ज़ार ने किया था, उसका यह प्रतिफल मात्र था।

पाठक जानते हैं कि, जिस समय पेट्रोग्राड अशान्ति का घर बन रहा था, उस समय ज़ार रणक्षेत्रों के निरीक्षण के लिए षड़यंत्र-कारियों द्वारा भेज दिये गये थे। जर्मन षडयंत्र ज़ार की अनुपस्थिति में किस प्रकार ठीक उतर गया, इसका वर्णन पाठक पिछली घटनाओं को पढ़कर जान गये होंगे। षड़यन्त्र-कारियों का यही उद्देश था कि, जनता को उकसाकर भीतरी अशान्ति उत्पन्न कर दी जाय, और इस प्रकार भीतरी अशान्ति के कारण रूस लड़ाई बन्द कर दे। ज़ार में इतनी बुद्धि नहीं थी, कि, वह इस बात को समझ सकता।

ज़ार निकोलस ने ड्यूमा के सभापति मो० रोडजिन्को के पहिले तार की उपेक्षा करके अपने राज-मुकट के छीने जाने का समय ला दिया। यदि पहिली सूचना पाकर ज़ार ने बुद्धिमत्ता से काम लिया होता, अपने सिंहासन के पाये दृढ़ता

से साधे होते और केवल पेट्रोग्राड में ही नहीं, वरन् एक बार जनता के हृदय में प्रवेश करने की वे फिर कोशिश करते, तो निश्चय ही 'ज़ार' का प्रभुत्व रूस से इतनी जल्दी न उठ जाता। लेकिन, ज़ार ने अपने स्वभाव के चिड़चिड़ेपन, जल्दबाज़ी और घमण्ड के कारण अपना नाश स्वयं निमंत्रित किया।

क्रान्ति के दिनों में इतिहास ज़ार के नाम की माला बार बार फेर रहा था। ज़ार के भाग्य का निपटारा निकट आ रहा था, और उसे अवसर देकर भी कुछ करने नहीं दे रहा था। अगर १९०५ में, जब ड्यूमा की पहिली बैठक हुई थी, यदि तभी, ज़ार सम्भल गये होते, और उन्होंने वचन देकर भी अँगूठा न दिखा दिया होता, तो, भी, एक बार ज़ार के लिए ऐसा मौक़ा था कि, वह जनता का नेतृत्व अपने ही अधिकार में रख सकते। पर, ज़ार को इन सब बातों के समझने-बूझने की परवाह न थी और न उन्होंने जनता के हृदय में स्थान पाने की कभी कोशिश ही की। वह क्रूर आज्ञाओं को ही शासन की कुंजी समझे बैठे थे, और उनके षड़यंत्र-कारी मंत्री नये नये उपायों से ज़ार को अपने रास्ते पर ही बने रहने के लिए उत्तेजित करते रहते थे। जैसे उन्होंने जनता को झूठे वचन दिये थे, उसी प्रकार जनता ने भी उनकी सत्ता को झूठा प्रमाणित कर दिया। उनके चारों तरफ खोजने पर भी एक सहायक न बचा।

दूसरे तार के उत्तर में ज़ार ने जो कुछ रोडजिन्को को लिखा था, वह ज़ार की भयंकर और घातक मूर्खता का अन्तिम नमूना था। उन्होंने पेट्रोग्राड को कुचल देने के लिए सेना भेजने की बात लिखी थी, और अधिक ख़तरे के समय ख़ुद आने की बात लिखी थी।

अशान्ति का समाचार पाकर ज़ार "जारस्को सेलो" (पेट्रोग्राड के बाहर का शाही महल) के लिए रण-क्षेत्रों से चल दिये, और 'वलो गार्ड' स्टेशन तक पहुच भी गये थे, पर एकाएक उनकी गाड़ी रुक गई। स्टेशन के आगे की रेलवे पटरियाँ किसी क्रान्तिकारी ने उखाड़ कर फेंक दी थीं। यह पहिली बाधा थी, जो ज़ार के मार्ग में जनता की ओर से डाली गई। अन्त में, सशंकित अवस्था में ज़ार 'पस्काफ'-जनरल रस्की के हेड क्वार्टर्स-को लौट आये। वहां पहुंच कर उन्होंने तुरन्त जनरल को हाजिर होने की आज्ञा दी। जनरल रस्की ने आकर ज़ार को यह सम्वाद सुनाया कि, क्रान्तिकारियों ने पेट्रोग्राड में अशान्ति मचा दी है। इस समाचार को पाकर, ज़ार चुप रह गये, और शाही ट्रेन पर सवार हो गये।

दूसरे दिन फिर ज़ार ने जनरल को अपने पास बुलाया। उन्होंने जनरल से बातचीत करते हुए कहा-"मैंने यह सोच लिया है कि, अब पेट्रोग्राड में किसी प्रकार की अशान्ति के दमन करने का उपाय न करके जनता को उत्तरदायित्वपूर्ण मन्त्रि-मण्डल की स्थापना की आज्ञा दे दूं। तुम्हारी क्या राय है?" असल बात यह थी कि, इस बात-चीत के पहिले ही ज़ार ने नये मन्त्रि-मण्डल की स्थापना का अधिकार-पत्र लिख कर अपनी मुहर कर दी थी, और उक्त अधिकार-पत्र ड्यूमा के पास भेज देने का विचार भी कर लिया था। पर, जनरल रस्की ने गम्भीरता के साथ ज़ार के किये हुए प्रश्न के उत्तर में कहा कि—"अगर आप मेरी स्वतंत्र सम्मति पूछते हैं, तो, मैं स्पष्टतः कहूंगा कि, इस का समय भी हाथ से जा चुका है। मैं समझता हूँ कि इस विषय पर

ड्यूमा के सभापति रोडजिन्को से परामर्श कर लेना ही ज़रूरी है।"

इस बात को सुन कर ज़ार का हृदय क्षुब्ध हो उठा और वह अपने लेटने के कमरे में चले गये। जनरल रस्की ने तत्पश्चात् रोडजिन्को से दो घंटे तक टेलीफोन द्वारा परामर्श किया। रोडकिन्को ने घटनाओं का ज़िक्र करते हुए जनरल से कह दिया कि, पेट्रोग्राड अब पुलिस द्वारा रक्षित परतंत्र नगर नहीं रहा, अब वह एक स्वतंत्र म्यूनीसिपलिटी के रूप में है। मो० रोडजिन्को ने यह भी कहा कि, "अब ज़ार को सिंहासन त्याग देना चाहिए, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है, जिसके द्वारा ज़ार की प्राण-रक्षा हो सके।" जब जनरल यह समाचार लेकर ज़ार के पास गये, तब, ज़ार अपने बिस्तरे पर बड़ी बेचैनी से करवटें बदल रहे थे।

जनरल रस्की ने सारी बातचीत का हाल ज़ार से कह सुनाया। एक हृदय को मसोस देने वाली आकृति बनाते हुए ज़ार ने छिपी हुई धीमी २ आशा के सहारे पूँछा—"क्या मेरे अन्य जनरल लोग इस बात को जान गये हैं?"

जनरल रस्की ने कहा-"जी हाँ, वे सब जानते हैं, और उनकी भी यही राय है कि, सिंहासन-त्याग ही एक मात्र उपाय है।"

"तो फिर रोडज़िन्को को बुला भेजो।" कह कर ज़ार ने अपने चारों तरफ शुष्क नेत्रों से देखा। इसके बाद वे अपने सिंहासन-त्याग का मसविदा सोचने लगे।

(१६) प्रिन्स क्रोपट्किन, स्वाधीन रूस के पितामह ।

मो० रोडजिन्को को टेलीफोन दिया गया, पर इस समय वह ड्यूमा को नहीं छोड सकते थे, अतः मोशिये गचकाफ तथा ड्यूमा कार्य-कारिणी कमेटी के सदस्य मोशिये शल्गिन ज़ार के पास भेजे गये। उनकी ट्रेन तनिक देर से ज़ार के पास पहुंची, वह हेड कार्टर्स के पास अपनी ट्रेन में लेटे हुए थे। जो ज़ार २० करोड़ आदमियों का स्वामी था, आज वही दो सिविलियनों के आने की राह उत्सुकता के साथ देख रहा था।

यद्यपि जनरल रस्की ने पहरेदारों को यह आज्ञा दे दी थी कि, ड्यूमा के प्रतिनिधि पहिले मेरे पास लाये जॉय, पर ग़ल्ती से, ऐसा न हो पाया। दोनों प्रतिनिधि सीधे ज़ार के पास पहुँचाये गये। उन प्रतिनिधियों ने देखा कि, ज़ार चिन्ता में मग्न, उदास तथा बड़े चौकन्ने से हो रहे थे। इस समय ज़ार के निकट काउन्ट फ्रेडरिक (मुसाहिब) के सिवा और कोई भी न था। ड्यूमा के प्रतिनिधियों की तरफ देखते हुए ज़ार ने पूँछा—"मुझे सच्ची २ बातें बतलाओ।"

गचकाफ ने कहा—"पेट्रोग्राड की समस्त सेनायें हमारी तरफ हो गई हैं। यहाँ से सेनाओं का भेजना व्यर्थ है। वे भी सब हमारी तरफ हो जॉयगी।"

ज़ार ने कुछ रुक कर कहा-"मैं इस बात को जानता हूं। अच्छा, अब तुम मुझ से क्या चाहते हो?"

गचकाफ ने निश्चिंत भाव से कहा—"आप को निश्चय ही सिंहासन त्यागना पड़ेगा, आप युवराज के नाम गद्दी लिख दीजिए, बालिग होने तक ग्रैन्ड ड्यूक मिकायल अलेक्जेन्ड-

रोविच को रिजेन्ट बना दीजिए। ऐसी सम्मति नई सरकार की है, जिसे हम प्रिन्स लौफ के आधिपत्य में संगठित करने जा रहे हैं?"

ज़ार ने अपनी उँगलियों को पटक कर कहा—"मैं अपने पुत्र को अलग नहीं किया चाहता। मैं सिंहासन को अपने भाई के लिए लिखे देता हूं।" इतना कह कर ज़ार ने अपने चारों तरफ एक निराश दृष्टि से ताका और फिर कहा—"क्या आपके पास सादा काग़ज है?"

एक सादा काग़ज तथा एक फाउन्टेन पेन ज़ार के सामने रख दिया गया और उस पर निम्न-लिखित अधिकार-पत्र लिख कर ज़ार ने—उस ज़ार ने जो संसार भर के सम्राटों में से सब से अधिक शासन-सम्बन्धी अधिकार रखता था—अपने हस्ताक्षर कर दिये!

रूसी जनता के अधिकार-पत्र में ज़ार ने यह लिखा था कि:—"ईश्वर की महती इच्छा से, मैं, रूस का सम्राट पोलैंड का ज़ार, फिनलैंड का ड्यूक, अपनी प्रजा को सूचित करता हूं कि:—

"ऐसे युद्ध के समय में, जब कि हमारा शत्रु तीन वर्ष से, रूस को पराजित कर के, देश को पराधीन बनाने का भीषण प्रयास कर रहा है, एक और दुःखदायी परीक्षा सामने आती है।

"भीतरी अशान्ति ने इस भीषण युद्ध के क्रम पर एक घातक प्रभाव डाला है।

"रूस का भाग्य, उस की वीर सेना की मान-रक्षा, जनता की भलाई तथा प्यारे देश का भविष्य इस बात की

आवश्यकता समझता है कि, युद्ध इस प्रकार से लड़ा जाय, जिस से अन्त में विजय प्राप्त हो सके ।

"अत्याचारी शत्रु अपने अन्तिम प्रयत्नों में लगा हुआ है। पर वह समय निकट है, जब, हमारी वीर सेनायें मित्र-राष्ट्रों की सेनाओं के साथ अन्त में शत्रु को परास्त कर सकेंगी।

"इन फैसले के दिनों में, हम सोच रहे हैं कि, इस बात की भी आवश्यकता है कि, एकता का दृढ़ संगठन तथा समस्त शक्तियों का एकत्रीकरण विजयी दिन शीघ्र ला सकेगा। इस लिए ड्यूमा से परामर्श करने के पश्चात् यह ज़रूरी समझता गया है कि, हम रूस का सिंहासन त्याग दें और अपने अधिकारों को भी उस के हाथमें सौंप दें।

"अपने पुत्र को अपने से अलग न करने की इच्छा के कारण, हम अपने भाई ग्रैन्डड्यूक मिकायल एलेक्जेन्डरोविच को सिंहासन का हक़दार बनाते हैं, यह इच्छा रखते हुए कि, यह बात रूस के राज-सिंहासन के भविष्य के लिए भली होगी।

"हम अपने भाई को राज-सिंहासन इस लिए सौंपते हैं कि, वह राष्ट्रीय प्रतिनिधियों की व्यवस्थापक संस्थाओं से पूरी एकता के साथ मिलकर, देश का शासन करें और देश की भलाई के लिए व्यवस्थापक प्रतिनिधि-सभा के सामने इस की शपथ लें।

"हम मातृभूमि के पुत्रों को आमंत्रित करते हुए, यह कहना चाहते हैं कि वे ज़ार की आज्ञा का पालन करके अपने पवित्र तथा देश-हितकर कर्तव्य को पूरा करते रहें, और

साथ ही कठिन परीक्षाओं के अवसर पर, अपने प्रतिनिधियों के साथ वे ज़ार की सदा सहायता करते रहें और देश के शासन को सुख-समृद्धि की ओर बढ़ाते जाँय।

...."परमात्मा रूस की सहायता करे।"....

इतना लिख कर रूस का सम्राट अपनी कुर्सी से उठ खड़ा हुआ, अब वह रूस का सम्राट नहीं था, वरन एक साधारण नागरिक 'मोशिये निकोलस रोमनाफ़' मात्र था!

स्वाधीनता का प्रकाश !

पेट्रोग्राड अपनी ही पहेली में मग्न था, और ज़ार के सिंहासन-त्याग का समाचार २४ घन्टे तक उस पर विदित नहीं हो पाया ! वाद-विवाद अटक रहा था गवर्नमेंट की रचना पर। कोई परमित राजसत्ता के पक्ष में था, और कोई पूर्ण प्रजातंत्र के लिए जोशीले व्याख्यान देता फिरता था। यह किसी को पता न था कि, इस नई स्थिति का कारण किस अवस्था में है। ज़ार अपनी अन्तिम किरणों के साथ अस्त हो चुका था !

यद्यपि रूस के क्रूर शासन का अन्त हुए एक सप्ताह व्यतीत हो चुका था, पर नई गवर्नमेंट की रचना पर नित्य इसी प्रकार का वाद-विवाद होता रहता था, मानों आज ही क्रान्ति को सफलता मिली है, और आज का ही दिन सब कुछ निर्णय कर डालने का है ! 'गरमों' और 'नरमों' की नोक-झोंकें इतनी कटु और विवाद-पूर्ण थीं कि, एक विदेशी श्रोता उन्हें देख-सुन कर अत्यन्त निराश हो सकता था, पर रूसी जनता नये उत्साह और नये जोश के साथ नित्य इसी विवाद में पड़ी रही थी।

* * * * * *

किसी तरह बृहस्पतिवार का प्रातःकाल आया। इस दिन पेट्रोग्राड शान्त और स्तम्भित मालूम पड़ा। कुछ दूकानें भी खुलीं और गड़बड़ी का अन्त भी दृष्टिगोचर हुआ।

स्त्री-पुरुष सभी लाल झण्डियाँ खोंसे हुए नज़र आ रहे थे, और धीरे २ ट्राम गाड़ियाँ भी दौड़ने लगीं। उन की छत पर लाल झंडियां फहरा रही थीं। एक प्रकार से पेट्रोग्राड क्रान्ति का रूप छोड़ कर नये चोले में आ रहा था। समस्त जनता दो विभागों में बँटी हुई थी। एक दल तो ड्यूमा के पक्ष में था, और यह दल परिमित राजसत्ता के लिए ज़ोर लगा रहा था। इसका मत था कि, ग्रैण्ड ड्यूक मिकायल की रिजेन्सी (संरक्षकता) में परिमित राजसत्ता बनी रहे। पर दूसरे दल की सम्मति थी, और उसके लिए वह ज़ोर भी बहुत लगा रहा था कि, एकदम साम्यवादी प्रजातंत्र की स्थापना कर दी जाय। मज़दूरों और सैनिकों की कौंसिल इस आन्दोलन की केन्द्र बन रही था। मज़दूर-दल अराजक साहित्य से नगर भर को पाट रहा था, उधर ड्यूमा नित्य नये सरकुलर निकाल कर जनता को अपनी तरफ मिलाने के प्रयास में संलग्न थी। रक्त और प्राणों के असीम बलिदान के पश्चात् जो स्वाधीनता प्राप्त की गई थी, वह फुटबाल की तरह इधर से उधर ठुकराई जा रही थी और यह कलह इतनी बढ़ती जा रही थी कि, समझौते का प्रश्न भी असम्भव सा होता जा रहा था। हाँ, इतनी बात थी कि, क्रान्ति के नेतागण अब भी अपनी शक्तियों के प्रभाव से इस महा भयंकर तूफान से रूस की किश्ती को खेते चले जा रहे थे; प्रिंस लौफ तथा मोशिये गचकाफ ड्यूमा की दीवारें साधे हुए थे और उनके सहयोगी-गण नये मंत्रि-मण्डल की रचना में संलग्न थे।

अन्त में, बृहस्पतिवार की दोपहर को मो० मिल्यूकाफ़ ने नये मंत्रिमण्डल की सूची प्रकट कर दी। अपनी ऐतिहासिक

वक्तृता में, जैसी कि वह थी, उन्होंने निम्न-लिखित नामों का उल्लेख किया:—

(१)	प्रिन्स जार्ज लौफ,	प्रधान मंत्री एवं अन्तर्देशीय मंत्री,
(२)	मो० मिल्यूकाफ,	परराष्ट्र-सचिव,
(३)	मो० गुन्चकाफ,	युद्ध मंत्री एवं नौ-सैनिक मंत्री,
(४)	मो० करेन्स्की,	न्याय-मंत्री,
(५)	मिकायल टरचेन्को,	अर्थ-मंत्री,
(६)	मो० शिंगराफ,	कृषि-मंत्री,
(७)	मो० कोनोवलाफ,	औद्योगिक मंत्री,
(८)	मो० निकरासाफ,	मार्ग एवं डाक-विभागीय मंत्री,
(९)	मो० मौनीलाफ,	शिक्षा-सचिव,
(१०)	मो० गोडनेफ	शासन-निरीक्षक,
(११)	मो० व्लाडमीर लौफ	धार्मिक मंत्री,
(१२)	मो० थियोडोर रोडी चेफ	फिनलैंडीय मंत्री।

इस नामावली के प्रकट करने के पश्चात् मिल्यूकाफ ने उच्च स्वर में कहा कि:—

"मैं इस प्रकार के प्रश्नों को सुन रहा हूं कि, 'नये मन्त्रि-मण्डल को किस ने चुना?' किसी ने भी हमें नहीं चुना है। क्यों कि, यदि हम लोग चुनाव के लिए रुके रहते, तो, शत्रु को हम परास्त न कर सकते, अथवा, इस बीच में शत्रु अपने बल को बढ़ा कर हमें चूर कर देता। हमें रूसी राज्य-क्रान्ति ने चुना है। यह उस समय हुआ, जब कि, देरी से नाश की सम्भावना थी। इस नाजुक समय पर आप के विश्वास-पात्र राजनैतिक कार्य-कर्त्ता, जिन पर जनता का पूर्ण विश्वास रहा है, और जिन के प्रयत्नों से ही पुराने

शासन का नाश हो सका है, इस नये मन्त्रि-मण्डल में भी रखे गये हैं, पर साथ ही हम लोग प्रजा-प्रतिनिधियों के सामने शासन के पूर्ण उत्तर-दाता हैं।

हम लोग एक क्षण के लिए भी मन्त्रिमण्डल में न रहेंगे, यदि प्रजा-प्रतिनिधि-गण (ड्यूमा के सदस्य) हम से कह देंगे कि, 'हम तुम्हारे स्थान पर अन्य अधिक विश्वसनीय पुरुषों को देखना चाहते हैं।' सज्जनो, मुझ पर विश्वास कीजिए, नया मन्त्रिमण्डल सत्ता और शक्ति-उपार्जन के लिए प्रयत्न न करेगा, सत्ताधारी बनना, न तो खुशी की बात है, और न किसी प्रकार के पुरस्कार का लक्षण। असली खुशी त्याग और आदर में है। और जब जनता हम से कह देगी कि, हमारी सेवा की उस को आवश्यकता नहीं, हम लोग तुरन्त, कृतज्ञता-पूर्वक अपने स्थान को छोड़ देंगे। लेकिन, इस समय पर हम अपनी शक्तियों को किसी भी प्रकार मिटने न देंगे, जब कि जनता की विजय का सारा दारमदार हमारी ही सेवाओं पर निर्भर हो रहा है। क्यों कि, यदि हम अपना हाथ ढीला करते हैं, तो शक्तियाँ शत्रु के हाथों में पहुंच जाँयगी।"

इस के साथ ही मिल्यूकाफ ने यह भी कहा कि, "जिस व्यक्ति के कारण रूस नाश के निकट तक पहुंचा है, उसे या तो स्वेच्छा से अथवा बल-पूर्वक, सिंहासन त्यागना ही पड़ेगा। शासनाधिकार रिजेण्ट (संरक्षक) के हाथों में चले जाँयगे। ग्रैण्ड ड्यूक मिकायल अलेक्जेण्डोविच रिजेन्ट बनाये जाँयगे और युवराज 'अलिक्स' सिंहासन के अधिकारी माने जाँयगे।"

(१७) मो० लेनिन, साइबेरिया की क़ैद से भागे हुए।

पाठक, जानते हैं कि, जिस समय यह वक्तृता ड्यूमा में हो रही थी, उसके १२ घंटे पूर्व ही ज़ार ने सिंहासन त्याग दिया था। २४ घंटे तक इसका समाचार पेट्रोग्राड नहीं पहुंच सका। पर, रिजेन्ट की नियुक्ति और राजसत्ता के पुनः स्थापन की बात से जनता में फिर खलबली मच गई। मज़दूर-दल तथा सैनिक-दल की प्रजातन्त्र-वादी 'कौंसिल' बहुत काफ़ी आग सुलगा चुकी थी, और इसी लिए, लोग एक दम प्रजातंत्र की मांग कर रहे थे।

भले ही, कुछ सप्ताह पूर्व रिजेन्ट की नियुक्ति रूसी जनता को सुख पहुँचा सकती, पर अब वही बात उस के लिए अन्याय और अत्याचार-स्वरूप थी। उस की दृष्टि में, 'रिजेन्सी' की स्थापना नव-जात स्वाधीनता के गले में फांसी लगाना था।

'कौंसिल' ने फिर ऊधम मचाना शुरू किया। सैनिकों और मज़दूरों के नेताओं ने उच्च स्वर में ड्यूमा के सामने कहा—"हमें प्रजातंत्र की आवश्यकता है, और हमें प्रजातन्त्र शासन दिया जाय!"

स्थिति भयानक थी, और विशेष कर क्रान्ति के निकट-वर्ती समय में, क्षण में घटनायें घटित हो सकती थीं। पर मो० करेन्स्की ने फिर स्थिति को साधा। ड्यूमा में उच्च स्वर से जादू-भरी वक्तृता में करेन्स्की ने कहा:—

"सहयोगियो, मैं न्याय-विभाग का मन्त्री बनाया गया हूँ, पर इस सरकार में सम्मिलित होते हुए भी, मैं प्रजातंत्र-वादी हूँ। अपने काम में, मैं प्रजा-मत पर ही चलूँगा। क्या मैं आप लोगों पर उसी प्रकार विश्वास करूं, जिस प्रकार कि मैं स्वयं अपने पर विश्वास करता हूँ?"

ड्यूमा से आवाज उठी—" हम तुम पर विश्वास करते हैं ! "

करेन्स्की ने फिर कहा—" मैं विना जनता की सम्मति के एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता । और कभी, यदि आप मुझ पर तनिक भी सन्देह करें, तो मुझे मार डालें। मैं अस्थायी सरकार (नये मन्त्रि-मण्डल) से स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि, मैं लोक-सत्ता का प्रतिनिधि हूं। और सरकार को उन विचारों को ध्यान में लाना पड़ेगा, जिन्हें, मैं जनता के प्रतिनिधि-स्वरूप उपस्थित करूँगा, क्योंकि, पुराने शासन का नाश जनता के प्रयत्नों से ही हुआ है। सहयोगियो, समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि, अब आप लोग सङ्गठित रूप से कार्य कीजिए । हम लोग आप के प्रतिनिधि हैं, हम लोग आप के लिए मरने के निमित्त तैयार हैं। आप हम लोगों का समर्थन कीजिए।"

इस प्रकार आया हुआ सङ्कट एक बार फिर टल गया। करेन्स्की की बदौलत प्रजातंत्र-वादियों ने भी नये मन्त्रिमण्डल के संगठन का समर्थन युद्ध के अन्त तक के लिए कर दिया।

* * * * * *

पर, अब स्थिति इतनी ऊँची उठती जा रही थी, कि, पुरानी लकीर पीटने वाले लोगों का भी यही ख़याल हो चला था कि शासन के ऊपर से 'शाही-पन' का प्रभाव बिल्कुल दूर ही हो जाना चाहिए। इस लिए, ड्यूमा ने भी इस प्रभाव को आरम्भ में ही नष्ट कर देना उचित समझा। हुआ वही, जो मज़दूर और सैनिक दल की कौंसिल चाहती थी। एक कमेटी, जिस में प्रधान मंत्री प्रिन्स लौफ तथा न्याय-मंत्री करेन्स्की भी थे,

ग्रैण्ड-ड्यूक के पास भेजी गई। ग्रैण्ड-ड्यूक इस समय तक अपने को रूस का रिजेन्ट समझे बैठे थे।

करेन्स्की ने ड्यूक से कहा—"हम लोग जनता के मत को उपस्थित करने वाले व्यक्ति हैं।"

ड्यूक ने अज्ञान भाव से पूँछा—"जनता का क्या मत है?"

करेंस्की—"आप तब तक के लिए 'रिजेन्सी' के अधिकार त्याग दीजिए, और समस्त अधिकार अस्थायी सरकार के हाथ में सौंप दीजिए, जब तक कि, सम्पूर्ण लोक-मत के आधार पर "प्रतिनिधि-सभा" की स्थापना नहीं हो जाती। और, जब तक कि, उक्त प्रतिनिधि-सभा अपने इच्छानुसार नई सरकार का सगठन नहीं करती।"

ये बातें सुनते ही ड्यूक अवाक् रह गये। उन की आँखें पथरा सी गईं। राज-सत्ता की अन्तिम मृत्यु का यह समाचार उन के हृदय पर वज्राघात के समान मालूम हुआ। ज़ार की तरह उन्हों ने भी जनता की इच्छा के सामने सिर झुका दिया।

प्रिन्स लौफ ने नीचे लिखा हुआ अधिकार-पत्र लिखाया, जिसे ड्यूक ने अपनी क़लम से बड़े धैर्य के साथ लिखा:—

"अभूत-पूर्व युद्ध तथा भीतरी अशान्ति के समय में मेरे भाई ने मुझे रूस का अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण सिंहासन सौंपा था।

लेकिन, देश और राष्ट्र की हित-चिन्तना का उतना ही ध्यान रखते हुए, जितना कि, रूसी जनता मात्र को है, रूसी जनता की इच्छा के अनुसार, उस के प्रतिनिधियों द्वारा प्रकट किये गये लोक-मत की आज्ञा शिरोधार्य करता हुआ, मैं, अस्थायी

सरकार को स्वीकार करता हूँ, और यह भी स्वीकार करता हूँ कि, रूसी जनता प्रतिनिधि-सभा की स्थापना करे, तथा प्रतिनिधि-सभा आगामी स्थायी सरकार का संगठन करे।

ईश्वर के आशिर्वाद की प्रार्थना करता हुआ, मैं रूसी जनता से प्रार्थना करता हूँ, कि, वह तब तक अस्थायी सरकार की आज्ञाओं का पालन करे, जब तक सम्पूर्ण प्रातिनिधिक संस्था द्वारा स्थायी सरकार की शीघ्रही स्थापना न हो जाय।"

ड्यूक ने इस अधिकार-पत्र पर गम्भीरता के साथ हस्ताक्षर कर दिये, और कागज़ पर की स्याही के सूखते ही रूस की राज-सत्ता का भी अन्त हो गया।

इस प्रकार अन्तर्देशीय अशान्ति के कारण, राजसत्ता के स्वरूप का नाश करके मंत्रि-मण्डल ने शासन-विभाग की तरफ क़दम बढ़ाये। शासन शान्ति-स्थापना का एक मात्र कारण समझा गया है, और यदि शान्ति ही न रही तो, शासन किस काम का?

निम्न-लिखित घोषणा नई सरकार (मंत्रि-मण्डल) की तरफ से प्रकाशित की गई :—

"नागरिको,

बहुत बड़ा काम ख़तम हो चुका। एक बड़े धक्के के साथ रूसी जनता ने पुराने शासन को उखाड़ कर फेंक दिया। अब 'नवीन रूस' का जन्म हुआ है। पुरानी सत्ता ने पिछले वर्षों के संग्राम को जन्म दिया था। नये भावों के प्रभाव से ही '१६०५ के सुधारों' का वचन दिया गया, यद्यपि उनकी पूर्ति नहीं की गई।

पहिली ड्यूमा, जोकि जनता के मत को प्रकाशित करने वाली थी, तोड़ दी गई थी। दूसरी ड्यूमा के भाग्य का

निपटारा भी इसी प्रकार से हुआ। १९०७ में, सरकार ने प्रजा से व्यवस्था-सम्बन्धी अधिकार भी वापस ले लिये, यद्यपि वह लोक-मत को दाबने में नितान्त असमर्थ थी। गत १० वर्ष के बीच में सरकार ने एक के बाद दूसरे, सब अधिकार जनता से छीन लिये थे, और इस प्रकार जनता फिर निरंकुश शासन के नीचे रख दी गई थी।

न्याय की पुकार को तनिक भी सुनवाई नहीं हुई, और संसार-व्यापी युद्ध में हमारे देश के भी सम्मिलित होने पर, यह स्पष्ट प्रकट हो गया कि, रूसी सरकार जनता के मत के विरुद्ध स्वेच्छानुसार देश की शक्तियों का बलिदान कर रही है, और इस प्रकार राष्ट्र का नैतिक पतन हो रहा है।

सेना के वीरता-पूर्ण भाव तथा जनता के प्रतिनिधियों के एकता-मूलक आदेश आदि ज़ार तथा उसकी सरकार द्वारा बुरी तरह से अपमानित हुए, कुचले गये और दुरुपयोग में लाये गये।

इस प्रकार, जबकि, क्रूर शासकों द्वारा रूस नाश के निकट पहुंचाया जारहा था, जनता ने अपने हाथों में सत्ता को ले लिया। देश-व्यापी क्रान्ति-भावों तथा ड्यूमा की दृढ़ अभिलाषा ने समय की गम्भीरता को भली भाँति समझा और अन्त में 'अस्थायी सरकार' का संगठन किया गया। यह अस्थायी सरकार सार्वजनिक मत के अनुसार काम करना अपना पवित्र कर्तव्य मानती है और साथ ही उसका धर्म है कि, वह स्वतंत्र नागरिकता के स्वत्वों की तरफ समान भाव से रूसी जनता को उन्नति करने दे।

अस्थायी (नई) सरकार का यह भी विचार है कि, जिस देशभक्ति के भाव ने जनता को पुरानी शासन-सत्ता के

उखाड़ फेंकने में सहायता की है, वही भाव सीमान्त पर के सैनिकों को भी विजय देगा। सरकार अपनी शक्ति भर सैनिकों को वे सभी सहायतायें प्रदान करेगी, जिन से युद्ध में विजय प्राप्त हो।

सरकार उन सभी मित्रताओं तथा संधियों को विश्वास-पूर्वक निवाहती रहेगी, जो कि, अन्य शक्तियों के साथ एक होकर काम करने के लिए पिछले अवसरों पर की गई हैं।

बाहरी शत्रु से देश की रक्षा करते हुए, सरकार इसे अपना पहिला कर्तव्य समझेगी कि, वह जनता को अपनी इच्छा और सम्मति के प्रकट कर सकने का पूरा मार्ग दे। और इसी लिए, जल्दी से जल्दी, शीघ्रही, पूर्ण प्रातिनिधिक (Universal Suffrage) ढंग पर "प्रतिनिधि-सभा" की स्थापना की जायगी और इस सभा में, देश की शत्रु से रक्षा करने वाले सैनिकों का भी उचित प्रतिनिधित्व रखा जायगा। "प्रतिनिधि-सभा" को अधिकार रहेगा कि, व्यक्ति-गत स्वतंत्रता के समान भाव से स्थापित करने वाले अधिकार-सम्बन्धी क़ानूनों की वह रचना करे।

देश के ऊपर पड़ने वाले राजनैतिक दबावों की दृष्टि से, इस परीक्षा के अवसर पर, सरकार प्रत्येक रूसी व्यक्ति को नागरिक स्वाधीनता के उन सब स्वत्वों को दे देना चाहती है, जिन से रूसी जनता सशक्त बन सके, और सरकार द्वारा निश्चित सिद्धान्तों की पूर्ति में सहायता दे सके, जिस से देश का निश्चित एवं स्पष्ट हित हो।

सरकार अपने सिद्धान्तों के निश्चित करने में पूर्ण प्रजा-मत से काम लेगी, और यह काम प्रतिनिधि-संस्थाओं की सहायता से ही होगा।

राष्ट्रीय स्वाधीनता के इस अवसर पर, समस्त देश उन लोगों के स्मृति-स्वरूप कृतज्ञता प्रकट करता है, जो कि पुरानी सत्ता के मुक़ाबिले में काम आये, और जिनकी राजनैतिक एवं धार्मिक सेवायें चिरस्मरणीय हैं। नई सरकार प्रसन्नता-पूर्वक उन सब लोगों का स्वागत करेगी, जो देश के लिए कारागार तथा देश-निकाले का दण्ड भुगत रहे थे। इन सब कामों के करने में, सरकार यह समझती है कि, लोक-मत की पालना हो रही है, और इस प्रकार उस का विश्वास है कि. रूस के कल्याण-कार्य में रूसी जनता उस का समर्थन करेगी।"

* * * * * *

अब चूंकि, शासनाधिकार नई सरकार के हाथों में निश्चित रूप से चले गये थे, अतः ड्यूमा के अधिवेशन समाप्त हो गये। पर, संसार के इतिहास-पृष्ठों पर 'ड्यूमा' का नाम अमर हो गया, क्योंकि, यदि इस नाजुक अवसर पर, ड्यूमा इतनी दृढ़ता के साथ जनता की सहायक न बनती, तो, क्रान्ति का काम फिर असफल हो जाता, और अत्यन्त क्रूरता के साथ जनता कुचल डाली जाती।

ड्यूमा के पट बन्द होने पर भी मजदूर-दल तथा सैनिक-दल की कौंसिल अपनी बैठकों को बराबर करती रही। कौंसिल की कार्रवाइयाँ नित्य नये भावों को जन्म देती रहीं और सच-मुच में वर्तमान रूस का जन्म इसी कौंसिल की बदौलत हुआ।

नये मंत्रि-मंडल अर्थात् अस्थायी सरकार के हाथों में शासन के जाते ही "क्रान्ति की स्थिति" का अन्त हुआ। सब कारबार पुनः आरम्भ किये गये। अब वह समय आया, जब राजनीति के विद्वानों को अपनी अपनी व्यावहारिक योग्यता के प्रदर्शित

करने का पूर्ण सुयोग मिला। टेरिशचेन्को, कोनोवालाफ तथा प्रिन्स लौफ (जो पहले जेम्स्टोव्स के मुखिया थे) आदि राजनीतिज्ञों ने रूस की बागडोर को शासन की उच्चतम प्रणालियों पर प्रचिलित करना आरम्भ किया। एक समय था, जब प्रिंस लौफ के सभी अन्तर्देशीय कार्यों के विरोध में मि० प्रोटोपोपाफ (ज़ार का अन्तर्देशीय मंत्री) अपनी टाँग अड़ाये रहता था। आज, प्रिंस लौफ प्रधान मन्त्री होने के साथ, अन्तर्देशीय मंत्रित्व के भी अधिकारों से युक्त थे।

प्रजातंत्रीय सरकार ने सब से पहिले जो काम अपने हाथों में लिया, वह यह था कि, उस ने जनता को साथ लेकर चलने का काम आरम्भ किया। सरकार ने सीमान्त पर लड़ने वाले सैनिकों के भावों को भी किसी प्रकार की हानि न पहुंचने देने का ध्यान रखा। मो० गचकाफ तुरन्त सीमान्त के लिए रवाना किये गये, और उन्होंने वहाँ पर पहुंच कर सैनिकों के बीच में व्याख्यान आदि दे कर उन में नई सरकार के प्रति विश्वास-मूलक भाव उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। सैनिक स्टाफ का चीफ जनरल अलिक्ज़ीफ एक मामूली सार्जेन्ट का लड़का था, और योग्यता के कारण वह एक दम इतने दायित्व पूर्ण उच्च पद पर नियुक्त कर दिया गया, यह भी समानता तथा न्याय-कार्य का आदर्श था, जिसे नई सरकार ने अपने सामने रखा था।

क्रान्ति के आरम्भ में, ग्रैण्डड्यूक निकोलस प्रधान सेनापति बना दिये गये थे, पर राज-सत्ता के अन्त होने के साथ ही उन का खून खौल उठा था, इस लिए यह आवश्यक था कि, कोई दूसरा सेनापति बनाया जाय, और इस प्रकार जनरल अलिक्ज़ीफ, जो कि, सर्वसाधारण में से ही एक नागरिक की हैसियत रखने वाला व्यक्ति था, सेनापति बनाया गया।

इसी प्रकार, नई सरकार ने बड़ी शीघ्रता के साथ अन्य शासन विभागों की पुनस्स्थापना में हाथ लगादा। औद्योगिक विभाग के पुनर्निम्माण का भार कोनावालाफ के हाथ में था, कोनावालाफ ने इस विभाग की रचना इतनी उत्तमता के साथ की कि, पुरानी राज-सत्ता के अधिकारी यदि उपस्थित होते तो, दाँतों के नीचे उँगलियाँ दाब बैठते। एक अमेरिकन कम्पनी को तुरन्त ठेका दे कर बिजली के सामान मँगाये जाने लगे, और रोशनी तथा तार-घरों की फिर स्थापना की गई, रेलवे-मार्ग सुधारे गये, और यथासाध्य यही चेष्टा की गई कि, सब कारबार सुव्यवस्थित ढग से शीघ्र ही आरम्भ हो जाय।

प्रजातन्त्र ।

क्रान्ति के आरम्भ-दिवसों में पेट्रोग्राड रण-क्षेत्र था, और क्रान्ति के बाद उसने उत्साह-स्तम्भ का स्वरूप धारण कर लिया। एक दिन स्तम्भ के पाये से स्वाधीनता देवी जंज़ीरों से जकड़ी हुई पड़ी थी, आज वही देवी स्तम्भ के ऊपर विराजमान थी!

रूस के नये जीवन का पर्व आरंभ हो चुका था, और एक अत्यन्त तिमिराच्छिन्न रात्रि के बाद रूसी जनता सूर्य के सुनहले प्रकाश में अपनी आँखों को मींजती हुई अपूर्व सुख का अनुभव कर रही थी! क़ैद से छूटे हुए लोग चकित नेत्रों से स्वाधीन रूस के नये वेश को निहार रहे थे। एक दिन जो "नेवस्की सड़क" अत्याचारी ज़ार के शासन को केन्द्र थी, वही आज स्वाधीनता देवी के मंदिर का मार्ग थी! एक दिन ऐसा था कि, यहीं पर १६०५ में, सुधारों की माँग करने पर हजारों आदमियों के रक्त से शासकों ने क्रूर तर्पण किया था, आज यहीं पर पवित्र स्वाधीनता के वरदान बाँटे जाते थे! यह सब था अन्तर जो पराधीन और स्वाधीन जनता को संसार के आदि-इतिहास से अनुभव करना पड़ा है। रूसी जनता आज अपने को इस लिए धन्य मान रही थी कि, अब वह पराधीन नहीं थी। उसका मस्तक नत था, पर अत्याचारियों के आगे नहीं, वरन् स्वाधीनता देवी के चरणों पर। आज रूसी जनता संसार की सभ्य से सभ्य जनता के

पास बैठकर अपने वक्षस्थल को ऊंचा करके कह सकती थी कि, स्वाधीनता पर किसी की मुहर नहीं, और कुलीनता किसी की मोल ली हुई सम्पति नहीं। संसार के सभी प्राणी समान हैं, और इसी लिए, आज से रूसी जनता भी स्पष्ट रूप से घोषित करती है कि, यदि कोई उसे नीच समझता है, तो वह लोक-सत्ता के उन पवित्र भावों का घोर शत्रु है, जिन का अपमान करने पर मनुष्य मनुष्य-जाति में नहीं रह सकता!

साइबेरिया से छूटे हुए देश-भक्त नित्य पेट्रोग्राड में आ रहे थे, बड़े आदर के साथ ऐसे व्यक्तियों का स्वागत किया जाता था, क्योंकि, उनकी सेवायें परम पवित्र थी, और उनका त्याग था राजनैतिक सेवाओं के इतिहास में आदर्श-स्तम्भ। व्यक्तिगत स्वाधीनता और समानता के भावों ने ऊँच-नीच की सीमा को उस कल्पित रेखा की भाँति विलुप्त कर दिया था, जिसका सूर्य और चन्द्रमा के बीच में, रात्रि में होना तो बतलाया जाता है, पर दिन में नहीं! यहूदी लोग, जो किसी समय में, रूस की नीच और अस्पृश्य जाति थे, जिनके राजनैतिक स्वत्व केवल इतने थे कि, वे गुलामों से भी बुरी दशा में अपना जीवन व्यतीत करें, आज समान स्वत्वों का सुख-भोग करते हुए, पेट्रोग्राड की गलियों में घूम रहे थे।

'विन्टर पैलेस' के ऊपर क्रान्ति का लाल झण्डा फहरा रहा था, और फाटक पर के शाही पक्षी (ईगल) क्रान्ति के लाल कपड़े से लपेट दिये गये थे। 'स्वाधीनता' एक नया आन्दोलन था, और सचमुच में पराधीनता के एक लम्बे युग के पश्चात्, स्वाधीनता के प्रकाश में एकाएक आ जाने से जो आश्चर्य-जनक भाव उत्पन्न हो सकते हैं, वे ही भाव रूसी

जनता में काम कर रहे थे। प्रत्येक आदमी की जुबान पर स्वाधीनता की चर्चा थी और हरेक के मस्तिष्क में एक नई स्कीम। सभी अपने २ विचारों में मस्त थे। कभी २ उन्हें यह भी भ्रम हो जाता था कि, कहीं यह सब स्वप्न तो नहीं है! कहीं स्वाधीनता का यह विशाल मंदिर 'बैबल' (Babel) के मंदिर की भाँति हवा में न उड़ जाय!

रूस तरह २ की चर्चाओं का एक कथालय बन रहा था। जितने मुँह थे, उतनी ही बातें। एक विदेशी यात्री रूस की तात्कालिक स्थिति को देख कर भय और आशंका भरी आँखों से ताकते हुए यही कहता है कि, पता नहीं कि, रूस की यह अशान्त स्थिति कितने दिनों तक रहेगी। पर बात ऐसी नहीं थी, लोगों को अब मुँह खोल कर बात करने की स्वाधीनता मिली थी, वे जी भर के बातें कर रहे थे। ठीक यही बात मो० करेन्स्की ने एक अमेरिकन समाचार-पत्र के प्रतिनिधि से उस समय निम्न-लिखित शब्दों में कही थी:—

"Certainly, I will tell you why Is not this healthy if heated discussion which dissolves in the air in harmless oratory better than sinister and silent plot? Our people have just discovered that they have a voice They are learning to use it----straining it perhaps in the fear that it might be suppressed before they can say all they want to say When they learn that they are free to talk, they will subside and get down to normal life again"

अर्थात्, रूसी जनता ने अभी २, इस बात का ज्ञान प्राप्त किया है कि, वे भी बोल सकते हैं। और जब उन्हें यह मालूम हो जायगा कि, वे स्वाधीनता पूर्वक सदैव बोल सकेंगे, तब उनकी यह अनिश्चित और ऊधमी चर्चा दब जायगी।

क्रान्ति का महत्व !
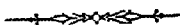
पराधीनता से अच्छी मृत्यु है, क्यों कि वह घोर कष्टों से त्राण देती है। पर किसी राष्ट्र की मृत्यु के अर्थ यह नहीं कि उसका पुनर्जन्म होगा ही नहीं। राष्ट्र की मृत्यु एक ऐसा मुमुक्षु युग है, जो मृत राष्ट्र की जर्जर हड्डियों पर नवीन भवन का निर्म्माण करता है। स्वप्तावस्था का नाम ही मृत्यु है, और जब किसी वस्तु, किसी जीव अथवा किसी जाति का विकास स्थगित हो जाता है, तब उसकी 'मृत्यु का युग' आ जाता है। पर यह मृत्यु ऐसी मृत्यु नहीं होती कि, अन्तर्गत धमनियों की गति को भी निश्चल कर दे। मृत्यु ही जन्म की जननी है। संसार के प्रत्येक राष्ट्र के सम्मुख मृत्यु का एक ऐसा युग गुजरा है, जो राष्ट्र इस युग में पड़े हुए हैं, उनके पुनः जाग्रत होने का समय निकट है। वे निश्चय जगेंगे, और उनकी जागृति संसार को निश्चय ही अपने युग का एक नया संदेशा देगी। युगों के संदेश संसार के निर्म्माण में भाग लेते हैं, और आज नवीन रूस के जन्म लेने पर जो सदेशा संसार को मिला है, वह किसी से छिपा नहीं है। एक अत्यन्त पीडित और दबी हुई जनता ने ससार के सामने जो आदर्श-सिद्धान्त रखे हे, उनका विकास उक्त रूसी जनता में किस प्रकार हुआ, इसका इतिहास भी रूसी क्रान्ति के साथ २ घना सम्बन्ध रखता है। आगे के अध्यायों में पाठक देखेंगे कि, कृत्रिम साम्यवाद की बातें, जो अभी तक यूरोपीय

राजनीतिज्ञों के व्याख्यानों में सुनाई पड़ती थीं, अथवा जो बातें केवल कागज़ और स्याही के परिमाण स्वरूप में ही रहा करती थी, रूसी जनता ने उन्हें किस प्रकार व्यावहारिक रूप में परिणत किया!

* * * * *

पूरे एक सप्ताह के भीतर रूस की काया-पलट हो गई थी। एक सप्ताह पहिले जिस विन्टर पैलेस के फाटक तक साधारण व्यक्ति का पहुँच जाना मृत्यु के मुह में पैर रखना था, आज उसी महल के भीतर रूसी जनता स्वच्छन्दता-पूर्वक घूमती फिरती थी। रूसी जनता के सामने स्वाधीनता का यह युग नाटक के उस पर्दे की भांति आमने आ गया था, कि, दर्शक जनता यह तक नही समझ सकी कि, पुराने दृश्य के भीतर इस दृश्य का पर्दा छिपा हुआ है! पर जिस प्रकार थोड़ी देर के बाद दर्शक मण्डली एक दृश्य को सम्पूर्णतया समझ सकने में समर्थ हो जाती है, उसी प्रकार रूसी जनता ने भी वास्तविकता का परिचय प्राप्त किया। ५००० व्यक्तियों के बलिदान के पश्चात् प्राप्त की गई स्वाधीनता रूसियों के लिए सचमुच बहुत सस्ती थी। और इसी लिए, रूसी क्रान्ति का नाम रक्तपात के साथ नहीं लिया जा सकता। रूसी जनता क्रान्ति के लिए तैयार थी, उसकी तैयारी प्रत्येक रूसी हृदय में हो रही थी, समय आया और क्षण में क्रान्ति की स्थिति उपस्थित हो गई। समस्त राष्ट्र की भावनाओं का बल प्रबल गति के साथ आगे बढ़ा। फिर भला ऐसी कौन सी शक्ति थी, जो रूसी जनता के स्वाधीनता देवी के मन्दिर तक पहुंचने देने में बाधा दे सकती?

एक प्रकार से रूसी क्रान्ति की घटनाओं का क्रम यहाँ पर समाप्त होता है। पर, क्रान्ति का प्रभाव चिरस्थायी होता है।

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति ने जिस प्रकार आधी शताब्दि तक यूरोप को कम्पित रखा था, उसी प्रकार रूसी क्रान्ति ने भी सारे ससार को हिला दिया। इसका कारण घटनाओं का महत्व नहीं था, वरन् मुख्य कारण था, सिद्धान्तों की उच्चता। और आज भी रूसी क्रान्ति के सिद्धान्त सारे ससार की उत्सुकता को अपनी ओर आकर्षित किये हुए है।

परन्तु, इन सब बातों के पूर्व एक बात स्मरण रखने योग्य यह है कि, अच्छी बातें बड़ी २ कठिनाइयों के पार कर चुकने पर ही सामने आती हैं। जिन अच्छी बातों के लिए रूस आज दिन आदर्श समझा जा रहा है, वे बातें रूस को कितने भयानक ख़तरों का सामना करने के बाद मिली हैं, राष्ट्र को उनके लिए कितना बड़ा बलिदान करना पड़ा है, यह भी विचारणीय विषय है।

प्रतिरूपक और पुनर्संगठन

स्वाधीनता का मिलना सहज है, पर उस को बनाये रखना अत्यन्त कठिन। एक साथ पराधीनता की बेड़ियों के टूटने की आवाज़ जिस प्रकार जेल भर के फाटकों को तोड़ देने के लिए काफ़ी होती है, उसी प्रकार बहुत दिनों से बन्धनों में पड़ी हुई जनता जब स्वाधीन हो जाती है, तब उसके सामने कोई दीवार नहीं खड़ी की जा सकती। स्वतन्त्रता की लहर बन्धनों को तोड़ कर ऐसे विकट वेग के साथ अन्धी गति के साथ, आगे बढ़ती है कि, उसे मार्ग-कुमार्ग की तनिक भी परवाह नहीं रहती। यही हाल रूसी जनता का था। सब से अधिक बन्धन सैनिकों और मज़दूरों के मार्ग में थे, स्वाधीनता प्राप्त करते ही इन दोनों ने स्वाभाविक बन्धनों से भी मुक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न किया। सैनिकों के हाथ में बहुत बड़ा बल था, और उसकी बदौलत उन्होंने शासन पर भी बहुत कुछ प्रभाव जमा लिया था, सैनिकों की देखा-देखी मजदूरों में भी स्वाधीनता के इस नये विकास से लाभ उठाने की भावना जगी। कल-कारखानों के राष्ट्रीकरण (Nationalization) करने का आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा था। इस सारे आन्दोलन की केन्द्र थी सैनिक-दल और मजदूर-दल की कौंसिल। यद्यपि यह संस्था सरकारी संस्था नहीं थी, पर इसका प्रभाव नित्य प्रति बढ़ता ही जा रहा था। कौंसिल की माँगें शासन के मार्ग में नित्य नई बाधायें डाल रही थीं।

लोगों को इस बात का तनिक भी ध्यान नहीं रहा था कि, जिस युद्ध की बदौलत उन्हें स्वाधीनता प्राप्त कर सकने का

(१८) मो० ट्राटस्की, मो० लेनिन के मंत्री ।

अवसर मिला, उसे सफलता-पूर्वक निवाहना ही स्वाधीनता की रक्षा करना है।

पर, जनता स्वाधीनता के मद से अन्धी हो उठी थी, और ऐसे अवसरों पर होता भी ऐसा ही है। युद्ध का अन्त करने के लिए 'मजदूर-सैनिक कौंसिल' नित्य नये पैम्फ्लेट निकाल कर जनता को अपनी तरफ मिला लेने का प्रयत्न कर रही थी। एक वार फिर असन्तोष की बाढ आई! अराजक दल के लोग भी युद्ध की समाप्ति कराने के लिए इस आन्दोलन में सम्मिलित हो गये थे। इस समय इनके नेता थे मोशिये लेनिन। लेनिन साम्यवादक-क्रान्तिकारी नेता रह चुके थे, और इसी लिए उन्हें ज़ार के समय में देश-निकाले का दण्ड दिया गया था। क्रान्ति के बाद समस्त राजनैतिक क़ैदियों को छुटकारा मिला था, उन्हीं के साथ, लेनिन भी स्वीटज़रलैण्ड से, जहां देश-निकाले के पश्चात वे रहने लगे थे, रूस को वापस आ गये। पर, लेनिन के आते ही, रूस में एक नया आन्दोलन उठ खड़ा हुआ, जिसका अन्त प्रजातंत्रीय सरकार भी नहीं कर सकी!

पहिले तो सारे यूरोप में यह अफ़वाह फैल गई थी कि, लेनिन और ट्राटस्की जर्मनी से मिले हुए हैं, और इसी लिए शीघ्र युद्ध बन्द करके सन्धि स्थापित करने का आन्दोलन मचा रहे हैं, यहाँ तक कि, इङ्गलैण्ड के समाचार-पत्रों में भी इस के सम्बन्ध में सप्ताहों बड़ी टीका-टिप्पणी होती रही। इस का एक कारण और भी था, वह यह था कि, जर्मनी ने लेनिन को अपने देश.के मार्ग द्वारा रूस चले जाने की आज्ञा दे दी थी। इस के साथ ही, यह बात हो सकती है कि, लेनिन के विचारों का जर्मनी को पता लग गया हो, और क़ैसर ने यह

दृखा हो कि, थोड़ी सी भलाई कर देने से लेनिन युद्ध बन्द कराने के लिए अधिक प्रयत्न-शील बन सकेंगे। पर असल बात तो यह है कि, लेनिन और ट्राटस्की ही ऐसे व्यक्ति थे, जो जर्मनी की भीतरी चालों को अच्छी तरह समझते थे। लेनिन का प्रभाव मज़दूर-दल पर करेन्स्की की अपेक्षा भी अधिक था, और इस समय मज़दूर-दल साम्यवादी प्रजातंत्र की स्थापना के लिए ज़ोर लगा रहा था, इस लिए, ऐसे अवसर पर लेनिन का रूस में पहुँच जाना मज़दूरों के लिए हित-कर और नई सरकार के लिए हानिकारक हो गया।

एक बात और है। लेनिन को भी आरम्भ से ही सफलता नहीं मिलती गई। कई बार उन्हें अपने आन्दोलन में नीचा देखना पड़ा। यहां तक कि, गरम-दल, जो लेनिन का अनुयायी हो रहा था, वह भी इन के हाथों से जाता रहा! करेन्स्की के एक व्याख्यान से लेनिन के सारे प्रयत्नों पर पाला पड़ जाता था! लेकिन, मज़दूर-लोगों की भीतरी इच्छा यह थी कि, युद्ध में देश की शक्तियाँ ख़र्च न कर के, देश के भीतर राजनैतिक आन्दोलन फैलाया जाय। युद्ध के उस नाज़ुक अवसर पर यह विचार रूस के लिए बड़े ख़तरे का था।

'मज़दूर-सैनिक कौंसिल' का कहना था कि, "रूस को विजय प्राप्त कर के क्या करना है। लोकसत्ता किसी दूसरे राष्ट्र की सम्पत्ति हरने का उपदेश नहीं देती।" फ्रांस का उदाहरण देकर कौंसिल में नित्य इस प्रकार के व्याख्यान हुआ करते थे कि, "फ्रांस को ही इस युद्ध में क्या मिल गया, लाखों आदमी जान से मारे गये और बहुत बड़ी भूमि शत्रु के हाथों में पड़ गई। ऐसे नाशकारी युद्ध को जारी रखकर रूस क्या लाभ सोचता है?"

*   *   *   *   *

अन्त में, स्थिति की भयंकरता इतनी बढ़ गई कि, रूसी सरकार को एक युद्ध-सम्बन्धा घोषणा प्रकाशित करनी पड़ी।

सरकारी घोषणा।

(युद्ध-सम्बन्धी उद्देश।)

"नागरिको,

देश के सम्मुख अपने दायित्व को मानती हुई, अस्थायी सरकार युद्ध तथा सेना सम्बन्धी स्थिति की दृष्टि से कुछ सच्ची बातें प्रकट करना चाहती है।

पुरानी सरकार (ज़ार की सरकार) ने देश की रक्षा का प्रबन्ध बहुत नाजुक हालत में छोड़ा था। स्वेच्छाचार तथा कठोर शासन के कारण उक्त सरकार ने देश के ख़ज़ाने को बिल्कुल ख़र्च कर दिया था और इसी प्रकार खाद्य-पदार्थों की बद-इन्तज़ामी और सैनिक प्रबन्ध की गड़बड़ी से देश तबाह हो गया था। आर्थिक दृष्टि से रूस बिल्कुल ग़रीब हो गया है।

नई सरकार जनता की सहायता से उन सब त्रुटियों की पूर्ति कर रही है, पर, समय किसी के लिए बाट नहीं जोहता। यद्यपि रूस की हजारों वीर सन्तानें इस महा युद्ध की वेदी पर चढ़ चुकी हैं, पर अब भी रूस पर महा भयंकर शत्रु की छाया छाई हुई है, और स्थिति ख़तरनाक है।

देश को शत्रु के भय से मुक्त करना तथा नवीन स्वाधीनता की रक्षा करना रूसी सैनिकों का पहिला और मुख्य कर्त्तव्य है।

जनता की सम्मति पर युद्ध के समस्त निर्णय छोड़ते हुए, रूसी सरकार, मित्र-राष्ट्रों के सहयोग को स्थापित रखते हुए,

अपना यह कर्त्तव्य समझती है कि, वह अपने युद्ध-सम्बन्धी उद्देश प्रकट कर दे।

रूसी सरकार न तो पराये देश पर कब्ज़ा ही किया चाहती है और न किसी अन्य राष्ट्र की सम्पत्ति ही छीना चाहती है। रूसी सरकार समस्त युद्ध-लिप्त राष्ट्रों के साथ अपनी २ उचित सीमाओं के भीतर स्थायी शान्ति की इच्छुक है। रूस यह नहीं चाहता कि, इस युद्ध में विजय प्राप्त करके किसी जाति को पराधीन बनाया जाय अथवा अपने स्वार्थ के लिए किसी देश पर अनुचित दबाव डाला जाय। इसी उच्च न्याय-बुद्धि से प्रेरित हो कर रूस ने पोलैण्ड को स्वाधीन कर दिया है। रूसी सरकार उपर्युक्त सिद्धान्तों को अपनी अन्तर्राष्ट्रीय नीति मानती है और मित्र-राष्ट्रों के दृढ़ सहयोग के साथ अपने उद्देशों की पूर्ति के लिए वह पूर्ण प्रयत्न करती रहेगी।

रूसी सरकार को कोई हक़ नहीं है कि, जनता से सच्ची बातें छिपाई जॉय। उसका कर्तव्य है कि, वह ख़तरे की स्थिति से राष्ट्र की रक्षा करे, वास्तव में राष्ट्र ख़तरे में है। लेकिन, साथ ही, हमें इस सत्यता के प्रकट कर देने का यह फल न मिलना चाहिए कि, रूसी जनता हमें बेजा तौर पर दबावे या हमारी हिम्मत को पस्त कर दे। यदि समस्त रूसी राष्ट्र इस समय उत्साह और धीरता के साथ हमारी सहायता के लिए उठ खड़ा होगा, तो हमारी शक्तियाँ बढ़ जांयगी।

इस कठिन परीक्षा के समय में, समस्त रूसी जनता को स्वाधीन रूस को बल पहुंचाने का प्रयत्न करना चाहिए, और रूसी सरकार भी राष्ट्र की रक्षा करने की शपथ लेती है। जनता की सहायता से वह निश्चय ही इस ख़तरे को पार कर सकेगी।"

इस घोषणा का प्रभाव जनता पर अच्छा पड़ा। रूसी जनता ने इसे पढ़ कर स्थिति की गम्भीरता को अच्छी तरह समझा लेकिन, 'मज़दूर-सैनिक कौसिल' पर इस का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। कौसिल युद्ध जारी रखने के बिल्कुल विरुद्ध थी, अतः वह इस घोषणा को पढ़ कर और अधिक उत्तेजित हो पड़ी। उस ने रणक्षेत्रों में काम आने वाले नक़शों को जनता के सामने पेश करने की मॉग की। लड़ाई के नक़शों पर बहस करना एक अत्यन्त अनुचित (Unreasonable) बात थी। इसी विवाद के कारण पराराष्ट्र-सचिव मिल्यूकाफ़ को इस्तीफ़ा देना पड़ा।

पाठक, बराबर देखते चले आ रहे हैं, कि ग़ैर-सरकारी संस्था होते हुए भी 'मज़दूर-सैनिक कौसिल' की शक्ति बढ़ती ही जा रही थी। पर रूसी सरकार उस का कुछ भी अहित नहीं कर सकती थी! सैनिक-दल जिसे बहुत कुछ आज़ादी दे दी गई थी, इसी कौसिल के पक्ष में था; और स्थिति की दृष्टि से यह आज़ादी शासन-व्यवस्था के लिए ख़तरनाक हो गई।

आख़िरकार, 'ड्यूमा' के एक विशेष अधिवेशन में, जिस में रूसी पार्लमेन्ट का पहिला अधिवेशन मनाया गया, युद्ध-मन्त्री मो० गचकाफ ने स्पष्ट शब्दों में साम्यवादियों के आन्दोलन का इस प्रकार विरोध किया:—

"......अब हमें घटनाओं का खुले तौर पर सामना करना पड़ेगा। क्योंकि, देश के भीतर एक ऐसा विषैला रोग फैल रहा है, जिस के कारण हमारी सैनिक शक्ति का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। शासन दो हाथों में रह कर कल्याणकारी नहीं हो सकता। जो रोग फैल रहा है, वह राष्ट्र के

लिए सांघातिक है, अब यदि ढील-ढाल की जायगी तो यह रोग असाध्य हो जायगा।

जो लोग किसी भी प्रकार सन्धि के कर लेने का आन्दोलन उठाये हुए हैं, वे सीमान्त पर युद्ध बन्द कर के देश के भीतर युद्ध मचाने का उद्देश रखते हैं।"

पर रूसी सरकार के हाथ से कौंसिल की नकेल जा चुकी थी। कौंसिल किसी भी प्रकार युद्ध बन्द कर देना चाहती थी, उस के मार्ग की बाधक थी केवल रूसी सरकार अर्थात् मंत्रि-मण्डल। अतः अब मंत्रि-मण्डल तथा 'मजदूर-सैनिक कौंसिल' के बीच द्वन्द-युद्ध छिड़ गया। कौंसिल ने बात २ पर सरकार का विरोध करना आरम्भ कर दिया। अन्त में युद्ध-मंत्री मो० गचकाफ को भी निम्न लिखित शब्दों के साथ त्याग-पत्र,दे देना पड़ाः—

"...जिस स्थिति के बीच में रूसी सरकार की सत्ता तथा विशेष कर युद्ध-विभाग इस समय पड़ा हुआ है, वह स्थिति" राष्ट्र-रक्षा की दृष्टि से अत्यन्त नाज़ुक है, और यह मेरी शक्ति के बाहर है कि, वर्तमान परिस्थिति में, मै इसमें कुछ भी सुधार या परिवर्तन कर सकूं। अतःयुद्ध-विभाग का दायित्व अब मैं तनिक देर के लिए भी नहीं सम्भाल सकता, और न उस बड़े पाप में ही भाग ले सकता हूँ, जो देश के प्रति रचा जा रहा है।"

मिल्यूकाफ़ और गचकाफ़ सरीखे योग्य व्यक्तियों के मंत्रि-मण्डल से निकल जाने से मंत्रि-मण्डल की नीव डोल उठी। पेट्रोग्राड में ये परिवर्तन हो ही रहे थे कि, सामान्त पर से जनरल ब्रुसीलाफ, जनरल रस्की तथा जनरल गर्को के इस्तीफ़ा दे देने के समाचार आये। अब घर बाहर, दोनों

स्थानों की स्थिति नाज़ुक हो उठी, और एकबार फिर सर्व-साधरण के हृदय में यह आशंका उठने लगी कि, 'अब इसके आगे क्या होगा ?'

साम्यवादी लोग तो इसी मौक़े की राह देख रहे थे। उन्होंने झट 'शसेलवर्ग' नामक स्थान पर क़ब्जा कर लिया। यह स्थान पेट्रोग्राड से थोड़ी ही दूर पर था, और यहां बारूद के बहुत बड़े २ कई कारखाने थे। लड़ाई रोकने का यह सबसे बड़ा द्वार साम्यवादियों के हाथ पड़ गया। इन सब घटनाओं से विदित हो चला कि, अब क्रान्ति के अन्तर्गत क्रान्ति का जन्म होने वाला है! इस स्थिति को देखकर स्वयं करेन्स्की ने धड़कते हुए हृदय से कहा था कि "क्या स्वाधीन रूस अब क्रान्तिकारी गुलामों का अड्डा बनने जा रहा है ?"

रूसी सरकार के हाथ में इस स्थिति के सुधारने का कोई उपाय नहीं था। और, मामला यहां तक पहुँच गया था कि, ज़रा से इशारे में साम्यवादियों के हाथों में शासन चला जा सकता था, क्योंकि सम्पूर्ण'सैनिक लोक-मत' उनकी ही तरफ था और युद्ध-काल में सैनिक बल ही एकमात्र महत्व की वस्तु थी। लेकिन, स्थिति को सुधारने वाला एकबार फिर उठा और नाटक के पर्दे की तरह फिर स्थिति का परिवर्तन हुआ। मो० करेन्स्की ने मजदूर-दल तथा सैनिक-दल की कौंसिल की कार्य-कारिणी कमेटी से ज़ोरदार शब्दों में देश के नाम पर अपील की। पाठक, पहिले से परिचित हैं कि, करेन्स्की साम्यवादी थे और मज़दूर-दल तथा सैनिक-दल के एक प्रभावशाली नेता भी थे। अतः करेन्स्की की बात का प्रभाव इस अवसर पर फिर काम कर गया। ४१ वोटों से साम्यवादियों ने वर्तमान रूसी सरकार को बनाये रखने की

बात मान ली और एक बार रूसी सरकार तथा 'मज़दूर-सैनिक कौंसिल' में फिर एकता स्थापित होगई। पर, इस पारस्परिक समझौते में शासन-सम्बन्धी कई महत्वपूर्ण शर्तें रूसी सरकार को कौंसिल के प्रति करनी पड़ीं।

एक रात्रि भर, परामर्श और वाद-विवाद करने के पश्चात् कौंसिल, ड्यूमा-कमेटी तथा मंत्रि-मण्डल ने तय किया कि:—

"(१) अन्तर्राष्ट्रीय नीति अब इस ढङ्ग से चलाई जायगी कि, जिससे बिना हारजीत के शीघ्र ही सन्धि स्थापित हो जाय, और इसीलिए मित्र-राष्ट्रों से कहा जाय कि, नवीन रूसी सरकार की घोषणा के अनुसार वे रूस के साथ की गई सन्धि में सुधार करें।

"(२) सीमान्त पर सैनिक-प्रबन्ध इतना उपयुक्त कर दिया जाय, जिससे देश की उचित रक्षा हो सके और साथ ही सेना में लोक-सत्तात्मक शासन प्रचलित किया जाय।

"(३) अन्तर्देशीय शान्ति स्थापना के लिए खाद्य-पदार्थों के प्रबन्ध तथा उनकी आवश्यकता पड़ने पर यथा-स्थान पर पहुँचाने की व्यवस्था की जाय।

"(४) कृषि-सम्बन्धी नीति इस ढङ्ग पर सञ्चालित की जाय कि, समस्त भूमि की मिलकियत किसानों की मानीजाय।

"(५) आर्थिक नीति का सञ्चालन इस ढङ्ग पर किया जाय कि टैक्स आदि देने का दायित्व धनी लोगों पर रहे।

"(६) "सार्वजनिक प्रतिनिधि सभा" का शीघ्र ही संगठन किया जाय।

"(७) साम्यवादी मंत्री-गण रूसी सरकार के सामने जवाबदेह न हो कर मज़दूर-सैनिक कौंसिल के सामने जवाबदेह रहें। .."

इस नये प्रोग्राम में साम्यवादियों को बहुत कुछ नई सुविधायें और नये स्वत्व मिले थे, और यह सब इस लिए करना पड़ा था कि, रूस अराजक-आन्दोलन से बचा रहे, क्योंकि, इन दोनों दलों के झगड़ों से देश में अराजकता के उत्पन्न होने का पूर्ण भय था। इसी लिए साम्यवादियों को मंत्रि-मण्डल में ६ स्थान मिले।

इस समझौते में, मंत्रि-मण्डल का फिर से निर्माण हुआ और इस वार ६ के स्थान पर १४ मंत्री रखे गये, क्योंकि, साम्यवादियों को वचन दिया जा चुका था कि, उनके दल के ६ मन्त्री नियुक्त किये जाँयगे। नीचे लिखे अनुसार नया मन्त्रि-मण्डल बनाया गया:—

(१) प्रिन्स लौफ	प्रधान मंत्री तथा अन्तर्देशीय मंत्री,
(२) टरशचेंको	परराष्ट्र-मंत्री,
(३) करेन्स्की	युद्ध-मंत्री,
(४) शिंगराफ	अर्थ-मंत्री,
(५) निकराफ	रेलवे-मंत्री।
(६) कोनोवलाफ	व्यापार-मंत्री,
(७) गाडनेफ	शासन-व्यवस्था-मंत्री,
(८) मेनीलाफ	शिक्षा-मंत्री,
(९) व्लैड मीर लौफ	धार्मिक मंत्री,
(१०) परवोज़ेफ	न्याय-मंत्री,
(११) स्कोवेलाफ	मज़दूर-मंत्री,
(१२) शर्नाफ	कृषि-मंत्री,
(१३) ज़रटेली	डाक-तार विभागीय मंत्री,

इनके अतिरिक्त दो विभाग और शामिल किये गये थे, जिनमें—

(१५) शेकोवस्की सार्वजनिक सहायता के मंत्री,
(१६) ग्रिम वोटर्स-विभाग के मंत्री,
थे। साम्यवादियों को इस नये मंत्रि-मण्डल से सन्तोष हो गया, क्योंकि, उनकी कौंसिल के कई ज़ोरदार नेता भी मंत्रि-मण्डल में पहुंच गये थे।

इस नये चुनाव की खबर जब सीमान्त पर पहुंची, तो इस्तीफा दे चुकने वाले जनरलों ने अपने अपने इस्तीफे वापस ले लिये। इसके बाद सैनिक प्रतिनिधियों तथा सरकारी अफसरों की एक कान्फ्रेंस पेट्रोग्राड में इस लिए बैठी कि, युद्ध में सफलता पाने के लिए किस प्रकार आक्रमण किया जाय।

* * * * *

यह सब मो० करेन्स्की की कार्रवाई थी, जिसकी बदौलत युद्ध के घोर विरोधी साम्यवादियों ने भी अन्त में यही ठीक समझा कि, बिना युद्ध को उचित ढंग से खतम किये रूस का हित-साधन नहीं हो सकता। और उसी निर्णय पर पहुँच कर 'मजदूर-सैनिक कौंसिल' ने निम्नलिखित अपील अपनी तरफ से प्रकाशित की, जिसमें युद्ध को विजयी दिवस तक पहुंचाने की बात कही गई थी:—

"रूसी किसानों और मज़दूरों के नाम ....

भले ही सन्धि दूर हो, पर जब संधि हो, तो, समस्त राष्ट्रों की एक संधि हो, और वह सन्धि स्थायी हो। पृथक सन्धि असम्भव है, और इसका होना संसार की घटनाओं पर निश्चय बुरा प्रभाव डालेगा। जर्मनी पश्चिमी रणक्षेत्रों में मित्र-राष्ट्रों को परास्त कर के फिर हम पर टूट पड़ेगा और हमारे देश को नष्ट-भ्रष्ट कर देगा, और हमारे देश को गुलाम बना डालेगा।

इस लिए प्रत्येक रूसी व्यक्ति का कर्तव्य है कि, वह युद्ध को सफलता-पूर्वक समाप्त करने में अपनी शक्ति भर सहायता दे।......"

पाठक ऊपर के सूची में देख चुके हैं कि, करेन्स्की न्याय-मंत्री के पद से हटा कर युद्ध-मन्त्री बनाये गये थे। युद्ध-मत्री का पद उस समय अत्यन्त मार्मिक तथा नाज़ुक उत्तरदायित्व-पूर्ण था। और एक विशेषता इस में यह थी कि, साम्यवादी होते हुए भी करेन्स्की ने इस पद को स्वीकार कर लिया था! सचमुच, करेन्स्की अपने काम को अच्छी तरह से समझते थे, और इसी लिए उन के हाथों में इस दायित्व-पूर्ण भार के आते ही रूस की सैनिक व्यवस्था बहुत कुछ सुधर गई। सब दलों को एकता के सूत्र में बाँधे रहने की चिन्ता करेन्स्की को सदा रहती थी। युद्ध-मन्त्री होते ही उन्हों ने पेट्रोग्राड में उन्हीं दिनों में होने वाली "किसान-प्रतिनिधि-सभा" में जा कर सरकार और जनता के कर्तव्य पर एक अत्यन्त मार्मिक व्याख्यान दिया।

इस के बाद सैनिक तथा नौसैनिक प्रतिनिधियों को बुला कर उन्हों ने शिक्षा दी कि, रूस की रक्षा इस समय वीरता के साथ युद्ध करने में ही है। करेन्स्की ने स्वयं सीमान्त पर जा कर सैनिकों से बातचीत करने की घोषणा की। सेना के लिए उन्होंने निम्न-लिखित घोषणा प्रकाशित कीः—

"राष्ट्र ख़तरे में है, इस लिए तुम में से प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्ति भर इस ख़तरे को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। मैं किसी प्रकार की उन प्रार्थनाओं को स्वीकार नहीं करूंगा जिन में अपने काम को छोड़ भागने के लिए छुट्टी

मांगो जायगी। ऐसे नाज़ुक समय पर, यह बात बड़ी बुरी है। भागे हुए सैनिक फिर एकत्रित हो रहे हैं, और नौसेना का संगठन भी शीघ्र हो हो जायगा। जो कोई इन नियमों का उल्लंघन करेगा, दण्ड का भागी होगा।"

इस के साथ ही समस्त सेना से मो० करेन्स्की ने इन उत्साह-भरे शब्दों में अपील कीः—

"तुम लोग सगठित रूप में, क्रान्ति और देश की रक्षा के नाम पर आगे बढ़ो, शत्रु को परास्त करो। संसार को दिखला दो कि, स्वाधीनता बल की देनेवाली है, न कि, कमजोरी की। आओ, दृढ़ आज्ञा-पालन के नियमों से बध कर वीरों की तरह देश को एक शक्ति का संसार को परिचय दो। याद रक्खो, जो हिम्मत हार कर पीछे देखेगा, अपना सब कुछ खो देगा। इसे मत भूलो कि, जो कोई देश के मान, स्वातंत्र्य, आदर तथा पद की रक्षा नहीं करेगा, उस का नाम सदा घृणा के साथ लिया जायगा। जनता की सम्मति ही देश के ऊपर रहेगी और व्यर्थ का ऊधम मचाने वाले तथा दूसरों की सम्पति पर दाँत लगाने वाले कभी स्थायी नही रह सकते। इस महत्व-पूर्ण कार्य के लिए मैं तुम्हें आमन्त्रित करता हूं।"

इस प्रकार रूसी सेना का संगठन नये सिरे से हो चला और देश में भी भीतरी शान्ति स्थापित हो चली। जिस 'मज़दूर-सैनिक कौंसिल' के कारण नई सरकार के पैर उखड़ २ कर रह जाते थे, वह अब सन्तुष्ट थी और इस प्रकार नये मंत्रि-मण्डल का काम दृढ़ आधार पर चल निकला और प्रकट हो चला कि, रूस अब नित्य प्रति शक्ति संचित करता हुआ, अपने उद्देशों की पूर्ति में निश्चय ही सफल होगा।

क्रान्ति के नेता ।

एक अमेरिकन की राय है कि, सङ्कट के समय, किसी देश में इतने बहुमूल्य व्यक्ति उत्पन्न नहीं हुए, जैसे कि, रूसी क्रान्ति में रूसी नेता। यह सम्मति यद्यपि पूर्णांश में भले ही सत्य न हो, पर अधिकांश में यह सत्य है। क्रान्ति के आरम्भ होते ही जितने नेता सामने आये, वे राष्ट्र के अनन्य सेवक थे, और उनके त्याग तथा उनकी सेवाओं का पूर्व-सञ्चित पुण्य ही उन्हें इस दायित्व-पूर्ण कार्य्य में सफलता दे रहा था। इन नेताओं में सभी दलों के लोग थे। कोई सैनिक था और कोई दार्शनिक, कोई प्रोफेसर था और कोई सम्पादक, कोई साम्यवादी प्रजातंत्र-स्थापक था तो कोई परिमित राजसत्ता के साथ २ लोक-सत्तावादी। मंत्रि-मण्डल एक खटमेल लोगों का ज़खीरा था! पर थे एक से एक बढ़ कर त्यागी और तन्मय हो कर काम करने वाले। सब का एक लक्ष्य था, स्वाधीनता और राष्ट्र की रक्षा। कोई अपनी कीर्ति को अधिक उज्ज्वल बना कर आगे बढ़ने की कोशिश में नहीं था, और न कोई स्वार्थी तथा नीच-प्रवृति का ही।

क्रान्ति एक आदमी की कृति नहीं होती, और जिस प्रकार विना योग्य सेनापति के फौज विजय प्राप्त नहीं कर सकती, उसी प्रकार अच्छे नेताओं के विना क्रान्तियाँ सफल नहीं होतीं। इस लिए इस अवसर पर, पाठकों के ज्ञान के लिए रूसी क्रान्ति-कारी नेताओं का कुछ हाल देना भी आव-

श्यक है। संक्षेप में, पाठक देखेंगे कि राष्ट्र की महती सेवा का भार उठाने के लिए कैसे २ नेताओं की आवश्यकता होती है। उनके चरित्र देश-प्रेम में रँगे हुए होते हैं, और वे निःस्वार्थता के पुतले होते हैं। बड़े भाग्य से किसी देश को सच्चे नेता मिलते हैं, क्योंकि, उनका दायित्व शासकों से कई गुना अधिक होता है और बडा अभागा होता है वह देश, जिसमें अधिकतर छल से काम लेने वाले नेता होते हैं।

१—प्रिन्स लौफ (प्रधान मंत्री)।

क्रान्ति के बहुत दिन पहले से ही प्रिन्स लौफ किसान-समुदाय के प्राण-वायु थे। उनका जन्म मास्को नगर में हुआ था, वहीं उनकी शिक्षा हुई थी, जीवनारम्भ में ही प्रिन्स लौफ अमेरिका घूमने गये थे, और वहां की लोक-सत्तात्मक स्थिति ने उनके हृदय पर बहुत कुछ प्रभाव डाला था। धीरे॰ लोक-सत्ता के उस प्रेम ने बढ़कर उनके हृदय में भावों का एक स्तम्भ स्थापित कर दिया।

१८९१ में, जब रूस में बहुत बड़ा अन्न-कष्ट उपस्थित हुआ, लाखों रूसियों को अन्न के लिए अपने प्राणों और मान-आदर आदि से हाथ धोना पड़ा, प्रिन्स लौफ ने बडे आत्म-त्याग के साथ जनता की सेवा की। अपनी समस्त सम्पत्ति और शक्ति लगाकर उन्होंने ग़रीब रूसियों को जिलाया। इस अकाल के समय, टूला प्रान्त की सरकार का यही मत था कि, अकाल कहीं नाम-निशान को नहीं है! पर प्रिंस लौफ के उद्योग से उसे होश में आना पड़ा और लाखों रूसियों का त्राण हुआ।

जेम्सटोव्स' में रह कर प्रिंस लौफ ने कीर्ति प्राप्त की। पाठक जानते हैं कि, रूसी जनता के इतिहास में 'जेम्सटोव्स'

अर्थात् प्रजा-पञ्चायतों ने अद्वितीय कार्य किया है। इन्हीं गैर-सरकारी सभाओं में काम कर के प्रिंस लौफ ने प्रजा-हित का साधन किया। रूस-जापान युद्ध के समय, इन सभाओं ने रणक्षेत्रों में घायलों की बड़ी सेवा की। प्रिंस लौफ ने अनेक बार पूर्वीय रणक्षेत्रों का दौरा कर के हताहतों का प्रबन्ध किया और उनके परिवारों की रक्षा की। १६०४ में, जब कि, रूस राजनैतिक मतभेद और आन्दोलन का स्थल बन रहा था, प्रिंस लौफ ने बड़े २ दायित्व के कार्य किये। ज़ार से सुधार माँगने वालों में सबसे पहिले प्रिंस लौफ ने हस्ताक्षर किये थे। पहिली ड्यूमा में टूला प्रान्त की तरफ से ये ही प्रजा प्रतिनिधि चुने गये थे। ड्यूमा में पहुंच कर प्रिंस लौफ ने प्रमाणित कर दिया कि, रूस के सच्चे सेवकों में वे सर्व श्रेष्ठ हैं। जब १६०७ में, ड्यूमा तोड़ दी गई, तब फिर उन्होंने जेम्स-टोव्स की तरफ अपना ध्यान दिया और इतने त्याग और परिश्रम से काम किया कि, वे मास्को सरकार की कौंसिल में प्रजा-प्रतिनिधि बनाकर भेजे गये, और इसके बाद, युद्ध के आरम्भ होते ही, समस्त रूस की जेम्सटोव्स (पंचायत सभा) के अधिष्ठाता बना दिये गये। इसके बाद से उनकी गणना देश के उच्चकोटि के नेताओं में होने लगी, और उन्होंने अपने को ऐसा प्रमाणित भी कर दिया।

प्रिन्स लौफ ठिगने क़द के और बड़े गम्भीर तथा मृदुल स्वभाव के व्यक्ति हैं। उनकी आँखों में एक बड़ी आत्मा का दर्शन होता है। उनकी देश-भक्ति अथाह है, क्योंकि, यदि ऐसा न होता, तो वे रूस के प्रधान मंत्री क्यों बनाये जाते।

२— मो० मिल्यूकाफ।

मो० पाल मिल्यूकाफ रूस के एक प्रसिद्ध देश-भक्त हैं।

(१६) बोल्शेविक सरकार के विरोधी, जनरल डेनकिन।

भावों ने अमेरिका में भी उन्हें अच्छा आदर दिलाया। १९०४ और १९०५में वे इङ्गलैण्ड में रहे। पर बहुत दिनों तक मिल्यू-काफ परदेश में नहीं रह सके। स्वाधीनता का भेरी उनका आवाहन कर रही थी, और जनता उनके दर्शनों के लिए व्याकुल थी। १९०५ में वे रूस लौट आये, वहां वे पेट्रोग्राड (सेन्टपीटर्स-वर्ग) की जनता की ओर से ड्यूमा के सदस्य निर्वाचित हुए। पर रूसी सरकार उन्हें बहुत ख़तरनाक सम-झती थी, अतः ड्यूमा में उनका प्रवेश नहीं हुआ। ड्यूमा के बाहर रहकर ही उन्हें देश के लिए सेवा करनी पड़ी। धीरे २ मिल्यूकाफ़ 'केडेट्स' नामक नागरिक-सभाओं के अध्यक्ष बन गये, और इसी पद पर रहकर उन्होंने जनता में स्वाधीनता के भाव जगाने आरम्भ किये।

मास्को की "छात्र-क्रान्ति"के अवसर पर रूसी सरकार ने अत्याचार-पूर्वक क़त्ल-आम किया था, उस समय मिल्यूकाफ़ ने एक अँग्रेज़ लेखक से नीचे लिखे शब्द कहे थेः—

"दमन-नीति अब अधिक दिन जीवित नहीं रह सकती। मास्को का दङ्गा, "एक ग़लती" अवश्य थी, और इसके अन्त समय पर मुझे भी यह भ्रम हो गया था कि, लोग निराश होकर अपनी लड़ाई को छोड़ देंगे। पर नहीं, सरकारी ज़ुल्म ने उसके प्रतिफल में जनता को यथा स्थान पर बनाये रक्खा है। जनता जान गई है कि क्रान्तिकारी लोगों के कारण हत्यायें और नाश का उपाय नहीं होता, वरन् इस सबका कारण निरंकुश सरकार है। दमन-नीति ? अब इसे समाप्त समझिये। अब दमन-नीति का युग समाप्त सा है।"

मिल्यूकाफ़ का यह कहना कि दमन-नीति का अन्त है, सच नहीं था। वरन्, दमन-नीति एक वार फिर जगी।

व्यक्ति डीलडौल में हाथी के समान था! आवाज़ इतनी ऊँची कि, जिस हाल में ये व्याख्यान देते थे, वह थर्रा उठता था। रोडज़िन्को सैनिक प्रवृति के पुरुष थे, और एक प्रकार से सैनिक बन कर ही सेवा करने के लिए इन का जन्म हुआ था। 'मोसम' जाति में उत्पन्न होकर इन्हों ने पहिले इम्पी-इम्पीरियल हार्स गार्ड के रूप में ज़ार की नौकरी की थी। इस के बाद १८८६ से १८९६ तक रोडज़िन्को नोवोमोस्को-वस्क नामक ज़िले के मार्शल पद पर रहे। इस पद पर रह कर रोडज़िन्को ने आगामी क्षेत्रों में काम करने की अच्छी क्षमता प्राप्त कर ली। १९०२ से, सार्वजनिक जीवन में रोड ज़िन्को ने स्पष्ट रूप से भाग लेना आरम्भ किया। सुधार-आकांक्षा रखने वाले लोगों के साथ २ रोडज़िन्को अन्त तक सरकार से लड़े। ड्यूमा की स्थापना के समय भी देश ने इन का सच्चा आदर किया, और अन्त में, अपनी त्याग-पूर्ण सेवाओं की बदौलत, १९१२ में ये ड्यूमा के सभापति बनाये गये।

इस व्यक्ति में भी देश के भविष्य का इतना दृढ़ विश्वास था कि, लोग दंग थे! युद्धारम्भ के समय विरोधियों की तरफ़ इशारा करते हुए रोडज़िन्को ने ठीक ही कहा था कि:—"तुम समझते हो कि, रूसी जनता मतभेद और पारस्परिक विरोध का केन्द्र है। यह बात बिल्कुल ग़लत है। आपत्ति के समय समस्त रूसी एक हैं, उनकी इस एकता को कोई शक्ति विभाजित नहीं कर सकती।"

रोडज़िन्को रूस के नव-निर्माण में दृढ़ शिलाधार के स्वरूप में स्थित रहे हैं, ड्यूमा के सभापति के पद की अपेक्षा भी अधिक ऊंचा पद उन्हें रूस ने दिया है। रूसी स्वाधी-

नता के स्तम्भ स्वरूप वे रूसी इतिहास में अमर हो चुके हैं। ऐसे वीर नेताओं पर ही रूस गर्व कर सकता है।

५—मो० गच काफ़।

गचकाफ़ का जन्म भी मास्को में ही हुआ था, और इनके माता पिता धनी थे। कालेज की शिक्षा समाप्त कर चुकने के पश्चात् गचकाफ़ व्यापार-कार्य्य में संलग्न हुए। व्यापारिक संस्थाओं में भाग लेते रहने के कारण उनकी यह इच्छा हुई कि, मैं भी प्रतिनिधि-सभा का सदस्य बनूं और शासन इत्यादि के सम्बन्ध में वाद-विवाद किया करूँ। यह इच्छा शीघ्र सफल भी हुई, मास्को की म्युनिसिपल कौंसिल के ये सदस्य चुन लिये गये और इसके अतिरिक्त इन्हें कई सरकारी कमीशनों में भी काम करना पड़ा। १८६१ के अकाल में, गचकाफ़ ने भी बड़े आत्म-त्याग के साथ सर्वसाधारण की सेवा की। मनुष्य जो अपने कर्तव्य को समझता है, या उसके निबाहने की इच्छा रखता है, वही ऐसे सब काम कर सकता है।

आर्मीनिया के क़त्लआम के अवसर पर बहुत से रूसी लोग सेना में भर्ती होकर देश की सेवा के निमित्त गये थे, गचकाफ भी उन में थे। आर्मीनिया के युद्ध के पश्चात् मंचूरियन रेलवे में गचकाफ़ चीफ नियुक्त हुए। इसके बाद उन्होंने तिब्बत की यात्रा की। जब द० अफ्रीका में "बोर युद्ध" आरम्भ हुआ, गचकाफ अंग्रेजों के विरुद्ध लड़े। वहां से वे ज़ख़्मी होकर लौटे और स्वस्थ होने पर फिर व्यापार-कार्य्य करने लगे। मेसीडोनिया की क्रान्ति में भी इन्हें बहुत कुछ काम करना पड़ा और रूस-जापान युद्ध में तो ये 'रेड-क्रास' के डाइरेक्टर बना कर भेजे गये। पर जापानियों

ने इन्हें क़ैद कर लिया और युद्ध के अन्त में इनका छुटकारा हुआ। १६०५ में, इन्होंने आकर देखा कि, देश में क्रान्तिकारी आन्दोलन जारी है, गचकाफ़ भी उसमें शामिल हो गये।

"१७ अक्टूबर की यूनियन" नामक सभा के ये सभापति बनाये गये और ड्यूमा के सङ्गठन के अवसर पर भिन्न भिन्न पार्टियों के बीच में उन्होंने अच्छा भाग लिया। पर पहिली और दूसरी ड्यूमा में ये सदस्य नहीं चुने गये। इस बीच में इन्हों ने "मास्को की पुकार" (The Voice of Maskow) नामक पत्र निकाला। १६०७ में, तीसरी ड्यूमा में ये सदस्य निर्वाचित हुए, और वहाँ पर ये "अक्टोबरिस्ट" दल के नेता बन गये। १६१० में ही, ख्योमाकाफ के त्याग-पत्र देने पर ये ड्यूमा के सभापति बनाये गये।

इस वर्ष इन्होंने उर्साफ नामक व्यक्ति से (Duel) लड़ा, और इन्हें क़ैद की सज़ा हो गई, अतः ड्यूमा का सभापतित्व त्यागना पड़ा। पर क़ैद से लौटने पर इनके साथियों ने फिर इन्हें ड्यूमा का सभापतित्व चुना। १६११ में, इन्होंने इस पद को त्याग दिया।

गचकाफ ने रूसी सैनिकता की शक्ति का कई युद्धों में अनुभव किया था, और उनका विश्वास था, कि, वह संसार के समस्त देशों की सेनाओं से रद्दी सेना है। इसी लिए, जब महा युद्ध आरम्भ हुआ, गचकाफ को इस बात की बड़ी चिन्ता हुई कि, रूस की रक्षा कैसे होगी।

इस प्रकार क्रान्ति के बाद केवल यही एक व्यक्ति थे, जिनका नाम युद्ध-मंत्री के लिए लिया गया। पर, इन्हें साम्य-वादियों के मतभेद के कारण अपना पद त्यागना पड़ा।

५—अलेक्ज़ेन्डर करेन्स्की।

रूसी क्रान्तिकारी नेताओं में सबसे आश्चर्यजनक व्यक्तित्व अलेक्ज़ेन्डर करेन्स्की का है। क्रान्ति के एक सप्ताह पहिले बहुत कम लोग इस छिपी हुई महान आत्मा से परिचित थे। जितनी शीघ्रता से इस व्यक्ति ने राजनैतिक क्षेत्र में उन्नति करली, वह अत्यन्त आश्चर्य-जनक और प्रतिभाशाली थी। सिर्फ ३५ वर्ष की अवस्था थी, दुबले वदन-पीले चेहरे का—जिसकी आँखें भीतर धँसी हुई थीं—यह युवक रूस की स्वाधीनता का एकमात्र रक्षक था।

छात्र-जीवन से ही करेन्स्की व्याख्यान देने की प्रतिभा में विख्यात हो चुके थे, वकील बनकर उन्होंने इसका अभ्यास इतना बढ़ाया कि, एक अमेरिकन प्रशंसक ने रूजवेल्ट तक से उनकी तुलना की है। पेट्रोग्राड में वकालत करते हुए उन्होंने सदा राजनैतिक मुक़द्मों को अपनाया। मुक़द्मों के समय करेन्स्की इतने आपे से बाहर हो जाते थे कि, सरकारी शासन के विरुद्ध उनकी कटु टीका-टिप्पणी मुश्किल से उन्हें सुरक्षित बनाये रह सकती थी। चौथी ड्यूमा में, ये सदस्य निर्वाचित हुए थे, और ड्यूमा की कोई भी बैठक ऐसी नहीं हुई जिसमें करेन्स्की की ज़ोरदार वक्तृता न हुई हो। करेन्स्की आरम्भ से ही मज़दूर-दल के साथ थे, और प्रजातन्त्र की स्थापना उनका उद्देश था। '६१७ के आरम्भिक दिनों में, जब कि, पेट्रोग्राड में क्रान्ति के भाव बड़ी ज़ोर शोर से फैलाये जा रहे थे, करेन्स्की गरम दल में मिले हुए थे। इस कारण उन्हे समस्त कार्रवाइयों का पूरा पता लगता रहा था।

वह बड़ा कठिन समय था, जब क्रान्ति के बाद अस्थायी सरकार की स्थापना की गई। क्योंकि "साम्यवादी मज़दूर-

सैनिक कौंसिल" उन्हें अपनी तरफ़ खींच रही थी, और नरम दल की ड्यूमा की पार्टी अपनी तरफ़। पर करेन्स्की ने अपने व्यक्तित्व की बदौलत दोनों के बीच में कई बार समझौते कराये और रूस की नई स्वाधीनता की रक्षा की।

करेन्स्की में वे सभी गुण मौजूद हैं, जो कि मि० लायड जार्ज में। लायड जार्ज वक्तृता देने में करेन्स्की का सामना नहीं कर सकते। ज़बर्दस्त और प्रतिभाशाली वाग्धारा, करेन्स्की की सदा मोहनी शक्ति रही है। ख़तरे के समय करेन्स्की ने अपनी वक्तृताओं द्वारा बड़े २ मसले हल किये थे। उन की जनता से सीधी अपील होती थी और प्रत्येक श्रोता यही समझता कि, करेन्स्की हम से ख़ास तौर पर कुछ कह रहे हैं। पर इतना ही गुण अलम् नहीं था। किसी भी नाज़ुक स्थिति पर करेन्स्की ने अद्भुत शक्तियों को प्रकट किया है, और राष्ट्र की खतरे से रक्षा की है। न्याय-मंत्री के पद से जब वे युद्ध-मंत्री बनाये गये, तब सचमुच उन के लिए ख़तरे का समय था, क्यों कि, जिस मज़दूर-सैनिक दल के वे नेता थे, वह युद्ध बन्द कर देने के पक्ष में था, पर करेन्स्की ने बड़े जीवट के साथ अपनी स्थिति साधी। इस के बाद करेन्स्की प्रधान मंत्री भी बनाये गये, और रूस के सर्वोच्च राजनैतिक दायित्वपूर्ण पद पर पहुंच कर इस व्यक्ति ने कितनी दृढ़ता से नई स्वाधीनता की रक्षा की, यह बात पाठक आगे पढ़ेंगे। पर किसी ने सच कहा है कि, पराधीनता के बन्धनों से छूटे हुए लोग बड़ी पशुता के साथ सामने की साधारण रोकों को भी—जो कि आवश्यक होती हैं—तोड़ डालते हैं। करेन्स्की युद्ध को एक उचित ढंग से समाप्त करना चाहते थे, पर मो० लेनिन के पटराग में पड़ कर मज़दूर-सैनिक दल

ने करेन्स्की को प्रधान मंत्री के पद से उतार दिया। उस के आगे की घटनायें पाठकों को मालूम होंगी।

करेन्स्की इस समय इंगलैंड में हैं, और रूस की स्थिति को ध्यान-पूर्वक देखा करते हैं।

रूसी क्रान्ति का प्रभाव।

रूसी क्रान्ति का प्रभाव सारे संसार पर पड़ा है, पर विशेषतः यूरोप पर उस ने एक अमिट प्रभाव डाला है। यह कम महत्व की बात नहीं है कि, २० करोड़ जनता ने स्वाधीनता प्राप्त कर ली है। ज़ारडम के पतन से यूरोप में प्रत्येक निरंकुशता का नाश निकट आ गया और दमन-नीति से काम करने वालों के भी पैर उखड़ चले हैं। जर्मनी और इंगलैंड पर रूसी क्रान्ति का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। इंगलैंड पर तो यहां तक प्रभाव पड़ा कि, वे लोग, जिन्हें इगलैंड के शासन-सङ्गठन पर गर्व था, यहाँ तक कहने लगे कि, "क्या प्रातिनिधिक व्यवस्था में रूस हमारा आदर्श होगा?" और सचमुच में, रूस की राज्य-क्रान्ति ने एक विशेष प्रकार ही प्रातिनिधिक व्यवस्था को जन्म दिया है। जर्मनी में भी, जहाँ की जनता क़ैसर के शासन को सहन करने में ही प्रसन्न थी, इस बात का आन्दोलन उठ खड़ा हुआ कि, प्रत्येक जर्मन नागरिक को इस बात का अधिकार मिलना चाहिए कि, वह शासन-सभा के लिए अपना प्रतिनिधि चुन कर भेज सके।

संसार भर पर रूसी क्रान्ति का एक चिरस्थायी और अमिट प्रभाव पड़ा है। मि० ब्रेल्सफोर्ड ने अपने एक लेख में निम्न-लिखित महत्वपूर्ण वाक्य लिखे हैं:—

"The fall of Tsardom means that every-where despotism has become more difficult, more obsolete, more emposible to mantiam"

अर्थात, ज़ार के पतन ने संसार भर के स्वेच्छाचारी शासकों का अन्त समीप कर दिया है और अब यह नितान्त कठिन है कि, दमननीति या स्वेच्छाचार बहुत दिनों तक बना रह सके।

रूसी क्रान्ति ने यूरोप भर में लोकसत्ता के सुदृढ़ भावों को जन्म दिया है, फ्रांसीसी क्रान्ति ने जिस इमारत की नींव रखी थी, रूसी क्रान्ति ने उस भवन को तैयार कर दिया है। इस मज़बूत क़िले को यूरोप की कोई शक्ति नष्ट नहीं कर सकती, और इस की पुष्टि के लिए यूरोप की जनता मात्र उठ खड़ी हुई है। व्यक्ति-गत जीवन के प्रत्यंग को स्वाधीन बनाने का जो आदर्श प्रयास रूस ने किया है, यूरोप भर की जनता उस ओर बढ़ती जा रही है। समय अत्यन्त निकट है, जब यूरोप के उन देशों के, जिन्हों ने साम्राज्यों की रचना कर के अनेक राष्ट्रों को पराधीन बना रखा है, खण्ड २ हो जॉयगे, और वे देश अपने असली रूप में लोकसत्तात्मक समाजों के समूह होंगे, और आज जो यूरोप संसार को पराधीनता के भावों में लपेट कर झूठी लोकसत्ता का पाठ पढ़ा रहा है, एक दिन संसार में सच्ची स्वाधीनता का सदेश प्रचरित करेगा!

रूस की राज्य-क्रान्ति का पूभाव आर्थिक जगत पर भी पड़ा है। लोग सम्पत्ति के बल से अभी तक ग़रीब मजदूरों का खून चूस २ कर माल बनवाते थे, उन की बदौलत रोकड़ जमा करते थे, वे दूध की मक्खी की तरह अपने २ स्थानों से भ्रष्ट कर दिये जॉयगे। सम्पत्ति के राष्ट्रीकरण का आन्दोलन सारे यूरोप में फैल रहा है, लोग राष्ट्रीय सरकारों की स्थापना के प्रयत्न में है। ये राष्ट्रीय सरकारें जनता मात्र के हित की चिन्तना किया करेंगी। यद्यपि अभी स्वेच्छाचारियों के क़िलों के टूटने में देरी है सही, पर निश्चय ही स्वेच्छाचार नीचा

देखेगा। भ्रम में पड़ी हुई जनता जगेगी और अपने वास्तविक स्वत्वों का स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग करना सीखेगी। रूस ने ही इस नये संदेश से संसार के कान पवित्र किये हैं। वह अवश्य ही इस आन्दोलन में संसार का गुरु होगा।

करेन्स्की : प्रधान मंत्री।
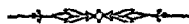
यद्यपि करेन्स्की के प्रयत्नों से साम्यवादियों का आन्दोलन रुक गया था, पर उस का विकास नित्य नये सिद्धान्तों के साथ हो रहा था। 'मज़दूर-सैनिक कौंसिल' का बल नित्य बढ़ता ही जा रहा था, और पूंजीवालों तथा मध्यम श्रेणी की जनता की दाल नहीं गल पाती थी। इन कारणों से एक बार फिर असन्तोष की आग भड़की! इस बार करेन्स्की भी ड्यूमा और कौंसिल के समझौते को क़ायम न रख सके। मंत्रि-मण्डल छिन्न-भिन्न हो गया। प्रधान मंत्री प्रिन्स लौक ने भी इस्तीफ़ा दे दिया! इस स्थिति में पूरे शासन-तंत्र का सिलसिला खतरे में पड़ गया। करेन्स्की केवल मज़दूरों और सैनिकों के विश्वास-पात्र थे, ऐसी स्थिति में करेन्स्की ने अपना यही कर्तव्य देखा कि, वे सरकार की स्थापना करें, और टूटे हुए क्रम को पुनस्संगठित करें। उन्हों ने अपने हाथ में शासन की बागडोर ले ली।

कौंसिल ने उन्हें प्रधान मंत्री बनाया और समस्त ओहदों पर साम्यवादी मंत्री नियुक्त किये गये। इस प्रबन्ध की नई रचना के समय एक बात यह बहुत बुरी हुई कि सीमान्त पर सेना का प्रबन्ध फिर गड़बड़ हो गया, इस का मुख्य कारण यह था कि, साम्यवादी व्याख्याता सैनिकों को यह उपदेश देते फिरते थे कि, सेनापतियों की आज्ञायें न मान कर अपनी २ कमेटियाँ बना लो, उन्हीं के आज्ञानुसार काम

करो। इस नये रोग के कारण गैलेशिया में रूसियों की भारी पराजय हुई। इधर नये चुनाव में कार्नीलाफ प्रधान सेनापति बनाये गये थे, वे भी निराले ढंग के निकले। उन का कहना था कि, सैनिक शासन सम्पूर्णतः हमें सौंप दिया जाय, तब तो काम चल सकता है, अन्यथा सेनाओं से उचित काम लेना बिल्कुल असम्भव हो जायगा।

रूसी राज्य-क्रान्ति के बाद से युद्ध क्षेत्रों की अवस्था गिरती ही गई, और सचमुच उसका कोई उपाय नहीं था। जर्मनी ने सीमा प्रान्त जीतकर पचास साठ मील और आगे की भूमि पर कब्ज़ा कर लिया था। फ्रेडरिक स्टेड तथा जेकबस्टेड, जो कि, ड्वीना नदी के किनारे पर दो मुख्य स्थान थे, वे भी जर्मनी के हाथ में पड़ गये थे, अब आगे के लिए और अधिक ख़तरा था। दो वर्ष की तैयारी के बाद जो युद्ध-खाहियाँ रूसियों ने बड़े परिश्रम से तैयार की थीं वे भी रूसी सेना को छोड़ देनी पड़ी!

पर ड्वीना के मुख्य केन्द्रों को जीत कर जर्मनी एक दम चुप पड़ गया, इसका कारण स्पष्ट था। उसे पूरी आशा थी कि, लोकसत्तात्मक सरकार उस से संधि कर लेगी। रूसी साम्यवादियों के आन्दोलन का भी कैसर को पूरा पता था। जब मन्त्रि-मण्डल बिल्कुल सामवादियों के ही हाथों में आ गया, तब तो जर्मनी एक प्रकार पूरी तरह से निश्चिन्त हो गया कि, अब रूस शीघ्र ही संधि कर लेगा।

इधर रूस में दो दल आपस में कलह मचाये हुए थे। मास्को में पूंजी वाले शासन की बागडोर अपनाने का आन्दोलन उठाये हुए थे। युद्ध की बहुत बड़ी सहायता इन लोगों ने की थी, और अब भी इन्हीं लोगों से आशा की जाती थी

कि, ये युद्ध की सहायता करेंगे। मध्यम-श्रेणी के लोग युद्ध में पूरी सहायता देते रहते थे। उन्होंने डाक्टरों और भोजनालयों द्वारा सैनिकों की यथेष्ठ सहायता की थी, और ये लोग प्राणपन से चाहते थे कि, जर्मनी का मान-मर्दन कर दिया जाय। पर साम्यवादी लोग किसी की सुनने वाले नही थे। सेनाओं में उन्हों ने जो भाव पैदा कर दिये थे, वे सहज ही मिटने वाले नही थे, उनका आन्दोलन बड़ी तेजी से काम कर रहा था। दूसरे उन्हें इस बात का भी गर्व था कि, हमीं लोगों ने क्रान्ति की है। वे मनुष्य को मनुष्य की श्रेणी में लाने की चेष्ठा में लगे हुए थे, वे किसी को मनुष्य के ऊपर नहीं देखना चाहते थे। वे किसी समुदाय को परम्परागत श्रेष्ठता नहीं देना चाहते थे, उनका सिद्धान्त यह था कि, जिस प्रकार म्युनिसिपल्टी या पार्लामेण्ट में एक व्यक्ति इने-गिने समय के लिए सत्ता धारण करता है, उसी भांति सेना और सरकारी नौकरियों पर भी नियुक्ति हुआ करे। किसी को परम्परागत या आजीवन अधिकार कदापि न सौंपे जॉय।

पहिले मंत्रि-मण्डल का सगठन होते ही साम्यवादियों ने उसका घोर विरोध किया था। इसके आगे की घटनायें पाठकों पर विदित हैं। अन्त में, साम्यवादियों के ही प्रयत्न से ड्यूमा और साथ २ प्रिन्स लौफ के प्रधान-मन्त्रित्व का अन्त हुआ। करेन्स्की साम्यवादी मत के ही थे। अतः ये प्रधान बनाये गये, और इनके सिवा और कोई व्यक्ति था भी नही, जो स्थिति को सम्भाल सकता।

जब मज़दूर-दल और सैनिक-दल की कौंसिल ही प्रमुख संस्था बन बैठी, तब रूस भर में मज़दूर-सैनिक कमेटियॉ

स्थापित होगईं। सीमान्त पर भी सैनिकों ने अपनी २ सेनाओं में प्रबन्ध-कमेटियाँ बना डाली!

करेन्स्की अपने व्यक्तित्व के भरोसे पर साम्यवादियों को जर्मनी के साथ अन्त तक लड़ने के लिए तैयार किये हुए थे, इसीलिए मध्यम श्रेणी वाले भी उन से सन्तुष्ट थे। पर सेना की उछृङ्खलता के कारण रण-क्षेत्रों में रूसी बराबर हार रहे थे। करेन्स्की को भी इसका पूरा पता था कि, इसका मूल कारण साम्यवादियों का वह आन्दोलन है, जो सेना पर से आज्ञाकारिता का भाव बिलकुल नष्ट कर चुका है। ऐसी स्थिति में, एकबार करेन्स्की बड़ी अड़चन में पड़ गये। करेन्स्की ने साम्यवादियों को यह जता देने के लिए कि, सेना में बिना उचित सुधार किये काम नहीं चल सकता, एक बड़ी भारी—२५०० प्रतिनिधियों की—कान्फ्रेंस मास्को में की। इसमें सभी सार्वजनिक संस्थाओं के प्रतिनिधि, पूंजी वालों के प्रतिनिधि और सैनिक तथा मज़दूर-दल के प्रतिनिधि उपस्थित हुए थे। पर साम्यवादियों ने फिर शोर-गुल उठाया कि, यह कान्फ्रेंस तो पूंजी वालों के हाथों में सत्ता सौंपने के लिए हुई है! मास्को की कान्फ्रेंस ने सर्व-मत से यह तय किया कि, सेनापतियों को उचित अधिकार दिये जाँय, अन्यथा सेना का शासन न हो सकेगा। इस घटना से सीमान्त पर सेनापतियों का साहस और अधिक बढ़ गया। करेन्स्की यहाँ पर चूक गये थे, पर अब उस ग़लती का सुधार असम्भव था। से० कार्नीलाफ जो करेन्स्की के विरुद्ध थे, अब अधिक दृढ़ता के साथ उठे।

लोगों का कहना है कि, सेना की अवशा-स्थिति, जताने के लिए ही सेनापति कार्नीलाफ ने रीगा की रक्षा नहीं की
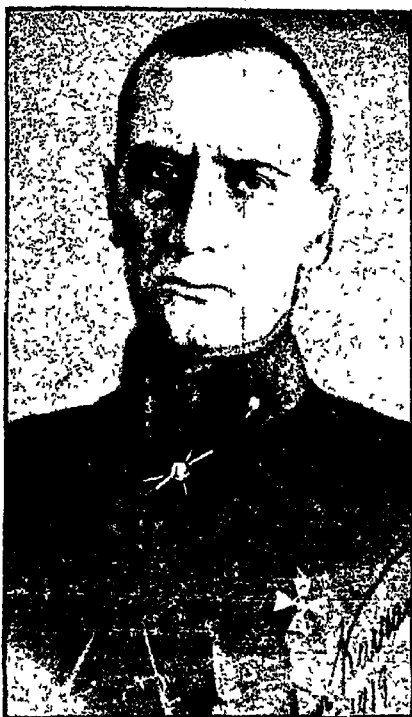
(२०) बोल्शेविकों द्वारा मार डाले गये एडमिरल कोल्चक ।

और जर्मनी का उस पर अधिकार हो जाने दिया ! अब करेन्स्की और सेनापति कार्नीलाफ का मतभेद तीव्र होता जा रहा था । कार्नीलाफ समस्त सैनिक शासन अपने हाथों में रखना चाहते थे, और करेन्स्की का बल केवल सेना ही थी । यदि सेना उन से असन्तुष्ट हो जाती, तो, फिर करेन्स्की का मंत्रि-मण्डल क्षण भर में उलट जाता । उदार साम्यवादियों के सहारे से ही करेन्स्की इतने प्रबल मतभेद के बीच में काम करते जा रहे थे । रीगा के पतन के अवसर पर सेनापति कार्नीलाफ ने प्रधान मंत्री करेन्स्की के विरुद्ध बलवा कर दिया और कोसक घुड़सवारों के साथ पेट्रोग्राड पर क़ब्ज़ा कर लेने का विचार तय किया ! करेन्स्की ने तुरन्त उन्हें प्रधान सेनापति केओहदे से अलग कर दिया, पर कार्नीलाफ ने उन की आज्ञा को नहीं माना ।

पेट्रोग्राड के ३०।४० मील की दूरी पर करेन्स्की की सेना तथा कार्नीलाफ की सेना की मुठभेड़ हुई, और एक छोटी सी लड़ाई भी हो गई ।

इधर कार्नीलाफ ने पब्लिसिटी कार्यालय को दबा कर अपनी घोषणा छपा डाली और उसे सीमान्त पर भेजना चाहा । करेन्स्की ने ज्यों ही यह सुना कि, कार्नीलाफ सीमा पर की सेनाओं को, मिला लेने की फ़िक्र में हैं, त्यों ही उन्हों ने वेतार के तार द्वारा अपनी घोषणा भी पब्लिसिटी कार्यालय के भेज दी । कार्यालय ने तुरन्त इस घोषणा को भी छाप कर रणक्षेत्रों के लिए रवाना कर दिया । करेन्स्की की चाल चल गई, और कार्नीलाफ के पक्ष में एक भी सैनिक खड़ा नहीं हुआ ! इधर कार्नीलाफ के सवारों में भी साम्यवादियों ने साम्यवाद के भाव भर दिये और उन्होंने भी

कार्नीलाफ का साथ छोड़ दिया। अन्त में, कार्नीलाफ को झुकना पड़ा और इस प्रकार मध्यम श्रेणी के लोगों का बलवा दब गया।

* * * * *

इतना सब हुआ, पर तो भी रूस की सैनिक व्यवस्था का सुधार न हो सका। करेन्स्की इस काम को कर लेते, पर देश में उन के बहुत शत्रु उत्पन्न हो गये थे और अन्त में किस प्रकार करेन्स्की को प्रधान-मंत्रित्व त्यागना पड़ा, इस बात को हम अगले अध्याय में बतलावेंगे।

नई दल-बन्दियाँ।

पीछे के अध्यायों में पाठक देख चुके हैं कि, रूस में केवल दो दल थे। एक तो वे लोग जो राजसत्ता के साथ साथ लोक-सत्तात्मक शासन स्थापित करने के पक्ष में थे, दूसरे लोग साम्यवादी थे, इन्हीं को अराजक या गरम दल के नाम से भी पुकारा जाता था। ये लोग साम्यवादी प्रजातंत्र शासन की ओर झुके हुए थे। इस साम्य-वादी दल में अराजक लोग, मज़दूर लोग तथा सैनिक-दल आदि के लोग सम्मिलित थे, और इसी लिए इनका बल बराबर बढ़ता जा रहा था।

परन्तु, देश-निकाले से लौटे हुए नेताओं के रूस में आते ही, कई दल और खड़े होगये। ऊपर के दो दलों में से ही ये शाखायें फूटीं। बढ़ते बढ़ते ये दल छः भागों में विभाजित हो गये:—

(१) मैक्सीमलिस्ट—ये लोग गरम-दल के थे, और पूर्ण प्रजातन्त्र के अनुयायी थे।

(२) मिनीमलिस्ट—ये लोग शान्तिवादी और युद्ध को बन्द करके लोकसत्तात्मक राज्य (प्रातिनिधिक शासन) की स्थापना करना चाहते थे।

(३) बोल्शेविक—ये लोग यह चाहते थे कि, जब तक देश में प्रतिनिधि चुनने की पूर्ण व्यवस्था न हो जाय, तब तक केवल मज़दूरों, सैनिकों तथा किसानों के बहुमत पर शासन

चलाया जाय। साथ ही, ये लोग, भूमि, कल कारखानों और खानों का राष्ट्रीकरण चाहते थे।*

(४) मेनशेविक—ये लोग केवल यह चाहते थे कि, थोड़े से लोगों के मत से शासन चलाया जाय, क्यों कि, जब तक पूर्ण प्रतिनिधि-सत्ता का सङ्गठन नहीं होता, तब तक देश में शासन और शान्ति की स्थापना के लिए कुछही लोगों का शासन उचित होगा।

(५) लेनिनिस्ट—ये लोग प्रसिद्ध साम्यवादी मोशिये लेनिन के पक्षपाती थे। लेनिन शीघ्र ही युद्ध बन्द कर देने के पक्ष में थे, और करेन्स्की की शासन व्यवस्था के कट्टर विरोधी थे।

(६) करेन्स्कीस्ट-करेन्स्की के पक्षपाती लोग साम्यवादी मत के थे, पर ये लोग युद्ध को उचित ढंग से जीत कर ही रूस को सुरक्षित बनाने के पक्ष में थे। सेना पर इन लोगों का प्रभाव था, पर पीछे से जब शान्तिवादियों के पक्ष में सेना चली गई, तो इनका पतन हो गया।

इस प्रकार पाठक देखेंगे कि, क्रान्ति के बाद—मार्मिक समय पर—रूस कितनी झगड़ालू पार्टियों का अखाड़ा बन गया था। पार्टियों का होना हानि-कर नहीं है सही, पर जब इन पार्टियों की ओर से शासन-व्यवस्था के उलट देने के लिए अनुचित षड़यंत्र रचे जाने लगते हैं, तब इनकी भयंकरता राष्ट्र के लिए अत्यन्त हानिकर हो जाती है।

*"They were originally the larger fraction of Social Democratic party, which split as far back as 1907. They were the extremer fiction, who beleived in working for [an immediate, catastraphic Social] revolution"

Brailsford

पाठक एक बात और ध्यान में रखें। जिस समय लेनिन रूस पहुंचे थे, उसके पूर्व से ही वोल्शेविक दल की स्थापना हो चुकी थी। ट्राटस्की इस दल के मुखिया थे। पर लेनिन और ट्राटस्की के सिद्धान्त एक थे, दूसरे लेनिन ट्राटस्की के एक प्रकार से गुरू थे। पहिले,। लेनिन ने ही ट्राटस्की को अराजक-साम्यवादियों के क्षेत्र में प्रविष्ट किया था, अतः ट्राटस्की और लेनिन की पार्टियाँ एक हो गई। इन लोगों को आन्दोलन-विस्तार (Propaganda work) के कार्य में काफ़ी अनुभव था, अतः इन लोगों ने सैनिकों तथा मज़दूरों की पार्टियों को धीरे २ तोड़ना शुरू कर दिया। जिस समय ये लोग यह चक्र चला रहे थे, करेन्स्की बहुत बीमार थे। रूस भर का शासन-व्यवस्था, दल-वन्दियों की छेड़-छाड़ तथा सैनिक व्यवस्था के उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों के करते रहनेसे उनका स्वास्थ्य एकदम बिगड़ गया था। करेन्स्की के पतन का कारण यही था। अन्यथा करेन्स्की प्रधान मंत्री के पद से अलग नहीं होते। क्यों कि, रूस के बहुतेर साम्यवादी उनके पक्ष में थे।

रूसी सरकार राजनैतिक अपराधियों को किसी भी हालत में, रूस में, नहीं रहने देना चाहती थी। दूसरे, लेनिन काफ़ी बदनाम हो चुके थे, अतः क्रान्ति तक लेनिन स्वीटज़रलैण्ड में ही रहे। यदि क्रान्ति के एक दो वर्ष पूर्व लेनिन रूस में आने दिये जाते, तो, क्रान्ति-कारियों के वे ही मुख्य नेता बन गये होते। क्रान्ति हो चुकने के बाद, जब जर्मनी ने अपने देश से मार्ग दिया और रूसी देश-निष्कासितों के लिए एक स्पेशल ट्रेन दी, तब कहीं लेनिन रूस पहुँच सके। जर्मन ट्रेन पर चढ़ कर रूस में पहुँचने के कारण यूरोप के कई देशों में—ख़ास कर के इङ्गलैंड वालों में—यह किम्वदन्ति फैल गई, कि, लेनिन जर्मनी से मिले हुए हैं!

अस्तु, रूस में पहुँच कर लेनिन ने किसान-समुदाय को बिल्कुल अपनी तरफ कर लिया और धीरे२ सैनिक-दल भी उन से जा मिला। इस का एक मुख्य कारण यह था कि, लेनिन जमींदारों के हाथों से भूमि छीन कर किसानों के बीच में बाँट देने का सिद्धान्त रखते थे। ज़्यादा संख्या किसानों की थी, अतः लेनिन की शक्तियाँ बराबर बढ़ती गईं। करेन्स्की और लेनिन का मुख्य झगड़ा यह था कि, लेनिन मध्यम श्रेणी के लोगों से कोई समझौता नहीं करना चाहते थे, और उनका कहना तो यहाँ तक था कि, पूंजी वालों ने स्वयं युद्ध का आवाहन अपने नाश के लिए किया। लेनिन साम्यवाद-युक्त लोक-सत्तात्मक शासन के पक्ष-पाती थी। पर करेन्स्की युद्ध को शीघ्र ही समाप्त कर देने के पक्ष में न थे, और साथ ही उन्हें इस की तनिक भी परवाह नहीं थी कि, इसका परिणाम कितना भयङ्कर होगा। लेनिन की सन्धि इस सिद्धान्त पर निर्भर थी कि, न कोई देश किसी दूसरे देश की भूमि ले और न सम्पत्ति का

हरण करे। लेनिन को यह भी अच्छी तरह से मालूम था कि, इंगलेण्ड और फ्राँस अपने सिद्धान्तों को इस स्थायी और सच्ची संधि के लिए कदापि न छोड़ेंगे।

अपने सिद्धान्तों के लिए, लेनिन ने रूस में पहुँच कर बहुत प्रयत्न किया और करेन्स्की के प्रभाव को तोड़ कर मज़दूर-सैनिक कौंसिल पर, जिस का नाम पीछे से "सोवेट" पड़ा, उन्हों ने पूरा क़ब्ज़ा कर लिया। करेन्स्की 'सोवेट' के बिना कुछ नहीं कर सकते थे, अतः उन्हें प्रधान-मंत्रित्व का पद त्यागना पड़ा। "सोवेट" ने लेनिन को प्रधान बनाया।

प्रो० लिअन ट्राटस्की।

ट्राटस्की 'सोवेट' (मज़दूरों और सैनिकों की कौंसिल) के पुराने नेताओं में से हैं। साम्यवादी लोक-सत्तात्मक शासन की स्थापना इनका जन्म-सिद्ध उद्देश रहा है। १९०५ में, जब, ये 'सोवेट' के सभापति थे, तब इन पर एक राजनैतिक अभियोग चलाया गया। बस, इन्हें उसी अपराध में उत्तरीय साइबेरिया में रहने के लिए देश-निर्वासन दिया गया। साइबेरिया से भाग कर ये फिर रूस आये। गुप्त रूप से कुछ दिनों तक इन्होंने रूसी अराजकों के साथ काम किया। फिर, ये आस्ट्रिया पहुँचे। लेनिन से इनकी पुरानी जान-पहिचान थी। आस्ट्रिया के वीना नगर में एक समाचार-प्रत्र के कार्यालय में ये बहुत दिनों तक काम करते रहे। युद्ध के आरम्भ में, एक रुसी मित्र के तार देने पर, इन्होंने आस्ट्रिया को भी छोड़ दिया। ये स्वीटज़रलैण्ड में भी कुछ महीनों तक रहे।

स्वीटज़रलैण्ड से ये अमेरिका पहुंचे। वहाँ इन्होंने एक रूसी पत्र "नोवी मीर" के सम्पादकीय विभाग में नौकरी कर ली। दो वर्ष तक के न्यूयार्क में रह कर, क्रान्ति के आरम्भ में ये कैनाडा होते हुए रूस के लिए चल पड़े। पर, कैनाडा के हैली फैक्स नामक स्थान में अंग्रेज़ों ने इन्हें जर्मन दूत समझ कर गिरफ्तार कर लिया! तब इन्होंने रूसी परराष्ट्र-सचिव मिल्यूकाफ को तार दिया और मिल्यूकाफ के परामर्श को पाकर अंग्रेज़ों ने इन्हें क़ैद से छुटकारा दे दिया।

रूस में पहुंच कर ट्राटस्की ने फिर अपना क्षेत्र तैयार किया। सैनिक-दल को अपनाने के लिए ही इन्होंने बोल्शेविज़्म की माया फैलाई थी, और इस कार्य में ये सफल भी हुए। पेट्रोग्राड के सैनिक शीघ्र संधि कर लेने के पक्ष में हो गये, और इस प्रकार करेन्स्की का मन्त्रिमण्डल छिन्न-भिन्न हो गया। बोल्शेविकों में गरमदल, अराजक तथा किसान और मज़दूर सभी शामिल हो गये। इतनी बड़ी दल-बन्दी के सामने करेन्स्की की दाल नहीं गली। सैनिक-दल भी पीछे से यही चाहने लगा था कि, युद्ध बन्द हो जाय। इस लिए, अब 'सोवेट' में सभी लोग शीघ्र संधि के पक्ष में हो चुके थे। यद्यपि यह किसी को पता नहीं था कि, एक सर्वव्यापिनी सन्धि (General Peace) तब तक 'असम्भव है, जब तक फ्रांस और इंगलैण्ड भी लेनिन के सिद्धान्तानुसार अपने उद्देशों को त्याग न दें। पर यह बात असम्भव थी, और रूस की अकेली सन्धि कभी उचित शर्तों पर हो नहीं सकती थी, जैसा कि पीछे से हुआ भी।

जो हो, ट्राटस्की ने लेनिन को पूरी सहायता दी और इस समय संसार में बोल्शेविज़्म की जो कुछ चढ़ती-बढ़ती है, उसमें ट्राटस्की का ही बड़ा भाग है।

संधि-आन्दोलन !

यद्यपि रूस की समस्त गरम पार्टियों ने लेनिन का साथ दिया था, पर नरम साम्यवादी लोग अलग थे। उनके साथ उदार-दल(Cadots) के लोग थे, और इन लोगों के पक्ष में रेलवे कर्मचारियों का दल भी था। अतः रूस में सिविल युद्ध(Civil) नहीं हो पाया, क्योंकि, रेलवे वालों ने खाद्य-सामिग्री को छोड़ कर सेना आदि का आवागमन विलकुल दिया था। इसी लिए रूस की भीतरी अशान्ति बहुत दिनों तक तलवारों की चमक तक न पहुंच सकी।

लेनिन ने,शासन की बागडोर लेने को तो अपने हाथ में लेली, पर उन्हें इसका विलकुल पता नहीं था, कि नरम-पार्टी को विना साथ लिए देश में शान्ति कैसे बनी रह सकती है। हुआ भी ऐसा ही। 'कोसकों' ने अपनी स्वतंत्र रियासत बना ली, उकरेनिया प्रान्त (कीव से उडेसा तक का क्षेत्र) अलग स्वतन्त्र हो गया, उधर काकेशस और साइबेरिया भी स्वतन्त्र बन बैठे। पश्चिमी रूस के प्रान्तों में भी ऐसा ही कुछ हुआ। इस प्रकार रूस की सारी शक्तियाँ बँट गईं और लेनिन के हाथ केवल "मध्य रूस" पड़ा।

सेनायें भी आरम्भ में वोलशेविक सरकार की परवाह नहीं करती थीं, और सिविल सर्विस वालों ने तो एक प्रकार की हड़ताल ही मचा दी थी। इतनी कठिनता के बीच में लेनिन रूस का शासन कर रहे थे। इतनी दल-

बन्दियों के बीच में शासन का उचित संगठन एक प्रकार से असम्भव ही था, और फिर, करेन्स्की के समय से ही तितर-बितर हो गई हुई सेना का एकत्र करके सैनिक व्यवस्था को सम्भालना भी लेनिन की शक्ति के बाहर का खेल था। फिर लेनिन बोल्शेविक मन्त्रि-मण्डल में अन्य किसी भी पार्टी को घुसने देने के पक्ष में नहीं थे। लेनिन से किसान और मज़दूर दोनों दल इस लिए सन्तुष्ट थे कि, प्रधान मंत्री होते ही लेनिन ने समस्त भूमि किसानों को सौंप दी, और मज़दूरों को फैकृरियों का मालिक बना दिया। रही सेना, सो, देश भर में शीघ्र सन्धि का आन्दोलन लेनिन ने पहिले ही से फैला रक्खा था। लेनिन ने स्पष्ट घोषित कर दिया कि, बिना हार-जीत या हानि-लाभ की सन्धि हम करेंगे, और इसी लिए स्टाकहाम नगर में उन्होंने एक कान्फ्रेंस करने की भी घोषणा की। समस्त यूरोपीय देशों के मज़दूर-दलों और साम्यवादी-दलों के प्रतिनिधि आमन्त्रित किये गये। पर, फ्रांस और इङ्गलैण्ड शुरू से ही बिना हानि-लाभ की सन्धि के विरुद्ध थे, क्योंकि, इन दोनों ने ही, आपस में तथा इटली आदि से, टर्की में अपने २ स्वार्थों के मसले गुप्त सन्धियों द्वारा तय कर लिये थे, जो कि, पीछे से खुले। अतः लेनिन की सन्धि का आन्दोलन असफल हुआ, और पेरिस में भी मि० बोनर ला ने युद्ध के उद्देशों पर बहस न करके सिर्फ उसके संचालन पर ही वाद-विवाद करने की बात कही। तब लेनिन ने निश्चय कर लिया कि, रूस को अलग सन्धि कर लेनी ही ठीक है।

लेनिन और ट्राटस्की (लेनिन के मन्त्री) दोनों व्यक्ति इस बात को अच्छी तरह से जानते थे कि, जर्मनी से अलग

सन्धि करने में रूस को सरासर घाटा रहेगा। इसीलिए, उन्होंने जर्मनी के साथ तीन महीने की "हथियारी सुलह" करने का प्रस्ताव किया। इन तीन महीनों के बीच में लेनिन को पूरी आशा थी कि, फ्रांस, जर्मनी तथा इङ्गलैण्ड में बोल्शेविक आन्दोलन द्वारा वे "लोक-सत्तात्मक सन्धि" का आन्दोलन खड़ा कर देंगे। पर इस कार्य में उन्हें कुछ भी सफलता नहीं हुई, और जर्मनी ने भी उनकी मंशा को ताड़ लिया!

अन्तर्राष्ट्रीय दाँव-पेंच !

१९१७ के अन्तिम दो मास तथा १९१८ का जनवरी मास यूरोप की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की दृष्टि से अत्यन्त महत्व का था। रूस के नये भावों का प्रभाव समस्त यूरोप पर पड़ा था, और मो० लेनिन ने "आत्म-निर्णय" के सिद्धान्त की परिस्थिति को इतना प्रमुख बना दिया था कि, इङ्गलैण्ड और अमेरिका को मजबूर हो कर संसार के छोटे छोटे और ग़रीब राष्ट्रों के लिए इसे मानना पड़ा। यद्यपि प्रेसी० विल्सन ने अपनी संसार-प्रसिद्ध वक्तृता में न्याययुक्त १४ बातों का उल्लेख किया था, पर यूरोपीय राष्ट्र इस नीति पर अब भी आते हुए संकोच कर रहे थे। तोभी, रूस की अलग सन्धि वाले आन्दोलन का प्रभाव उन्हें बहुत आगे खींच लाया। पोलैण्ड तथा फिनलैण्ड को, तथा उधर अर्बिस्तान, पेलस्टाइन आदि प्रदेशों को अपनी इच्छा के अनुसार शासन-प्रणाली निर्धारित कर सकने की सम्मति रूस दे चुका था। वह लोकसत्तात्मक अन्तर्राष्ट्रीय नीति संसार में स्थापित करना चाहता था। इधर मित्र-राष्ट्र जर्मनी से दबे हुए थे। उत्तरीय फ्रान्स, बेल्जियम तथा अलसास-लारेन जर्मनी के क़ब्ज़े में था ही, उधर रूमानिया तथा पोलैण्ड पर भी जर्मनी का प्रभाव फैला हुआ था।

अन्त में, मि० लायड जार्ज ने एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर मार्के की वक्तृता दी। इसके अनुसार उन्होंने प्रकट किया कि, "उत्तर फ्रांस, अलसास-लारेन आदि फ्रांस को लौटा दिये

जाँय, बेल्जियम का कोई भी भाग दाब न रखा जाय। पोलैंड, रोमानिया, सर्विया, अर्बिस्तान, पेलस्टाइन, आदि प्रान्तों को "आत्म-निर्णय" का अधिकार दिया जाय और इसी प्रकार जर्मन उपनिवेशों को भी "आत्म-निर्णय" का अधिकार दिया जाय।"

प्रेसी० विल्सन ने अपनी दूसरी वक्तृता में इस बात को स्वीकार करते हुए, समुद्री स्वाधीनता की एक बात और जोड़ दी थी।

इसी के पश्चात् मि० लायड जार्ज तथा प्रेसी० विल्सन की वक्तृताओं के उत्तर में जर्मनी के प्रधान मंत्री काउन्ट हर्ट-लिंग तथा आष्ट्रिया के परराष्ट्र-सचिव काउन्ट ज़ेरनिन की वक्तृतायें हुईं। उस समय शत्रु-राष्ट्र विजयी हो रहे थे।

आष्ट्रिया के परराष्ट्र-सचिव ने कहा कि, "इस महायुद्ध का कारण यह है कि, रूस बालकन राष्ट्रों तथा टर्की पर अपना प्रभाव जमाना चाहता था, फ्रांस ने अपने अल्सास-लारेन प्रान्तों की प्राप्ति के लिए रूस को अधिक उत्तेजित किया, और उधर इंगलैंड ने युद्ध में इस लिए भाग लिया कि, यदि रूस और फ्रांस की हार हो गई तो, जर्मनी की धाक् बाल्कन राष्ट्रों और टर्की पर बैठ जायगी। इस से भारतवर्ष तथा मिश्र देश के लिए ख़तरा उत्पन्न हो जायगा। रोमानिया और इटली इस लिए आष्ट्रिया के विरुद्ध उठ खड़े हुए, कि, जिस से आष्ट्रि-यन प्रदेशों में से कुछ भाग मिल जाय। पर जिन कारणों पर युद्ध हुआ, उन कारणों का फैसला स्वयं युद्ध ने कर दिया।" (का० ज़ेरनिन का यहां पर अभिप्राय यह था कि, रूमानिया पर जर्मनी की जीत हो ही गई, और आष्ट्रिया के क़ब्ज़े में इटली का वेनिस प्रान्त भी आ गया, अर्थात् इटली और रूमा-

निया की अभिलाषायें तो यों चकनाचूर हो गईं। रही फ्रांस की बात, सो, उसे भी युद्ध छेड़ने का उचित परिणाम मिल गया। उसका उत्तरीय भाग जर्मनी के क़ब्ज़े में पड़ गया, और अल्सास-लॉरेन का वापस मिलना धूल में मिल गया!) आष्ट्रियन परराष्ट्र-सचिव ने अपनी वक्तृता में एक बात और कही थी। वह यह कि, रूस के टुकड़े २ तो हो ही गये, अतः बाल्कन राष्ट्रों तथा टर्की साम्राज्य के बारे में जो कुछ फ़ैसला हम लोग (जर्मनी और आष्ट्रिया) देंगे, वही मान्य समझा जायगा।

जर्मनी के प्रधान मंत्री ने अपनी वक्तृता में कहा कि, जब पोलैण्ड को हमने जीत लिया, तो वहाँ की शासन-प्रणाली का निर्णय हमारे फ़ैसले पर निर्भर है। अन्य बातों के सम्बन्ध में, जर्मनी ने केवल इतना कहा था कि, यदि हम फ्रांस का उत्तरीय भाग तथा बेल्जियम को खाली कर दें, तो, हमारे उपनिवेश हमें मिल जाने चाहिए, हम स्वयं उन्हें उन के इच्छानुसार शासन-प्रणाली दे सकते हैं।

यद्यपि रूस की राज्यक्रान्ति ने अन्तर्राष्ट्रीय जगत् पर एक बहुत बड़ा प्रभाव डाला था, पर रूस की भीतरी कलह ने रूस को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कुछ भी प्रधानता प्राप्त न होने दी। यदि, पोलैंड, फिनलैंड, उकरेनिया, ओसाक, कोरलैण्ड, लिवोनिया, स्थूनिया, आष्ट्राखान, काकेशस आदि एक संगठित रूप में बने रहते, तो, मध्य यूरोप की राजनीति पर रूस का ख़ासा प्रभाव बना रहता। पर, ऐसा कुछ भी नहीं हुआ।

अन्त में, लेनिन तथा ट्राटस्की के जर्मनों के पास सुलह करने की प्रार्थना की। रूस की सन्धि आगे चल कर एक अत्यन्त गूढ़ अन्तर्राष्ट्रीय पहेली बन गई। आगे के अध्यायों में पाठक इस बात को पढ़ेंगे।

रूस-जर्मन सन्धि।

फरवरी (१९१८) के तीसरे सप्ताह में जर्मनी और आष्ट्रिया ने रूस को अपनी सन्धि की शर्तें दे दीं। परन्तु, जर्मनी और आष्ट्रिया ने अपनी शर्तों में कई स्वार्थ-पूर्ण बातें रखी थीं, अतः लेनिन तथा ट्राटस्की ने उक्त सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करना अस्वीकार कर दिया। पर, साथ ही इन लोगों ने यह भी प्रकट कर दिया कि "जर्मनी से लड़ने की हम में शक्ति नहीं है। और साथ ही हमारी इच्छा भी नहीं है, अतः इस महा युद्ध के लिए एकत्रित की हुई सेना अपने २ घर चली जाय। हम जर्मनी से लड़ाई बन्द करते हैं और संधि की ज़ुबानी सम्मति देते हैं। केवल हस्ताक्षर नहीं करेंगे।"

जब रूसी सरकार ने ऐसी घोषणा कर दी, तब जर्मनी और आस्ट्रिया ने उकरेनिया प्रान्त से अलग संधि कर ली। इस संधि में, जर्मनी ने रूसी पोलैण्ड का कुछ भाग उकरेनियां को दे दिया, और इसके बदले में अन्न लेने की शर्त्त तय कर ली। उकरेनिया प्रान्त अपने को स्वतंत्र घोषित कर चुका था, अतः रूसी सरकार ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि विश्वास-घाती उकरेनिया प्रान्त के समस्त अन्न-भण्डारों को जला दो। इस प्रकार रूसी सरकार और उकरेनिया प्रान्त में छिड गई। उधर पोलैण्ड जर्मनी से इस लिए नाखुश हो गया था कि, हमारे प्रान्त में से उकरेनिया को एक भाग क्यों

सौंप दिया गया। जर्मनी पोलैण्ड को नाराज़ नहीं किया चाहता था, अतः आस्ट्रिया ने उक्रेनियां को समझा-बुझा कर यह शर्त रद्द करवा दी!

इधर रूसी सरकार ने फिनलैण्ड की स्वतंत्र सत्ता की रक्षा करने वाले गोरे सैनिकों (White guards) से लड़ाई आरम्भ कर दी, और रीगा की खाड़ी के निकट की जर्मन रियासतों पर भी कब्ज़ा करना आरम्भ कर दिया, जिससे जर्मनी संधि की शर्तों द्वारा कोई लाभ उठा ही न सके।

रूसी सरकार के ये ढंग देख कर जर्मनी ने एक अन्तिम सूचना इस आशय की उसके पास भेजी कि—"तुमने लड़ाई तो बन्द कर दी है, पर हम लड़ाई बन्द कर देने के लिए तैयार नहीं हैं। और चूंकि, तुमने सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किये, इस लिए युद्ध के बन्द होने की शर्तें रद्द हो गई हैं। हमने अपनी सेना को फिर लड़ाई आरम्भ करने की आज्ञा दे दी है।"

इस सूचना को देकर जर्मनी ने रूस पर फिर लड़ाई आरम्भ कर दी। तीन चार दिनों में ही जर्मन सेना ने फिनलैण्ड की खाड़ी के दक्षिणी किनारे पर के प्रान्त ले लिये। रीगा तथा पेट्रोग्राड के बीच का पिस्काफ नगर भी जर्मनी के हस्तगत हो गया और रूसी सेना ने कहीं पर भी विरोध या सामना नहीं किया। पिस्काफ शहर में जर्मनी के हाथ रूसी गोला-बारूद का बहुत बड़ा संग्रह आगया! यह देख कर कि, अब दस पाँच दिनों में पेट्रोग्राड भी जर्मन सेना के क़ब्ज़े में हो जायगा, रूसी सरकार ने जर्मनी के हाथों में आत्म-समर्पण कर दिया और प्रार्थना की कि, आप जो कुछ शर्तें लिखेंगे, हम उन पर हस्ताक्षर कर देंगे।

३ मार्च तक सन्धि कर लेने का वचन लेकर जर्मनी ने अपनी सैनिक प्रगति स्थगित कर दी, और ३ मार्च के संध्या समय जर्मनी की शर्तों पर रूसी सरकार ने हस्ताक्षर कर दिये।

इस सन्धि के अनुसार रूसी सरकार को फिनलैण्ड की पूर्ण स्वाधीनता स्वीकार करनी पड़ी। साथ ही, स्थूनियो और लिवोनियां प्रान्तों में से रूसी सेनाओं के हटा लिये जाने की भी बात तय हो गई। पिस्काफ को लेकर, पिस्काफ के उत्तर की दो झीलों तथा डिवनक नगर की सीमा से पूर्व दक्षिण की सीमा, उक्त दोनों प्रान्तों (स्थूनिया तथा लिवोनिया) की सीमा निर्धारित की गई। इन दोनों प्रान्तों पर जर्मन पुलिस का तब तक के लिए शासन स्थापित किया गया, जब तक, ये दोनों प्रान्त स्वयं शासन कर सकने के योग्य न हो जांय। इतना ही नहीं, रीगा प्रान्त, पोलैण्ड, तथा ग्रोडनो, कोवनो आदिक कई ज़िले भी जर्मन सामाज्य में मिला लिये गये। पोलैण्ड, उकरेनिया, कीव प्रान्त, क्रीमिया आदि स्वतंत्र बनाये गये। टर्की को, इस संधि में, इडशाम, बाटूम तथा कार नामक छोटे २ प्रान्त मिले और अर्मीनिया टर्की-साम्राज्य की सरक्षा में स्वतत्र बनाया गया। ईरान और अफ़-गानिस्तान के साथ व्यापार कर सकने के लिए रूस को जर्मनी को मार्ग देना पड़ा। इसके अतिरिक्त १६०४ की संधि के अनुसार अन्य सभी व्यापारिक सुभीते जर्मनी को मिले।

इस प्रकार घोर अपमान-कारी संधि करके रूस ने युद्ध से छुटकारा पाया। जर्मनी ने रूस को टुकडे २ करके रूस की सत्ता को निस्तेज कर दिया और पेट्रोग्राड को सदा के लिए ख़तरे में डाल दिया। जर्मनी की सत्ता पश्चिमी रूस से लेकर

पूर्वी रूस तक फैल गई और एशिया का मार्ग भी उसके हाथ पड़ गया। यदि पश्चिमी रणक्षेत्रों में उसकी इतनी बड़ी पराजय न होती, और मित्र-राष्ट्र जर्मनी को चकनाचूर न कर पाते, तो आज जर्मनी की सत्ता संसार में इतनी बड़ी हो जाती जितनी कि, संसार के इतिहास में इतनी बड़ी सत्ता कभी किसी देश की नहीं रही होगी।

संधि का परिणाम ।

लेनिन तथा ट्राट्स्की ने संधि को झमेले में एक ख़ास मतलब से डाल रखा था, इन लोगों ने जर्मनी तथा आस्ट्रिया में साम्यवादी क्रान्ति (Social Revolution) खड़ी कर देने का प्रबन्ध किया था, और इसी प्रकार की क्रान्तियाँ इंगलैण्ड और फ्रांस में भी उत्पन्न कर के लेनिन एक स्थायी संधि-स्थापना की कल्पना कर रहे थे। यद्यपि जर्मनी और आस्ट्रिया की मज़दूर-दल की हड़तालें आरम्भ तो बड़े विकट रूप में हुईं, पर, सैनिक-दल ने इन हड़तालों में भाग नहीं लिया, इस का कारण यह था कि, जर्मनी में सैनिक सत्ता एक ख़ास स्थान रखती थी और इस लिए उस का दुर्ग तोड़ना एकाएक कठिन काम था। लेनिन के प्रोग्राम में ये क्रान्तियाँ तीन मास के भीतर समस्त यूरोप में घटित होने वाली थीं, यद्यपि उन का कुछ प्रभाव जर्मनी और आस्ट्रिया में तो पड़ा, पर कुछ विशेष फल नहीं हुआ।

जर्मनी के मज़दूरों का आन्दोलन तीन उद्देश ले कर चला था:—

(१) मिलों पर सार्वजनिक अधिकार ।

(२) लोक-सत्तात्मक संधि की माँग ।

(३) प्रजातंत्र की स्थापना ।

पर, जब जर्मनी और आस्ट्रिया का आन्दोलन अधिक ऊपर न चढ़ सका, तब ट्राट्स्की ने कोरलैण्ड, लिवोनिया, स्थूनियाँ, उकरेनिया, रीगा, आदि प्रान्तों में—किसानों और मज़दूरों में—

बोल्शेविज़्म का प्रचार कर दिया। यही कारण था, जिससे संधि के आरम्भ में तो जर्मनी को रूस से थोड़ा बहुत अन्न मिल भी सका, पर शेष पिछले दिनों में बोल्शेविज़्म के कारण जर्मनी की दाल रूस में न गल सकी, और, उस के यहाँ अन्न का अकाल फैल गया!

जर्मनी में बोल्शेविक जाल फैलाने का निरन्तर प्रयत्न किया जा रहा था, और पीछे से इस काम में लेनिन तथा ट्राटस्की को बहुत कुछ सफलता भी मिली, पर सन्धि के पूर्व वह अपने काम में सफल न हो सके। उधर हंगरी में बोल्शेविज़्म पूरी तरह व्याप गया था, और युद्ध के समाप्त होते ही वहाँ एकदम से साम्यवादी शासन स्थापित हुआ, और उसके बाद बोल्शेविज़्म ने बढ़ कर शासन-सत्ता को भी हथिया लिया। जब हंगरी में बोल्शेविज़्म को इतनी सफलता मिली, तब उस का प्रचार आस्ट्रिया में भी किया गया, कई बार छोटी-मोटी क्रान्तियाँ घटित हुईं और अभी तक वहाँ शान्ति नहीं विराजी है।

इस प्रकार रूस-जर्मनी-सन्धि के परिणाम में बोल्शेविज़्म का मध्य-यूरोप में प्रचार हुआ, और फ्रांस भी उससे अछूता न बच सका! इतना ही नहीं, अमेरिका, इङ्गलैण्ड, कैनाडा तथा आस्ट्रेलिया तक बोल्शेविज़्म के डोरे फेंके गये। यदि जर्मनी इतनी अपमानकारी शर्तें रूस के सामने न रखता, तो, सम्भवतः बोल्शेविज़्म की सत्ता रूस तक ही परिमित रहती, और रूस के भीतर ही, आपस में मारकाट होती रहती, पर अब तो बोल्शेविज़्म संसार का "हौआ" बन रहा है!

महा-सन्धि : रूस से युद्ध।

घटना-क्रम एकाएक रूपान्तर पर आता है। जर्मनी की हार से मध्य-योरोपीय शक्तियों का गर्व सब तरह से चूर हो जाता है। पेरिस में सन्धि-कान्फ्रेंस की बैठकें होती हैं। यद्यपि, जर्मनी प्रेसी० विल्सन के सिद्धान्तों पर सन्धि करने के लिए ही तैयार हुआ था, पर पेरिस और वारसेलिस में जो कुछ हुआ, वह किसी से छिपा नहीं है।

संसार की इस महती घटना—महासंधि—के समय, रूस की क्या स्थिति थी, इस पर यहाँ प्रकाश डालना उपयोगी होगा। पाठकगण यदि युद्ध-समय में समाचार-पत्रों को पढ़ते रहे हैं, तो उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि अमेरिका रूस से पूरी सहानुभूति रखता था, और प्रेसी० विल्सन के प्रभाव से ही सन्धि-कान्फ्रेंस में बैठ सकने के लिए रूसी सरकारों को भी निमन्त्रण भेजे गये थे।

मि० लायड जार्ज का यह कहना कि "बिना रूस के सम्मिलित हुए यह सन्धि सच्ची सन्धि ही न होगी" कई माने रखता था। इसमें प्रेसी० विल्सन का प्रभाव तो था ही, साथ ही, मि० लायड जार्ज रूस की अशान्ति से बहुत कुछ भयभीत से मालूम पड़ते थे। ख़ास कर बोल्शेविक आन्दोलन की कार्रवाइयाँ वे जर्मनी और आस्ट्रिया में देख चुके थे! इन कारणों से वे बोल्शेविक सरकार तथा अन्य स्वतन्त्र रूसी प्रान्तों की सरकारों को कुछ प्रतिज्ञाओं से बांधना चाहते

थे, और साथ ही रूस में वे शान्ति भी स्थापित कर देना चाहते थे। इसीलिए कान्फ्रेंस में उन्होंने "रूसी सरकारों" को निमन्त्रित करने का प्रस्ताव पेश किया था। पर फ्रांस बोल्शेविकों की हवा से इतना डरता था कि, यह प्रस्ताव कान्फ्रेंस की दीवारों से प्रतिध्वनित होकर ही ठंडा पड़ गया! फ्रांस को भय था कि, बोल्शेविक प्रतिनिधि यहाँ आते ही आग लगा देंगे। फ्रांस प्रजातन्त्र रखते हुए भी एक घोर सम्पत्ति-वादी देश बन रहा है। इसलिए, इस सम्पत्ति के लोभ से वह 'बोल्शेविज़्म' की छूत अपने देश में नहीं लगने देना चाहता था।

अस्तु, फ्रांस के इनकार करने पर लोगों की यह राय हुई कि, मित्र-राष्ट्रों के प्रतिनिधि तुर्की द्वीप 'प्रिन्केपो' में जाकर रूसी प्रतिनिधियों से मिलें। पर रूसी सरकारों ने इस नीति को अपमान-जनक समझ कर 'प्रिन्केपो' में अपने प्रतिनिधि भेजने से इन्कार कर दिया! केवल बोल्शेविक सरकार तो इस पर राज़ी हुई, पर इतना पर्य्याप्त नहीं था। अतः यह प्रयत्न भी असफल हुआ।

इस के बाद, नारवे के साम्यवादी नेता डा० नान्सन ने मित्र-राष्ट्रों के पास यह प्रस्ताव भेजा कि, रूस इस समय भूखों मर रहा है, अतः उस की खाद्य-सामिग्री से सहायता की जाय। "चतुर्गोष्ठी" (विल्सन, लायडजार्ज, क्लिमेंशो और आरलेंडो) ने इस प्रस्ताव पर अपनी सम्मति भी दे दी। पर शर्त यह रखी गई कि, रूस की सरकारें पारस्परिक युद्ध को बन्द कर दें। बोल्शेविक सरकार को छोड़ कर अन्य सरकारों ने इस शर्त का भी विरोध किया! पर पता नहीं कि, बोल्शेविक सरकार को सहायता देने से लगातार क्यों हाथ खींचा गया!

* * * *

अब वह समय आता है, जब महा-युद्ध की महा-सन्धि का काम समाप्त होने को आया । इस समय के भीतर बोल्शेविक आन्दोलन ने वेलाकुन, आस्ट्रियन साम्यवादी (क्रान्तिकारी) नेता को दीक्षा दी । हंगरी में बोल्शेविक सरकार की स्थापना हुई । आस्ट्रिया में भी बोल्शेविक आन्दोलन का प्रचार हुआ । उधर जर्मनी में फिर एक बार बोल्शेविज़्म की लहर पहुची और कई स्थानों पर मज़दूरों तथा साम्यवादियों ने क़ैसर को सिंहासन-त्याग देने की धमकी दी । 'कील' में नाविकों की एक विकट क्रान्ति हुई । कैसर इस उथल-पुथल में, जर्मनी को छोड़ कर हालैंड चले गये। इस के बाद जर्मनी में प्रातिनिधिक प्रजातन्त्र की स्थापना हुई, और इसी प्रजातंत्र सरकार ने मित्र-राष्ट्रों से भली-बुरी-जैसी कुछ वह हो-सन्धि की !

जब बोल्शेविक नेता मध्य-यूरोप में ये खेल खेल रहे थे, मित्र-राष्ट्रों ने एक अत्यन्त आश्चर्य-जनक घोषणा की कि, ज़ार के समय के एडमिरल कोल्चक समस्त रूस के शासक क़रार दिये गये । इस के बाद कोल्चक साहब की पाँचों घी में हो गईं। मित्र-राष्ट्रों ने—ख़ास कर के इगलैंड ने—युद्ध-क्षेत्रों में लूटी हुई गोलीबारूद तथा हथियार आदि से उन की सहायता शुरू की । इस सहायता के बदले, एडमिरल साहब को बराबर क़र्ज़ की किश्तें लिखनी पड़ती थीं । रूस के भीतर इस विचित्र लीला को खेलने वाले सैनिक-मन्त्री मि० चर्चिल ही थे । यह उन की ही उपज है कि, रूस में भीतरी कलह उत्पन्न कर देने से "बोल्शेविज़्म" का "हौआ" इङ्गलैंड तक न आ सकेगा ! कुछ दिनों तक, संसार

को 'रूटर' ने बड़ी मज़ेदार ख़बरें सुनाईं। उन्हें क्रमशः पढ़ने में सच्चाई और बनावट, दोनो की खिचड़ी बड़ी दिलचस्प मालूम पड़ती है। वह इस प्रकार से है:—

पहिला समाचार—एडमिरल कोल्चक जीत रहे हैं,

दूसरा समाचार—बोल्शेविकों ने पेट्रोग्राड ख़ाली कर दिया,

तीसरा समाचार—एडमिरल शीघ्र ही मास्को लेने वाले हैं,

चौथा समाचार—द० रूस में जनरल डेनकिन ने अष्ट्रा-खान ले लिया!

सम्भवतः संसार अभी तक नहीं जानता कि, ये समाचार कहाँ तक सत्य हैं। हाँ, पीछे से इतनी ख़बर तो ज़रूर मिली कि, बोल्शेविकों ने एडमिरल को १२० मील पीछे हटा दिया और उन की सेना ने भी उन का साथ छोड़ कर 'बोल्शे-विज़्म' की दीक्षा ले ली! इस सेना में कोल्चक की सेना बहुत थोड़ी थी। इनमें अधिकतर मित्र-राष्ट्रों के सैनिक थे। और इसी लिए, इंगलैण्ड की मज़दूर-पार्टियों ने बराबर यही पुकार लगाई है कि, ब्रिटिश सेना रूस से वापस बुला ली जाय। जो रूस दूसरों से लड़ना नहीं चाहता, उस से इङ्गलैण्ड क्यों लड़ाई लड़ रहा है?

'बोल्शेविज्म' ।

रूस में १६०० तक साम्यवादियों का प्रकट रूप में केवल एक ही समुदाय था। इस दल को "रूसी साम्यवादक-लोकसत्तावादी" कहते थे। १६०० में इस दल के दो टुकड़े हो गये। नये दल का नाम "क्रान्तिकारी-साम्यवादी" पड़ा। ये लोग श्रमजीवी समुदाय के थे, और इनका उद्देश क्रान्ति कर के "साम्यवादी शासन" स्थापित करने का था। इस नये दल में कुछ लोगों को छोड़ कर पुराने समुदाय के सभी साम्यवादी लोग शामिल हो गये। यहां तक कि, मोशिये प्लेखानाव, जसूलिच और अलेक्जेन्ड्रोव सरीखे नेता भी इसी नये दल में सम्मिलित हुए। इस दल की इच्छा थी कि, निरंकुश अधिकारियों तथा स्वेच्छाचारी ज़मीदारों का शासन हटा कर साम्यवाद के व्यावहारिक प्रयोग के लिए क्षेत्र तैयार किया जाय।

परन्तु, जो लोग पुराने समुदाय "रूसी साम्यवादक-लोकसत्तावादो दल" में बने रहे, वे पीछे से "मोलोडाई" अर्थात् बाल-समुदाय के कहलाने लगे। इनका कार्य-क्षेत्र परिमित था। ये लोग आर्थिक क्षेत्र में आन्दोलन उठाये हुए थे और सम्पत्तिवादियों से श्रमजीवियों के लिए सुविधा और सहूलियत मॉग कर प्राप्त करना चाहते थे, क्योंकि, इनके विचार से रूसी मजदूर-दल राजनैतिक कार्यक्षेत्र में काम कर सकने के अयोग्य था।

३ वर्ष तक, इन दोनों दलों में कोई प्रकट विरोध नहीं रहा। परन्तु, १६०३ में, साम्यवादक-लोकसत्तावादियों की

कांग्रेस में ये दोनों दल दो टूंक अलग हो गये। कांग्रेस का बड़ा दल मो० लेनिन की अध्यक्षता में "बोल्शेविकी" कहलाने लगा और छोटा दल मोशिये मारटाव के आधिपत्य में "मेन-शेविकी" के नाम से पुकारा जाने लगा।

इन का सर्व प्रधान मतभेद इस बात पर था कि, ग़रीब किसान और अधम श्रेणी के नागरिक लोग ही रूस में सार्वजनिक हित के लिए जन-सत्तात्मक शासन चाहते हैं, अन्यथा, उत्तम और मध्यम श्रेणी के नागरिक इस विषय में तनिक भी सहायक नहीं माने जा सकते। क्योंकि, ये लोग तो ज़ार के शासन में भी अपना स्थान प्राप्त किये हुए हैं। ये ही लोग हाकिम बनाये जाते हैं, ऊंचे २ ओहदे पाते हैं। 'ड्यूमा' के लिए अपने प्रतिनिधि चुनते हैं, 'कौंसिल आफ इम्पायर' तथा 'जेम्सटोव्स' में भी इन्हीं लोगों को स्थान मिलता है। म्युनिसिपलिटियों में भी इनकी ही पूँछ है। निरंकुश अधिकारी-तंत्र जब ग़रीब जनता पर अत्याचार-पूर्ण बड़े बड़े टैक्स लगाता है, तब भी ये ही लोग, अर्थात् उत्तम और मध्यम श्रेणी के नागरिक, सम्पत्तिवादियों की तरफ़दारी करते हैं और शासकों के साथ ग़रीबों पर अत्याचार करते हुए सरकार की शक्ति और धन से पुष्टि करते हैं।

इसी कारण से बोल्शेविकों ने सम्पत्तिवादियों से मिलकर काम करने से साफ़ इनकार कर दिया था, क्योंकि ग़रीबों और अमीरों का मिलकर एक उद्देश्य के लिए काम करना असम्भव था। इस 'मिली-भगत' के सिद्धान्त पर काम करने वाले मोशिये गचकाफ, मिल्यूकाफ, टेरचेन्को, बरिशकन, आदि से बोल्शेविक लोग किसी भी प्रकार का समझौता करने के लिए तैयार नहीं थे।

१९१७ की अन्तिम 'ड्यूमा' के संगठन से भी यह बात प्रमाणित होगई। ग़रीब मजदूरों और किसानों को धोखा देकर धनी लोग और जमींदार उक्त ड्यूमा में घुस गये!

जब श्रमजीवी समुदाय के लोगों ने इस रहस्य को समझ लिया, तब उन्होंने ड्यूमा के द्वार पर सशस्त्र पहुँच कर ड्यूमा से साफ़ २ कह दिया कि, "विदेशी शत्रुओं से पीछे लड़ना, पहिले अपने घरेलू शत्रु जार और उसके सहायक सम्पत्तिवादियों से लड़ो। ये सम्पत्तिवादी ही लोग इस महा संग्राम को अपने स्वार्थ के लिए छेड़े हुए हैं!"

श्रमजीवियों के इस कथन का उत्तर धनी-समुदाय के नेता, मिल्यूकाफ ने दिया। ये लोग अपने को "राष्ट्रीय स्वाधीनता-वादी" के नाम से पुकारते थे। यद्यपि थे उसी धनी-समुदाय के उद्देशों की पूर्ति करने वाले। मिल्यूकाफ और प्लेखानाव ने भी कहा कि, श्रमजीवियों ने अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर ड्यूमा के कार्य में बाधा पहुँचाई है और युद्ध के कार्य में कठिनाई उत्पन्न की है।

'ड्यूमा' के इन नेताओं के इतने कहने मात्र से प्रकट हो गया कि, ड्यूमा में बैठने वाले सम्पत्ति के पुजारी हैं, और वे किसी भी प्रकार जनता के भावों के साथ नहीं चल सकते। यदि, वे जनता की एक साधारण से साधारण माँग को उत्पात और बाधा का नाम देने लग गये, फिर भला वे जनता के विपक्षी नहीं, तो और कौन थे? रूसी भाषा में एक मसल है कि, "जब तक तालाब में कांटा रहे, तब तक मछलियों को सावधान रहना चाहिए!" बोल्शेविकों ने इसी सिद्धान्त पर चल कर सदा राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्र मे सतर्कता से काम किया। भयङ्कर से भयङ्कर समय के बीच में भी, वे धनी

समुदाय से बचे रहे और उनकी बातों के जाल में नही फँसे। उनका सदा यही निश्चय रहा कि, केवल मज़दूर और किसान ही 'जनता की सरकार' अर्थात् मज़दूरों और किसानों की ऐसी सत्ता को स्थापित कर सकते हैं, जो कि, तमाम रूस के श्रमजीवियों, सैनिकों, किसानों और 'कोसक' सैनिकों की प्रतिनिधि-स्वरूप मानी जा सके।

परन्तु, 'मेनशेविकी' समुदाय का 'क्रान्ति' के सम्बन्ध में यह कहना था कि:—

"हमें धनी-समुदाय को साथ लेकर ही ज़ार के विरुद्ध लड़ना चाहिये। ऐसा करने से ही धनी-समुदाय के लोग आगे के कार्यों के लिए भी तत्पर हो सकेंगे। वर्तमान क्रान्ति धनी-समुदाय के विरुद्ध है भी नहीं, वह सम्मिलित रूप से ज़ार के विरुद्ध खड़ी हुई है। वह राजनैतिक है, अतः धनी और ग़रीबों, दोनो को, एक साथ मिल कर इसे सफल बनाना चाहिए।"

अब दोनों दलों के कार्यों और उपायों का विषय आता है। 'बोल्शेविकों' का सदा से सार्वजनिक हड़ताल और सशस्त्र क्रान्ति पर विश्वास रहा, क्रान्तिकारी-साम्यवादियों के सिद्धान्तों पर वे सदा दृढ़ रहे। परन्तु, 'मेनशेविकी' दल का कहना था कि, सशस्त्र क्रान्ति और सार्वजनिक हड़ताल पीछे की बातें हैं। इस काम में धनी-समुदाय को भी शामिल करना पड़ेगा। हमारा काम यह है कि, सब से पहिले ज़ार के विरुद्ध हम लोग खड़े हों। लेकिन इस प्रथम युद्ध में भी 'मेनशेविकी' दल के लोग वैध आन्दोलन से ही काम लेना चाहते थे।

बोल्शेविकों ने 'ड्यूमा' का पूर्ण रूप से 'बायकाट' कर दिया था। उनका कहना था कि, ड्यूमा १९०५ की क्रान्ति की क़ब्र

पर स्थापित की गई है, वह ज़ार और धनी समुदाय के समझौते की वस्तु है। बोल्शेविकों ने ड्यूमा के चुनाव का भी इसी आधार पर विरोध किया था कि, ड्यूमा में जाने वाले केवल वे धनी लोग हैं, जो ज़ार के शासन में भी अपने हाथों में शक्ति रखने के लोभ को नही रोक सकते।

बोल्शेविकों की दृष्टि से ड्यूमा केवल एक ऐसा ज़रिया था, जिसके द्वारा हाकिम लोग १६०५ की क्रान्ति के सहायकों और कार्य-कर्त्ताओं को पकड़ कर जेल में डाल देना चाहते थे और क्रान्ति की सफलता को नष्ट कर देना चाहते थे। बोल्शेविक लोग उस ड्यूमा की सत्ता को किसी भी प्रकार स्वीकार करने के लिए तैयार नही हुए, जो तलवारों के बल से ज़बर्दस्ती लोगों के ऊपर रख दी गई थी, और जिस में धनी-समुदाय के गचकाफ और मिल्यूकाफ सरीखे नकली नेता मौजूद थे, जो कि मास्को, क्रान्सेर्क तथा क्रान्सटाड की क्रान्तियों के दमन के लिए ज़ार की सरकार के साथ थे!

लेकिन, जब राजनैतिक भावों का दृष्टिकोण बदल चला, तो 'ड्यूमा' के बायकाट की बात को छोड़ कर बोल्शेविकों ने भी उसके चुनाव में भाग लेना आरम्भ कर दिया।

तो भी, प्रश्न यह है कि, बोल्शेविकों ने ड्यूमा के चुनाव में शामिल होने के लिए सर्व-साधारण को क्यों आमन्त्रित किया? क्या ज़ार की निरंकुश सत्ता को स्वीकार करने अथवा धनी-समुदाय के लाभ के लिए बनने वाले क़ानूनों की रचना के लिए? बात यह नहीं थी। बोल्शेविकों के ड्यूमा में सम्मिलित होने का रहस्य ही दूसरा था। वे ड्यूमा में केवल यह उपदेश देने के लिए सम्मिलित हुए थे कि, "लोग, धनी-समुदाय की इस ड्यूमा से सावधान रहें। ज़ार के निरंकुश

राज्य से मुक्ति पाने का केवल एक मार्ग है। वह यह कि, सार्वजनिक हड़ताल कर दी जाय और सशस्त्र क्रान्ति उठाई जाय! बिना इसके 'जनता की सरकार' की स्थापना नहीं हो सकती!" (देखो, लेनिन लिखित "सामाजिक लोकसत्ता और चुनाव का समझौता" नामक पैम्फलेट, १९०५।)

इसी उद्देश से बोल्शेविक प्रतिनिधि ड्यूमा में शामिल हुए थे, उन्होंने स्पष्ट कह दिया था कि, हम ड्यूमा में धनी-समुदाय के पक्ष में क़ानून पास कराने के लिए नहीं जा रहे हैं, क्योंकि, उक्त क़ानून तो हरेक हालत में जनता के विरुद्ध होंगे। उन से हमारा कोई सरोकार नहीं। हम केवल ज़ार-डम और धनी-समुदाय के कामों पर निगाह रखने के लिए ड्यूमा में प्रवेश कर रहे हैं। दूसरी, तीसरी और चौथी ड्यूमा में, इसी उद्देश के साथ रह कर बोल्शेविकों ने समय समय पर स्वार्थी समुदायों की चालों को जनता पर प्रकट किया, ज़ार की सरकार की पोलों को खोला! इस के प्रमाण में, कम्यूनिटी ला, मज़दूरों के बीमा के क़ानून, प्रेस-क़ानून, न्याय-विभाग के क़ानून तथा ज़ेम्सटोव्स (ग्राम-पंचायत) सम्बन्धी क़ानूनों की रचना पर बोल्शेविक प्रतिनिधियों द्वारा दी गई वक्तृताओं से पता चलता है कि, वे अपने निश्चय पर दृढ़ और भावों के प्रचार में संलग्न थे।

सरकारी ऋण का प्रश्न जितनी बार ड्यूमा में पेश हुआ, बोल्शेविकों ने उसका यह कह कर विरोध किया कि, जनता का रुपया ज़ार के नौकरों की इच्छा पर कदापि न छोड़ा जाय! क्योंकि, जनता का यह धन जनता के विरुद्ध कामों में ही ख़र्च किया जायगा। इस रुपये से चोर, डाकुओं की संख्या बढ़ाई जायगी, पुलिस और ख़ुफ़िया का

(२२) बोल्शेविक सरकार का १०० रूबल का नोट

पोषण किया जायगा, और इस धन की ही सहायता से धनी समुदाय के लाभ के लिए क़ानून रचे जांयगे। इसी रुपये से सेना और अस्त्र-शस्त्र बढ़ाये जाँयगे, युद्ध लड़े जाँयगे, जो कि, जनता की हानि और धनी लोगों के लाभ के लिए होंगे।

क्रान्ति के बाद।

रूस की राज्यक्रान्ति के पश्चात् 'बोल्शेविकी' और 'मेन-शेविकी' समुदायों के बीच जो मतभेद उठा, वह निम्नलिखित प्रश्नों के सम्बन्ध में था:—

(१) भूमि का वितरण किस प्रकार किया जाय?

(२) युद्ध और संधि का प्रश्न किस प्रकार हल किया जाय?

(३) क्रान्ति के बाद रूस का शासन किस प्रकार का रक्खा जाय?

बोल्शेविकों का कहना था कि, देश की भूमि श्रमजीवियों और किसानों में बाँट दी जाय और व्यक्तिगत ज़मींदारियों का नामोनिशान मिटा दिया जाय। इस विभाजन का प्रबन्ध संगठित रूप में स्थायी ढङ्ग से निश्चित कर दिया जाय।

'मेनशेविकी' और धनी-समुदाय की तरफ़ मिल जाने वाले 'साम्यवादी' कहलाने वाले लोग पहिले तो इस मामले में बोल्शेविकों के साथ रहे, पर जब इन प्रश्न के कार्यरूप में परिणत करने का समय आया, तब वे अलग हो गये, और व्यक्तिगत सम्पत्ति की स्थापना का पक्ष समर्थन करने लगे! इस प्रश्न के सम्बन्ध में दोनों पक्षों में स्थान २ पर सशस्त्र मुठभेड़ें भी हुई! 'मेनशेविकी' समुदाय सदा से जनता को इसी प्रकार धोखा देता रहा और अपने वचनों

का उल्लंघन करता रहा। रूस की प्रथम प्रजातन्त्रीय 'अस्थायी सरकार' (Provisional Government) तक ने भूमि के बँटवारे का घोर विरोध किया और टाम्बाऊ (Tambov) ज़िले में सेना भेजकर आन्दोलन करने वाले किसानों के साथ मारकाट मचाई!

इसके साथ ही, मेनशेविकों और 'अस्थायी सरकार' के नेताओं ने किसानों से यह भी झूठा वादा किया कि प्रतिनिधि-सभा (Constituent Assembly) के सङ्गठन तक ठहरो, उसके बाद इस प्रश्न का फ़ैसला कर दिया जायगा। दिन, सप्ताह और महीनों के बाद महीने व्यतीत हो गये, परन्तु, किसानों को भूमि नहीं दी गई। धीरे २ 'प्रतिनिधि-सभा' का रूप सामने आया। इस सङ्गठन से प्रकट होगया कि, वह जनता की 'प्रतिनिधि-सभा' न होकर धनी-समुदाय और पूंजी वालों की सभा होगी। इसी 'प्रतिनिधि-सभा' के संगठन के लिए करेन्स्की की सरकार ने समस्त राष्ट्रीय संस्थाओं और स्वाधीन विचार वाले समाचार-पत्रों को नष्ट कर दिया था! करेन्स्की की सरकार धनी लोगों की समर्थक हो गई थी। उसने सैनिकों को सीमान्त पर युद्ध लड़ते रहने और न लड़ने पर प्राण-दण्ड देने के नियम घोषित किये। हज़ारों मज़दूरों को क़ैद में डाल दिया। इस स्थिति में, 'प्रतिनिधि-सभा' में जनता के प्रतिनिधि प्रवेश ही किस प्रकार कर सकते थे। वहाँ तो धनी-समुदाय की तूती बोलने वाली थी!

* * * * * *

इस प्रकार, जब जनता ने देखा कि, करेन्स्की की सरकार तथा धनी-समुदाय के पक्ष में रहने वाले साम्यवादियों की चालें इस प्रकार की हैं, और वे हमें बराबर धोखा दे रहे

हैं, तब, जनता ने बड़े विकट साहस के साथ "नवम्बर की क्रान्ति" की रचना रची। इस क्रान्ति ने ही जनता के हाथों में शक्ति और संगठन को सौंप दिया। इस "अन्त-र्क्रान्ति" ने रूस में श्रमजीवियों और किसानों को उनकी असली सत्ता दी, और उन्होंने पंचायत-शासन की रचना कर के अपनी भूमि पर अपना क़ब्ज़ा कर लिया और सच्ची स्वाधीनता प्राप्त कर ली।

बोल्शेविक लोग आरम्भ से ही भूमि वितरण के लिए आन्दोलन उठाये हुए थे। इस "नवम्बर की क्रान्ति" के पूर्व ही बोल्शेविकों ने किसानों से 'सोवियट' (Soviet) अर्थात् अपनी पंचायतें स्थापित करने तथा भूमि पर अधिकार कर लेने के लिए कह दिया था, वैसा ही हुआ भी। किसानों ने अपनी भूमि पर कब्ज़ा जमा कर देश की उपज को उन्नत किया। अस्थायी सरकार के 'सशस्त्र विरोध' का सामना किया, और उन सैनिकों के लिए अन्न की रक्षा की, जो सीमान्त पर बिना रोटियों के लड़ रहे थे।

क्रान्ति के बाद, बोल्शेविकों ने यह आवश्यक समझा कि, श्रमजीवियों और किसानों के हाथों में सत्ता सौंपने के लिए ग्रामों और नगरों के निवासियों में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित किया जाय। बिना इस एकता के स्थापित किये, धनी-समुदाय को नीचा दिखाना भी असम्भव था। फिर एक खास बात यह थी कि, बिना अमीरों के धन पर क़ब्ज़ा किये हुए, भूमि के पाने से ही क्या हो सकता था। बिना धन के भूमि में बोने के लिए बीज और खेत जोतने के लिए पशु तक नहीं मिल सकते थे। इसी लिए भूमि रेलवे, बैंक और मिल-फैक्टरियों पर क़ब्ज़ा जमाने के लिए श्रमजीवियों और किसानों में एकता

और संगठन की ज़रूरत समझी गई। इस के बिना सार्वजनिक दरिद्रता दूर नहीं हो सकती थी।

बोल्शेविक सत्ता के स्थापित होते ही उपर्युक्त प्रबन्ध आरम्भ किया गया। भूमि, मिल्स, फैक्ट्रीज़, बैंक और खाने राष्ट्रीय सम्पत्ति बनाई गईं। राष्ट्रीकरण 'साम्यवाद' की स्थापना की पहिली सीढ़ी थी। इसके द्वारा ही बोल्शेविकों ने समस्त संसार भर यह प्रकट कर दिया कि, देखो हमने साम्यवाद के वृक्ष को खड़ा किया है, संसार भर के श्रमजीवी लोग इस वृक्ष को सींचे!

बोल्शेविकों को यह पूर्ण विश्वास है कि, श्रमजीवियों और किसानों की 'सरकारें' संसार भर में स्थापित होजाँयगी।

'मेनशेविकी' और धनी-समुदाय वालों ने क्रान्ति के पहिले भूमि के राष्ट्रीकरण का वचन दिया था, परन्तु, 'प्रतिनिधि-सभा' में वे अधिक संख्या में घुस गये, और उनकी वहु संख्या के रहने का पहिले से ही प्रबन्ध किया गया था। इस प्रकार प्रतिनिधि-सभा में पहुंचकर इन्होंने अपना वादा तोड़ दिया। उन्होंने अपनी आरम्भिक प्रतिनिधि-सभा में यह क़ानून पास कर लिया कि, व्यक्ति-गत सम्पत्ति बनी रहे और भूमि के पट्टे भी अक्षत रहें! इस प्रकार धनी लोगों के कब्ज़े में फिर भी भूमि बनी रही।

यही कारण था, जिससे बोल्शेविकों ने करेन्स्की की सत्ता को तोड़ कर श्रमजीवियों तथा किसानों की सत्ता स्थापित की और विशुद्ध साम्यवाद की रूस में स्थापना कर दी।

युद्ध के सम्बन्ध में बोल्शेविकों की यह निश्चित सम्मति थी कि, युद्ध केवल धनी-समुदाय के लाभ के लिए लड़े जा

रहे हैं। समस्त सम्पत्तिवादी देश नये बाज़ारों, कच्चे माल की प्राप्ति और नये लाभ के लिए यह युद्ध छेड़े हुए हैं। श्रमजीवियों के लिए युद्ध लाभ-प्रद तो हो ही नहीं सकता, उल्टा नाशकारक है। इसी लिए, बोल्शेविकों ने युद्ध बन्द कर देने के लिए एक स्वर से घोर विरोध आरम्भ किया। संसार भर से युद्ध उठा देने के लिए बोल्शेविकों ने प्रयत्न किया। इसी लिए, बोल्शेविकों ने गुप्त संधियों को प्रकट कर के संसार के धनी-समुदाय के स्वार्थों को प्रकट कर दिया। बोल्शेविकों का कहना यह था कि, संसार भर के पूंजी वाले झूठमूठ ही संसार की स्थायी शान्ति का ढकोसला रच रहे हैं, और संसार की जनता को धोखा दे रहे हैं। करेन्स्की की सरकार भी इसी लिए उन गुप्त व्यापारिक और भौमिक शर्तों को प्रकट करना नहीं चाहती थी! ज़ार ने इङ्गलैंड और फ्रांस के साथ कुस्तुनतुनियां, आरमीनिया और गैलेशिया हड़प कर लेने के लिए ये गुप्त सन्धियां की थीं। करेन्स्की की सरकार ने भी इन सन्धियों का स्पष्ट रूप से समर्थन किया था। अब चूंकि, शासन की सत्ता श्रमजीवियों के हाथों में आगई, इसलिए, उन्होंने उन गुप्त सधियों को संसार पर प्रकट कर दिया।

इसी सिद्धान्त पर बोल्शेविकों ने जर्मनी और आस्ट्रिया में भी सन्धि का आन्दोलन उठाया। वहां के श्रमजीवियों पर असलियत प्रकट कर दी! आस्ट्रिया और जर्मनी की क्रान्तियां इसी आन्दोलन की फल स्वरूप थीं। परन्तु, दूसरी तरफ 'मेनशेविकी' लोग युद्ध को केवल इस आधार पर चलाते रहे रहे थे कि, 'वह बन्द ही नहीं किया जा सकता था!' केवल इस आधार पर रूसी सेना रणक्षेत्रों में कटवाई गई!

अब शासन की बात आती है। रूस के सभी समुदाय प्रजातन्त्र की स्थापना के पक्ष में थे। यहां तक कि, वे जमींदार और पूंजी वाले भी, जो ज़ार की सरकार की पीठ ठोंका करते थे, अब, प्रजातन्त्र के पक्ष में थे। परन्तु, भीतरी चाल यही थी कि, प्रजातन्त्र धीरे २ फिर 'ज़ारडम' के रूप में परिणत कर दिया जाय। ऐसे प्रजातन्त्र के उदाहरण संसार में बहुत मिलते हैं। रूसी जनता निरंकुश सत्ता को फिर से स्थान नहीं देना चाहती थी। वह अपने शत्रु स्वरूप ऐसे अधिकारी-तन्त्र, सेना, पुलिस और गारदों की रचना नहीं करना चाहती थी, जो बिना लोक-मत के उच्च पदों पर बिठला दिये जाँय और फिर पीछे से निरंकुश शासक बन कर धनी-समुदाय का समर्थन करें। बोल्शेविकों ने इसी लिए ऐसे प्रजातत्र की स्थापना की, जिस में पुलिस और सेना हाकिम बन कर न रहे। उन्होंने एक दूसरे प्रकार का ही प्रजातंत्र स्थापित किया, जिस में छोटे ओहदे और बड़े से बड़े पद के लोग निर्वाचन द्वारा ही नियुक्त किये जाते हैं। चूं कि श्रमजीवी और किसान ही जनता का रूप धारण किये हुए हैं, अतः सत्ता उन के ही हाथों में रहनी चाहिए, केवल यह सिद्धान्त काम करने लगा।

श्रमजीवियों की पंचायतों की रचना साम्यवादिनी संस्थाओं के रूप में इसी लिए की गई, जिस से पुराने धनी-समुदाय की सत्ता फिर से स्थापित न हो सके। सोवियट (पंचायत) की यह सत्ता संसार भर के सम्पत्तिवादियों के नाश तथा मनुष्य के ऊपर होने वाले मनुष्य के शासन के नाश का दावा करती है।

मोशिये लेनिन ने एक बोल्शेविक की निम्न-लिखित परि-भाषा की है:—

"बोल्शेविक एक ऐसा साम्यवादी प्राणी है, जो क्रान्ति द्वारा संसार की समस्त अच्छी वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा रखता है, और उस काम को कल के लिए कभी नहीं छोड़ देता, जो आज ही किया जा सकता है।"

बोल्शेविक महासंग्राम !

पिछले अध्याय को पढ़कर भी पाठक यह न समझ पाये होंगे कि, आख़िर यह है कौन सी बला, जो संसार भर में जादू की तरह काम कर रही है ! इस जादू ने रूस को अपने वश में किया। दक्षिणी रूस में जब ज़ेचोस्लावक और फ्रांसीसी सेनायें युद्ध करने के लिए भेजी गईं, तो, उन्हों ने बोल्शेविक सिद्धान्तों को पढ़ कर युद्ध करना बन्द कर दिया। ऐसा ही हाल तब हुआ, जब, पश्चिमोत्तर रूस अर्थात् बाल्टिक प्रान्तों में ब्रिटिश सेनायें रक्षा का (Defensive) युद्ध करने के लिए पहुंची। वहाँ पर भी, बोल्शेविक सरकार ने लाखों पैम्फ्लेट छाप कर ब्रिटिश सैनिकों में बँटवाये। इंगलैंड का मज़दूर-दल न मालूम क्यों, रूस के विरुद्ध युद्ध लड़ने के ख़िलाफ़ हो गया ! अन्त में, इंगलैंड को अपनी सेनायें वापस बुला लेनी पड़ीं। जो बाल्टिक प्रान्त बोल्शेविक सरकार के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे, और जिन्हों ने स्थूनियाँ, लिवोनियाँ, कोरलैंड, लेटलैंड, फिनलैण्ड आदि में स्वतंत्र रियासतें स्थापित कर ली थीं, वे भी अब बोल्शेविकों से संधि कर रहे हैं। स्थूनियाँ ने तो सन्धि कर भी ली है ! इन समस्त रियासतों को जोड़-बटोर कर मित्र-राष्ट्रों ने एक सैनिक संगठन किया था और इन्ही की ओर से बोल्शेविकों के साथ लड़ाई भी छेड़ी थी। इन रियासतों के पंचायती सेनापति जन० यूडनिच थे, पर बोल्शेविज़्म का जादू इन की सेना के सिर पर भी चढ़ कर बोला ! सेनाओं ने क्रान्ति कर दी और इस

प्रकार रचा-रचाया स्वांग मिट्टी में मिल गया ! जन० यूडनिच को बोल्शेविकों ने गिरफ़्तार कर लिया है।—उधर दक्षिणी रूस में मित्रों की सहायता पाकर, जनरल डेनकिन नामक एक सेनापति 'ज़ारडम' को पुनः स्थापित करने के लिए उठ खड़ा हुआ था। जिस समय बोल्शेविक सरकार सैनिक बल की दृष्टि से कमज़ोर थी, डेनकिन ने उडेसा तथा कीव प्रान्त में आधिपत्य जमा लिया था। मित्र-राष्ट्रों की तरफ़ से उसे, धन और गोला-बारूद से बहुत बड़ी सहायता मिली थी, इस शर्त पर कि, वह इस सहायता को ऋण की तरह अदा कर देगा। पर, गत नवम्बर, दिसम्बर (१९१९) तथा जनवरी मास (१९२०) में बोल्शेविकों ने कीव और उडेसा प्रान्तों पर अपना आधिपत्य जमा लिया ! जन० डेनकिन की सेनायें चकनाचूर हो कर क्रीमिया की तरफ़ भाग गईं ! इस प्रकार दक्षिणी रूस भी बोल्शेविक शासन के अन्दर आ गया। पूर्वीय रूस (साइबेरिया) में इसी प्रकार के उद्देश लेकर एडमिरल कोल्चक खड़े हुए थे। उन्हें भी मित्र-राष्ट्रों ने खासी सहायता दी थी। उन्हों ने कई महीने तक लम्बे-चौड़े डग बढ़ाये। पर दक्षिणी रूस को विजय कर के बोल्शेविक सेनायें पूर्व की ओर लपकीं। इस के साथ २ हम यह भी कहेंगे कि, बोल्शे-विक सेनायें युद्ध लडने के अतिरिक्त अपने प्रचार-कार्य में भी संलग्न रहीं। उन्हों ने दक्षिणी रूस की जनता को बोल्शे-विक दीक्षा दी और उसी प्रकार साइबेरिया के मजदूरों और किसानों में भी बोल्शेविक सिद्धान्तों का प्रचार किया। कोल्चक की सेनायें बाग़ी हो गईं। मध्य साइबेरिया का प्रसिद्ध नगर इर्कुटस्क भी बोल्शेविकों के क़ब्ज़े में आ गया। अन्त में, एड-

मिरल कोल्चक की सेनाओं ने ही अपने सेनापति को गिर-फ़्तार कर के बोल्शेविक सरकार के हाथों में सौंप दिया। इर्कुट्स्क में एक सामाजिक क्रान्ति भी सफल रूप में संघटित हुई। उस क्रान्ति के नेताओं ने एडमिरल कोल्चक को गोली से मार दिया। इस समय बोल्शेविक सेनायें साइबेरिया के पूर्वीय किनारे पर ब्लेडीवस्टक को घेरे पड़ी हैं। ब्लेडीवस्टक में जापानी सेनायें बोल्शेविकों से लड़ने के लिए उतर पड़ी पड़ी हैं। पर, आये हुए समाचारों से पता चलता है कि, जापानी सेनायें घिर गई हैं, और उधर, कोरिया के निवासियों ने बोल्शेविकों से मिल कर जापान की सत्ता के विरुद्ध युद्ध उठाया है! बोल्शेविकों ने उन्हें हथियारों और गोला-बारूद दे कर और भी दृढ़ बना दिया है। इधर पूर्व-दक्षिण में, अफ़गानिस्तान तथा फारस के उत्तर में भी बोल्शेविक जादू काम कर रहा है। काकेशस रियासत में बोल्शेविक शासन स्थापित हो चुका है। ताशकन्द में बोल्शेविज़्म का स्वागत हुआ है। 'रूटर' के एक तार से यह भी पता चला है कि, अफ़गानिस्तान के अमीर ने बोल्शेविक सरकार से मित्रता जोड़ ली है। दोनों के बीच में डेपूटेशन आते-जाते हैं। ताशकंद में एक ऐसा विद्यालय खोला गया है, जिस में कई सौ रूसियों को सिर्फ़ इस बात की शिक्षा दी जा रही है कि, चीन, फारस अफ़गानिस्तान तथा हिन्दुस्तान में बोल्शेविज़्म किस प्रकार से फैलाया जाय! इसी लिए, ब्रिटिश सरकार ने सीमान्त पर ब्रिटिश सेना की वृद्धि की है और गत सप्ताह समाचार-पत्रों ने यह भी छापा था कि, इङ्गलैंड से दो 'टैंक' (Tank = लोहे का चलता-फिरता तोपदार छोटा क़िला) भारत के लिए भेजे गये हैं। निश्चय ही ये टैंक

सीमान्त की रक्षा के समय काम में लाये जायँगे। इस प्रकार यह भी विदित होता है कि, बोल्शेविक सेनायें भारत की ओर कुदृष्टि रखती हैं। अस्तु, यह भविष्य की बात है, जो कुछ होगा, देखा जायगा।

अब हम यूरोपीय रूस के उत्तरी भाग की ओर चलते हैं। वहाँ भी 'बड़े रूसी' बोल्शेविकों के विरुद्ध युद्ध छेड़े हुए हैं पर बोल्शेविज़्म का जादू वहाँ भी काम कर रहा है। उत्तरी रूस की जनता भी बोल्शेविक सिद्धान्तों की क़ायल हो चली है।

* * * * *

इस समय बोल्शेविकों के विरुद्ध फिर मित्र-राष्ट्रों ने कमर कसी है। यद्यपि मि० लायड जार्ज ने अपनी दो वक्तृताओं में यह स्वीकार किया है कि, बोल्शेविकों के साथ हथियारों से पार पाना असम्भव है, पर तो भी, काले समुद्र में मित्र-राष्ट्रों के जहाज घूम रहे हैं। जब बोल्शेविकों ने द० रूस के उडेसा नगर पर क़ब्ज़ा किया था, तब इन जहाजों ने भीषण अग्नि-वृष्टि की थी। पर इसका कुछ भी फल नहीं हुआ। हंगरी में बोल्शेविज़्म का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। एक ख़बर यह भी थी कि, पौलेंड पर बोल्शेविक सेनायें आक्रमण करेंगी, इस लिए मित्र-राष्ट्रों ने पोलेंड में अपनी सेनाओं को सरक्षा का (Defensive) युद्ध लड़ने के लिए भेजना विचारा था। पर एक सप्ताह के बाद ही यह समाचार आया कि, बोल्शेविक सरकार ने एक नई चाल खेल डाली है ! उसने पोलैंड की स्वतन्त्रता स्वीकार करते हुए उससे सन्धि कर लेने की बात-चीत छेड़ी है। एक तरफ सन्धि की

शर्तें रची जा रही हैं, दूसरी तरफ पोलैंड की सेना तक में बोल्शेविज़्म का प्रवाह वह चला है। फरवरी के प्रथम सप्ताह में यह समाचार भी आया था कि, पोलैंड की कुछ सेनाओं ने क्रान्ति मचा दी और अपने अफसरों को मार कर वे बोल्शेविकों से मिल गईं।

बोल्शेविज्म के सिद्धान्त।

सभ्यता और बुद्धि के विकास के साथ २ संसार में एक विषम रोग भी उत्पन्न हो गया है। इस को हम 'व्यक्तिगत' अथवा 'समूह-गत' स्वार्थ के नाम से पुकार सकते हैं। असभ्यता और अशिक्षा की अवस्था में व्यक्तिगत ऊँचाई और निचाई का अस्तित्व बहुत ही कम मात्रा में अर्थात् सह्य होता है। परन्तु, शिक्षित और सभ्य लोगों में, वैसी समता नहीं दिखलाई पड़ती। शिक्षा और सभ्यता मनुष्य को व्यक्तिगत स्वार्थों की ओर अत्यन्त आकर्षण के साथ खींचती रहती है। फिर, ऐसी अवस्था में स्वार्थों की की कोई परिधि भी नहीं होती। निरन्तर उन की अभिवृद्धि ही होती जाती है। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि, मनुष्य या समाज कोरी समता के लिए अज्ञानावस्था या जङ्गलीपन की हालत में ही बने रहें। ऐसा हो भी तो नहीं सकता। समूह सहयोग को जन्म देते हैं। सहयोग ही सभ्यता और ज्ञान का विकास करता है। विकास की गति बिल्कुल रोकी भी नहीं जा सकती। इस लिए, सभ्य और सज्ञान अवस्था में भी मनुष्यों के बीच में सम व्यवहार रहे, इसका क्या उपाय है ?

* * * * * *

सत्रहवीं शताब्दि के पहिले संसार में धनी और ग़रीबों में इतनी विषमता नहीं थी, जितनी कि, अब है। यद्यपि, सृष्टि के आरम्भ से धन की सत्ता से उत्पन्न हुई विषमता का राज्य छाया हुआ है, पर उसकी कटुता और असहनीयता

का गत दो शताब्दियों में जो विकास हुआ है, वह पहिले इस रूप में नहीं था। जब से, औद्योगिक ससार में मेशीनों और कल-कारखानों ने जन्म लिया, तभी से इन कटु स्वार्थों ने जन्म पाया। पहिले किसी वस्तु के निम्मीण करने वाले लोग धनियों के हाथों की गुट नहीं थे। पर,जब से कल-कारखानों ने जन्म लिया, पूंजी वालों ने बहुत बड़ी संख्या में आदमियों को नौकर रखकर अपने व्यक्तिगत लाभों के लिए सङ्गठित उद्योग और व्यापार आरम्भ किया, तभी से विषमता में कटुता का अश बढ़ने लगा। पूंजी वालो में कम दाम देकर अधिक परिश्रम कराने का भाव ज़ोर पकड़ने लगा। हस्त-कौशल का युग बीत चुका था, अतः स्वतन्त्र रहकर काम करने वाले कारीगर मज़दूर बन गये। मालिकों के हाथ में उनकी नकेल आ गई। उन्होंने जैसा नाच नचाया, नाचना पड़ा। व्यापार की दृष्टि से भूमि मोल लेने वाले ज़मींदारों ने भी इसी प्रकार का व्यवहार किसानों के साथ करना आरम्भ कर दिया। फुटकर कारीगरी और खेती की कमी के कारण लोगों को विवश होकर मिलों और फैक्टरियों में काम करना पड़ा। अन्त में इस विषम व्यवहार का फल यह हुआ कि, समाज मे कुछ लोग तो, अत्यन्त अमीर होते गये, शेष जनता घोर दरिद्रता का शिकार बन गई। किसान लगान और अबवाब देते २ फ़कीर हो गये। उन्हें भर-पेट मोटा-झोटा अन्न मिलना भी दुस्साध्य हो गया, और उधर मिलों में १४। १४ घंटे काम काम करने के बाद मज़दूरों को जो मेहताना मिला उससे उन बेचारों का भी पेट न भरा। अमीर और ग़रीब का प्रश्न निरन्तर ज़ोर पकड़ता गया। अमीर प्रभु समझे गये। और, ग़रीब दास। प्रभुओं की मर्जी पर दासों का खाना-

पीना, और मरना-जीना निर्भर हो गया। ग़रीबी के कारण, मजदूरों को अपनी स्त्रियों और बच्चों को भी अपने साथ मिलों और फैक्टरियों में ले जाना पड़ा। स्त्रियों और लड़कों से भी १०।१० और १२।१२ घण्टे काम लिया गया। सुस्त पड़ने या औंघाने पर कोड़ों और गरम पानी की मार और बौछार से मनुष्यों की ठठरियों से काम कराया गया! बीमार पड़ने या अपाहिज हो जाने पर टूटे हुए औजार की तरह मजदूर मिलों के बाहर फेंक दिये गये, उन के स्थान पर दूसरे आदमी भर्ती कर लिये गये। न उन की दवा-दारू की चिन्ता की गई, और न उन के मरने-जीने पर उन के कुटुम्बो का पालन। यहाँ तक कि, उन की सन्तान को, मूर्ख और बुद्ध बनाये रखने के लिए शिक्षा तक नहीं दी गई। इस प्रकार हस्त-कौशल और शिक्षा की कमी के कारण ससार में दरिद्र जनता की निरन्तर वृद्धि होने लगी। इधर ग़रीबों के परिश्रम से मुनाफ़ा उठाने वाले अरबपति और करोड़पति लोग मोटरों एवं बग्घियों पर घूमने लगे, और उधर आधे पेट रह कर घोर परिश्रम करने वाली जीर्ण ठठरियाँ बैसाखियों पर! वर्तमान सामाजिक असन्तोष का जन्म इसी अवस्था के कारण हुआ है।

ग़रीबों ने अमीरों के विरुद्ध, अकुलीनों ने कुलीनों के विरुद्ध और मज़दूरों ने पूंजी वालों के विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी। शताब्दियों से यह घोर संग्राम चला आ रहा है, पर अभी तक विषमता का अन्त नहीं हो पाया है।

इस संग्राम में बहुत दिनों तक पूंजी वालों की निरन्तर विजय होती रही। सरकारें उन के हाथों की कठपुतलियां थीं, उन्हों ने जिधर घुमाया, घूम गईं। मज़दूरों को ऊपर न

उठने देने के लिए तरह २ के अत्याचारी क़ानून रचे गये। शासन में उन्हें न घुसने देने के लिए, वोटर्स केवल वे ही नियत किये गये, जो धनी थे। इस प्रकार कटुता निरन्तर बढ़ती ही गई। मज़दूरों ने भी अपना संगठन किया। और इस प्रकार जो कुछ किया, मिल कर किया। धीरे२ मज़दूरों में भी कुछ बल आया। उधर समाज में सभी क्रूर और स्वार्थी नहीं थे। ग़रीबों की ग़रीबी मिटाने के उपाय सोचे जाने लगे। अन्त में, बड़े २ विद्वानों ने सम्मति दी कि, पूंजी वाले कुछ भी परिश्रम नहीं करते, केवल पूंजी लगाकर ही दूसरों से परिश्रम कराकर अनुचित लाभ उठाते हैं। उन्हें चाहिए कि, अपने अथाह लाभ का उचित भाग मज़दूरों को दें। उनके लड़के-बच्चों को पढ़ावें-लिखावें, और उनकी दवा-दारू तथा रहने-सहने का प्रबन्ध करें। भला, अपनी पूंजी में से धनी लोग मजदूरों को क्यों हिस्सा देने लगे?

बस, इस विवाद ने साम्यवाद को जन्म दिया। साम्यवाद के भी कई रूप निकाले गये। किसी ने कहा कि, समाज के सदस्यों (व्यक्तियों) में समानता लाने के लिए देश भर का धन बराबर २ बाँट दिया जाय। किसी ने कहा है कि, मिलों, रेलों, खानों और घर-मकानों तथा अन्य अनेक सार्वजनिक उपयोग की चीज़ों पर राष्ट्रीय अधिकार स्थापित कर दिया जाय। देश का प्रत्येक व्यक्ति उन वस्तुओं को समान रूप से काम में ला सके। सिद्धान्त बड़े २ निकले, पर काम कहीं नही आरम्भ हुआ। अब भी वहीं विषमता फैल रही है। उस का विरोध भी हो रहा है। समवाय-वाद को जन्म दे कर मज़दूरों ने एक नया ढंग सोचा है। वह यह कि, यदि एक मिल का मज़दूर-दल हड़ताल कर दे, तो अन्य मिल वाले भी

(२३) बोल्शेविज़्म का आ-
चार्य मो० लेनिन।

उस की सहायता और समर्थन के स्वरूप हड़ताल कर दें। हड़ताल का यह भीषण रूप अधिकारियों और पूंजी-वालों पर जबर्दस्त प्रभाव डालता है। और, इसी भय के कारण यूरोप के बहुतेरे देशों में मज़दूरों की सत्ता स्वीकार की जाने लगी है, और शासन में भी उनका प्रतिनिधित्व स्वीकार किया जाने लगा है। अब पार्लमेंटों में उनके प्रतिनिधि बैठने दिये जाते है। पर, पूजी वालों की अभी वैसी ही चलता है, जैसी कि, पहिले थी। अब भी वे अपने बाजार बनाने और कच्चा माल लाने के लिए भीषण सग्राम छेड़ देते हैं। उनका हाथ पकड़ने वाला कोई नहीं, उनका मुँह थामने वाला कोई नहीं। वे स्वयं सरकार हैं, और सरकारें उन्हीं से बनी हैं। फिर भला ग़रीबों की सुने, तो, कौन?

* * * * *

रूस की निरंकुश शासन-प्रणाली इस स्थिति को और अधिक कटु बनाये हुए थी। वहाँ पर जमींदारों के विकट अत्याचारों के कारण किसानों में त्राहि २ मची हुई थी। १८६४ से रूस में भी साम्यवादिनी क्रान्तियां सघटित होने लगीं। 'निहिलिज़्म' की भी इसी के कारण उत्पत्ति हुई थी। रूस में, शासन-प्रणाली के निरंकुश होने और ज़ार के घोर अनर्थों के करने के कारण, साम्यवादी तो उत्पन्न हुए ही, पर साथ ही वे क्रान्तिकारी भी हुए, जो प्रजातन्त्र स्थापित कर के ज़ार की हत्या में ही अपना गौरव समझते थे।

पिछले अध्यायों में इन आन्दोलनों और कार्यों का विस्तृत वर्णन किया जा चुका है। ज़ारों ने जनता पर किस किस प्रकार के अत्याचार किये, यह भी दिखलाया जा चुका है। अन्त में ज़ार किस प्रकार राजा से रंक बनाये गये और

साइबेरिया में एक राजनैतिक क़ैदी की भाँति क़ैद कर के मार डाले गये, यह भी पाठक जानते हैं।

अब हम अपना विषय उस समय से उठाते हैं, जब से रूस के प्रजातंत्र की बागडोर मोशिये लेनिन और मोशिये ट्राटस्की के हाथों में आई, तब से, रूस ने ही नहीं, वरन् समस्त संसार ने सर्व प्रथम साम्यवाद को व्यावहारिक रूप में देखा। साम्यवाद की एक शाखा है समष्टिवाद (Communism)। समष्टिवादियों का कहना है कि, देश में वर्तमान ढंग की सरकारों और शासनों की आवश्यकता नहीं है। एक एक स्थान पर कुछ गोष्ठियाँ (Communes) बना दी जाँय, ये गोष्ठियाँ परस्पर में काम बाँट कर एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति किया करें। भूमि के स्वामी किसान रहें, फैक्टरियों के स्वामी मज़दूर। राष्ट्रीय सरकार सब को बराबर वेतन दे या खाना-कपड़ा मुहय्या कर दिया करे। देश के समस्त धन, भूमि, मकान, रेल, तार, खान, व्यापार, उद्योग तथा परिश्रम पर राष्ट्रीय अधिकार रहे।

बोल्शेविक सरकार ने भी इस सिद्धान्त को शुद्ध ढंग से व्यावहारिक रूप दिया।

किसानों को भूमि बाँट दी गई। एक किसान जितनी भूमि जोत-बो सकता है, उतनी भूमि का वह स्वामी बना दिया गया। अब न तो ज़मींदार रहे और न अनाज के व्यापारी। किसान अपनी भूमि जोत-बो लेता है। उसकी पैदावार राष्ट्र की सम्पत्ति है। उसी में से राष्ट्रीय सरकार किसानों का भी पालन-पोषण करती है, और उसी से अन्य प्रकार के काम करने वाले लोगों का भी पेट पलता है।

इसी प्रकार मिलों और फैकृरियों में भी प्रबन्ध हो रहा है। गत फरवरी मास में, मास्को में जो "बोल्शेविक औद्योगिक कान्फ्रेंस" हुई थी, उसमें, मो० लेनिन तथा मो० ट्राट्स्की ने साफ़ २ कह दिया है कि, कल-कारखाने अब से व्यक्तिगत अथवा कम्पनियों की सम्पत्ति नहीं रहे। अब से उन पर राष्ट्रीय सरकार का अधिकार रहेगा। मजदूरों की सेनायें बनाई जॉयगी। उन से सरकार मनमाना काम लेगी, जिस मिल या फैकृरी में काम कराना चाहेगी, वहाँ उन्हें भेज कर राष्ट्र के लिए काम करावेगी। अब से मजदूरों के श्रम पर राष्ट्र का अधिकार माना जायगा। इस के साथ ही, जैसा भोजन अन्य लोगा को मिलेगा, वैसा ही भोजन मज़दूरों को भी मिलेगा। जो वेतन राष्ट्र के एक सदस्य (एक व्यक्ति) के भाग में पड़ेगा, वही वेतन मज़दूरों को भी मिलेगा। मतलब यह कि, राष्ट्र को जो कुछ जुड़ेगा, उसे वह सब व्यक्तियों में समान रूप से बाँट देगा। अगर देश का एक व्यक्ति मोटा-झोटा खायगा, तो देश के सभी व्यक्तियों को वैसा ही खाना पड़ेगा। अगर एक व्यक्ति गाढ़ा-गजी पहिनेगा, तो देश के समस्त व्यक्तियों के हिस्से में भी वैसा ही कपड़ा पड़ेगा। मकानों का क़िराया केवल उतना ही लिया जायगा, जितना उसकी मरम्मत के लिए काफी समझा जायगा। छोटे २ बच्चों को राष्ट्रीय सरकार दूध और रोटी खाने के लिए मुहैय्या करेगी। राष्ट्र के समस्त पढ़ने योग्य बालकों को उच्च से उच्च शिक्षा मुफ़्त दी जायगी। न तो सिफ़ारिशें चलेंगी और न पक्षपात।

सेनाओं के संगठन में भी ऐसी ही विशेषता रक्खी गई है। सैनिकों के वेतन, जुर्माने, दण्ड तथा कार्य का उत्तर-

दायित्व उन्हीं की स्वयं-निर्मित कमेटियों पर छोड़ दिया गया है। उनकी ही सलाह से उनके अफ़सर चुने जाते हैं। उनकी सलाह से ही आक्रमण और युद्ध की बातें तय की जाती हैं। साथ ही, उनके प्रतिनिधि भी शासन-सभाओं में रखे जाते हैं।

इसी प्रकार व्यापार भी राष्ट्रीय सरकार के लिए हुआ करेगा। व्यापार के लाभ पर राष्ट्रीय सरकार का अधिकार रहेगा। व्यक्तिगत हानि-लाभ का झगड़ा ही न रहेगा। दूकानदारों के परिश्रम और कार्य-क्षमता पर भी राष्ट्रीय सरकार का अधिकार रहेगा। वे भी राष्ट्र के सदस्य क़रार दिये जाँयगे। उन्हें भी वैसा ही भोजन, कपड़ा और वेतन दिया जायगा, जैसा कि अन्य श्रमजीवियों को। अर्थात्, देश में कोई भी व्यक्ति निरुद्यम न रहने दिया जायगा, और सबका भरण-पोषण राष्ट्रीय सरकार करेगी। इस प्रकार समस्त देश श्रमजीवी हो जायगा, जिसके अर्थ लगाये जाते हैं कि, देश में खाने-पीने और पहिरने ओढ़ने की कमी न रह जायगी। साथ ही, सब को सब वस्तुयें बराबर भागों में मिल जाया करेंगी। स्त्रियों और पुरुषों में कोई भेद-भाव न रहेगा, राष्ट्रीय सम्पत्ति में राष्ट्रीय सरकार में, राष्ट्रीय वस्तुओं में, दोनों का समान भाग माना जायगा।

संक्षेप में बोल्शेविज़म के ये ही सिद्धान्त हैं।

पंचायती प्रजा-तन्त्र ।

रूस में इस समय (Soviets) यानी पचायतों द्वारा शासन-कार्य किया जाता है। इन पंचायतों की रचना पूर्ण लोकसत्तात्मक बतलाई जाती है, और रूसी लेखकों का कहना है कि, संसार का कोई भी प्रजातंत्र रूसी शासन की लोकसत्तात्मक व्यवस्था का सामना नहीं कर सकता।

पाठक यह जानते हैं कि, रूस की राज्यक्रान्ति के दो मुख्य कारण थे। एक तो ज़ार का अत्याचार-पूर्ण शासन, और दूसरा ज़मींदारों और पूँजीवालों का स्वार्थपूर्ण वर्ताव। राज्यक्रान्ति के बाद जार के अस्तित्व का लोप हो चुका था। क्रांति का एक उद्देश अपूर्ण रह गया था। प्रजातंत्र अस्थायी सरकार (Provisional Government) के शुभ राज्य में भी अमीर ग़रीबों के परिश्रम से अनुचित लाभ उठाते थे, और ज़मींदार किसानों का रक्त चूसते थे। यही प्रश्न था, जिस के कारण रूसी जनता ने करेन्स्की की सरकार की कुटिल नीति को ठुकरा कर लेनिन को अपना नेता बनाया। उस ने सोचा कि, ग़रीब जनता पर अमीरों और ज़मींदारों का क्रूर शासन बना ही रहा, तो फिर क्रान्ति से फल ही क्या निकला? लेनिन ने शासन की बागडोर हाथ में लेते ही यह घोषणा कर दी कि, "किसान ज़मींदारों से भूमि छीन लें और मजदूर मिलों के मालिक बन जाँय।" इस घोषणा को सुन कर किसानों और मजदूरों की छोटी-मोटी संस्थाओं की सत्ता एक दम से ऊपर आ गई। उसे भूमि और सम्पत्ति के विभाजन का उत्तर-

दायित्व प्राप्त हो गया। पहिले जो किसान-सभायें और मज़दूर-सभायें दबी हुई आवाज़ में अपना रोना रोया करती थीं, वे ही अपने २ स्थानों की प्रधान पंचायतें (Soviets) बन गईं। उस घोर अशान्तिमयी स्थिति के बीच इन ग्राम-पंचायतों ने देशद्रोहियों और शत्रुओं के प्रभाव से सर्व-साधारण की अच्छी रक्षा की। इन संस्थाओं ने ज़मींदारों से अन्न छीन कर सर्वसाधारण का पालन-पोषण किया। जिस समय बोल्शेविक सरकार चारों तरफ़ से घिरी हुई, भयंकर विपत्तियों का सामना कर रही थी, उस समय प्रजा की इन पंचायतों ने भीतरी शान्ति की प्रसंशनीय रक्षा की। इसी कारण से, इन पचायतों के हाथ में कुछ राजनैतिक अधिकार भी दिये गये। इस प्रकार की पंचायतें तीन सम्प्रदायों ने बनाईं। मज़दूरों ने अपने औद्योगिक नगरों में, किसानों ने अपने ग्रामों में और सैनिकों ने अपनी २ सेनाओं में।

हमारे पाठक पढ़ आये है कि, बोल्शेविक सरकार देश में ज़मींदारों और पूँजीवालों का नाम तक नहीं रखना चाहती थी, इसी लिए किसानों और मज़दूरों तथा अन्य सभी प्रकार के श्रम-जीवियों को शासन में स्थान दिया गया। एक तो पूँजी वाले रहने ही नहीं दिये जाँयगे, और उनके जो समर्थक रह भी गये, उन से ज़बर्दस्ती श्रम कराया जायगा!

इन ग्राम-पंचायतों द्वारा ही ज़िलों और प्रान्तों की पंचायतों की रचना की जाने लगी है। और अब हर मास के पश्चात् एक पंचायती प्रतिनिधि-सभा (State Council) होती है, जो रूस के शासन के लिए एक कार्य-कारिणी पंचायत का निर्वाचन करती है। यह "कार्यकारिणी पंचायत" ही रूस की सब से बड़ी शासन-सभा है, जिस का प्रत्येक

व्यक्ति जनता द्वारा ही चुना जाता है। इसी प्रकार उद्योग-धन्धों और कृषि आदि सम्बन्धी बातों का नियंत्रण करने के लिए एक "औद्योगिक पंचायत" भी स्थापित है। इस का भी सब काम प्रजा-प्रतिनिधियों द्वारा ही होता है। इस के अतिरिक्त देश भर की एक व्यवस्थापक सभा (Peoples Commissory) भी है। इस के सभापति मोशिये लेनिन हैं। क़ानून और व्यवस्था की रचना यही सभा करती है।

अब हम नीचे दिखावेंगे कि, उपर्युक्त पंचायतों का संगठन किस प्रकार से होता है।

निर्वाचन की नियमावली।

(१) निर्वाचक-सभा की पहली बैठक के लिए दो-तिहाई निर्वाचन-कर्ताओं की उपस्थिति से कोरम पूरा समझा जायगा। यदि पहली बैठक में कोरम पूरा न हो तो दूसरी बैठक के लिए ⅓ सभासदों की उपस्थिति ही कोरम के लिए पर्याप्त होगी।

२) कार्य-प्रणाली की रचना करने अर्थात् निर्वाचन तिथि के आगे पीछे करने, उम्मेदवारों की नामावली बनाने आदि का अधिकार श्रमजीवी-समिति को होगा।

प्रतिनिधि बनाने के नियम।

(१) वह संस्था जिसमें २०० से ५०० तक मजदूर नौकर हैं, १ प्रतिनिधि और वह जिसमें ५०० से अधिक हैं, हर पाँच सौ पीछे १ प्रतिनिधि भेज सकेगी। वह कारखाने जिनमें २०० से कम मज़दूर हैं, कई कई मिल कर प्रतिनिधि भेजें।

(२) व्यापार-मण्डलियां जिनमें २००० तक सभासद हैं, एक नेता, जिनमें ५००० तक हैं, दो, जिनमें ५००० से अधिक हैं, प्रति ५००० सभासद पीछे एक नेता भेजेंगी, परन्तु किसी मंडली के नेताओं की संख्या दस से अधिक न होगी।

(३) मास्को की व्यापार-समिति को ५ नेता भेजने का अधिकार होगा।

(४) नेता-सभा * के लिए प्रत्येक राजनैतिक दल ३० नेता भेज सकेगा। इन दलों के अनुगामियों के संख्यानुसार आसन नियत किये जायंगे। परन्तु उनमें संगठित श्रमजीवियों तथा कारीगरों की संख्या के ४ प्रतिनिधि अवश्य होने चाहिये।

(५) निम्नलिखित अरूसी-साम्यवादी दलों में से प्रत्येक को एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होगा।

(क) पोलिश साम्यवादी-दल।
(ख) पोलिश लिथुवेनियन साम्यवादी दल।
(ग) लेटिश साम्यवादक-प्रजातंत्रवादी दल।
(घ) ज्यूविश साम्यवादक-प्रजातंत्रवादी दल।

(६) नेता-समिति के लिए निर्वाचित नेताओं का ध्यान निम्नलिखित सूचना की ओर आकृष्ट किया जाता है। निर्वाचन के नियमों के अनुसार वही मंडलियां प्रतिनिधि भेज सकती हैं, जो मास्को व्यापार-समिति के अधीन है। निर्वाचन-समिति नेताओं से प्रार्थना करती है कि, जिनके पास उन्हें निर्वाचित करने वाली सभाओं का विवरण हो, वे पहले मास्को व्यापार-समिति में नाम लिखायें।

---

* Peoples Commissory

(७) ऐसी संस्थाओं से, जिन्हें प्रतिनिधि चुनने का अधिकार है, प्रार्थना कि अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के सम्बन्ध में सब पत्र भेज दें, जिनके पत्र नहीं आयेंगे, उन को सम्मिलित होने की आज्ञा न दी जायगी।

मास्को में नेताओं का निर्वाचन।

टियाजा ,स्वे विभाग—ड्राइवर १, बोलशेविक २, स्टाफ १

वारयूलिन	कारख़ाना	१	बोलशेविक
परलोय	"	१	"
वारानोव	"	१	"
कालांचेविस्की, डोमीकोविस्की	कार्यालय	१	"
योजनियाक	"	१	"
जेकलिंस्की	"	१	"
सेन्ट्रल मेशकोविश की दूकान	"	१	"
इकोट्रिस्की पुण्य-क्षेत्र	"	१	साम्यवादी
दर्जी व्यापार-मंडली, पंसरहट्टे की दूकान		१	"
शहतीर की दूकान		१	"
गाड़ियों की दूकान		२	"
अध्यापक तथा पाठशाला-सेवक		१	मैंशेविक
ज़िले के निजी कारख़ाने		१	"
दक्षिण साम्यवादक क्रान्तिवादी (सहायक)		१	"
सेमोंकवोर्टस्की वार्ड		१	"

बोलशेविक	३५
वाम साम्य० क्रान्तिवादी	१
दक्षिण " "	१
मैंशेविक	१०
विद्युत इंजीनियर सभा	१

चाय की दूकानों और रसोई घरों के सेवक

बोलशेविक	१
वाम साम्य० क्रान्तिवादी	१

नगर के डाक-विभाग के सेवक

बोलशेविक	१६
वाम साम्य० क्रान्तिकारी	१

मास्को की सोवियट।

निर्वाचन-सभा प्रतिनिधि भेजने वाले कारख़ानों और दूकानों का ध्यान निम्न-लिखित बातों की ओर आकृष्ट करती है:-

१—सनद् के अतिरिक्त कारखानों और दूकानों को उचित है कि, सभा का विवरण प्रधान मन्त्री तथा कुछ सभासदों के हस्ताक्षर और मुहर सहित शीघ्र भेजें।

२—विवरण में उनको स्पष्टतया पुरुष, स्त्री, बालक इन तीन शीर्षकों के नीचे कारखाने में कार्य करने वाले मज़दूरों की संख्या को विभक्त करके लिखना चाहिये।

३—निर्वाचन-सभा में उपस्थित निर्वाचकों की ठीक संख्या लिखनी चाहिये।

४—प्रत्येक उम्मेदवार के लिए दी हुई सम्मतियों की ठीक संख्या लिखना अनिवार्य है।

५—बड़ी पंचायत के सामने महान कार्य तथा महत्व

अन्धकार है वहां जहां आदित्य नहीं है, है वह मुर्दा देश जहां साहित्य नहीं है॥

प्रताप—पुस्तक—माला।

हमने अपने यहां से उक्त 'ग्रन्थमाला' निकालना शुरू की है। यह ग्रंथमाला अपने ढंग की अद्वितीय निकल रही है। इसके ग्राहकों को प्रारम्भ में केवल ॥) आना 'प्रवेश फी' भेजना होती है। स्थायी ग्राहकों को पहिले निकली हुई और आगे निकलने वाली सभी पुस्तकें पौनी क़ीमत पर मिलेंगी। पहिले की पुस्तकें लेना न लेना ग्राहक की इच्छा पर है, परन्तु आगे निकलने वाली पुस्तक अवश्य लेना होगी। पुस्तक छपते ही एक सप्ताह पूर्व सूचना देकर वी० पी० द्वारा भेज दी जाती है। माला की ये पुस्तकें तयार हैं:—

१—मेरे जेल के अनुभव (ले० महात्मा गांधी)	।=)
२—देवीजोन अर्थात स्वतन्त्रता की मूर्ति	।=)
३—भारत के देशी राष्ट्र	॥।)
४—राष्ट्रीय वीणा ('प्रताप' की कविताओं का सग्रह)	॥)
५—जर्मन जासूस की रामकहानी	।)
६—युद्ध की कहानियां	।)
७—कृष्णार्जुन युद्ध (नाटक)	॥)
८—भीष्म (नाटक) ..	॥)
९—उद्योगी पुरुष (कर्मवीरों की जीवनियां)	।=)
१०—रूस का राहु (रूसी राज्यक्रांति के गुप्त रहस्य	।=)
११—श्रीकृष्ण चरित	।=)
१२—त्रिशूलतरङ्ग (कवि 'त्रिशूल' की कविताओं का संग्रह)	॥)
१३—चेतसिंह और काशी का विद्रोह	।=)
१४—फ़िजी में भारतीय (मि० एड्रूज़-लिखित)	१)
१५ साम्यवाद	।=)

इसके सिवाय चीन की राज्य-क्रांति आदि पुस्तकें छप रही हैं।

मैनेजर—"प्रताप-पुस्तक-माला"—कानपुर।

हमारी माला के अतिरिक्त पुस्तकें

पूर्ण प्रश्न उपस्थित हैं। अतः निर्वाचन-कमेटी सभाओं का विवरण भेजने तथा प्रतिनिधियों के टिकट मँगाने का अनुरोध करती है।*

श्रमजीवियों के प्रतिनिधि।

सोवियट प्रजातन्त्र के नागरिक की स्थिति में निर्वाचन की पुरानी प्रणाली उपयुक्त नहीं, क्योंकि उससे जाति के उस बड़े समुदाय, अर्थात् श्रमजीवी लोगों के प्रतिनिधि नहीं चुने जासकते जिस पर पंचायती प्रजातन्त्र विश्वास करता है।

*मास्को सोवियट का प्रथम अधिवेशन २३ (१६१६) अप्रैल को हुआ। निर्वाचन कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार ३६४ संस्थाओं के कुल ८०३ प्रतिनिधियों में से ७३३ के पास टिकट थे, वे ही प्रविष्ट हुए। उनका निर्वाचन-क्रम निम्न-लिखित है।

बोलशेविक	...	.	३५४
सहायक		...	३१४
मैंशेविक	.	.	७३
सहायक	.	.	६
वाम साम्य० क्रान्तिकारी	..	..	४०
सहायक	.	..	११
संयुक्त समाजवादी प्रजातन्त्रीय	...	...	५
स्वतन्त्र	...	...	७
मध्य साम्य० क्रान्तिकारी		.	६१
दक्षिण साम्य० क्रान्तिकारी	.	.	५
क्रान्तिकारी	...	..	५
स्वतन्त्र	...	...	६

१—जहाँ सम्भव होता है, मज़दूर अपने प्रतिनिधि वहाँ चुनते हैं, जहाँ वे दिन के लिए इकट्ठे होते हैं। अतः प्रतिनिधियों की बड़ी संख्या कारख़ानों, दुकानों, रेलों, शिक्षालयों से आती है। प्रजातन्त्र की राजधानी मास्को में सरकारी नौकरों के प्रतिनिधि भी आते हैं।

२—जहाँ दैनिक कार्य के कारण, दुकानों का प्रतिनिधि-निर्वाचन उपर्युक्त रीति से नहीं हो सकता, वहाँ काम करने के मज़दूर वृहद् सभा करके निर्वाचन करते हैं। ऐसा चाय की दुकानों, सरायों, आश्रमों बिखरे हुए मज़दूर घरेलू सेवकों के सम्बन्ध होता है।

३—सोवियट सभा प्रति सप्ताह दो बार होती है। बीच में वैतनिक कर्मचारियों की सभा कार्य करती है। नेताओं की बड़ी संख्या अपने साथियों के साथ कारख़ानों में अधिक समय तक काम करती रहती है। श्रमजीवी सदा नेताओं के साथ दूकानों तथा कारख़ानों में मिले जुले रहते हैं, और साप्ताहिक तथा मासिक सभाओं में उनको अपने विचारों की सूचना देते रहते हैं। इस प्रकार "पेशेवर शासकों" का आरम्भ ही से बीज नाश-किया गया है। यही आशय नेताओं को हटाने तथा परिवर्तन करने के नियम का है। (पञ्च ३ मास के लिए चुने जाते हैं।)

४—सोवियट, अपनी विशेष औद्योगिक स्थिति में अर्थात् चीजें बनाने वाले और उनका प्रयोग करने वालों की स्थिति में:—

इस शीर्षक के नीचे व्यापार-मण्डलियों और व्यापार-सभाओं के प्रतिनिधि आते हैं। इनसे और सोवियट के निर्वाचित सभासदों से आर्थिक विभाग बनता है, जिसकी शाखा

प्रत्येक शहर और नगर में पाई जाती है। इस विभाग का सम्बन्ध सीधा प्रजातन्त्र से है। जहां आर्थिक नीति पर सोवियट का शासन रखना आवश्यक है, वहां इस प्रकार निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा श्रमजीवियों का आधिपत्य भी अनिवार्य है। इस प्रणाली से श्रमजीवियों के कई बार निर्वाचित होने आदि की कठिनाइयों की अपेक्षा लाभ अधिक होता है।

५—सोवियट साम्यवादियों की स्थिति में अर्थात् राजनैतिक दलों की दृष्टि से:—

यद्यपि सोवियट में राजनैतिक नेताओं की संख्या श्रमजीवियों के प्रतिनिधियों की अपेक्षा न्यून है, परन्तु परिवर्तन और क्रान्ति के समय उनकी उपस्थिति आवश्यक है, क्योंकि जनता का कार्य करने से उनको बहुत सी बातों का विशेष ज्ञान होता है।

उपसंहार ।

पुस्तक के अन्तिम पृष्ठों के छपने तक रूस के सम्बन्ध में हमें जो कुछ समाचार मिले हैं, उनका समावेश कर दिया गया है। परन्तु, अभी रूस की राज्यक्रान्ति का काम समाप्त नहीं हुआ है। सम्भव है कि, दूसरे संस्करण में हमें कुछ और बातें जोड़नी पड़ें, क्योंकि, अभी रूस में जो कुछ होरहा है, वह अस्थायी है, वह केवल साम्यवाद के व्यावहारिक रूप की भूमिका है। बोल्शेविक सरकार अभी केवल व्यक्तिगत पूँजी और सम्पत्ति के नाश करने में लगी हुई है। उसने व्यक्तियों के श्रम को भी राष्ट्र की सम्पत्ति बना लिया है। किसी पिछले अध्याय में हमने मास्को की औद्योगिक कान्फ्रेंस का वर्णन किया है। उसके निश्चय के अनुसार बोल्शेविक सरकार मज़दूरों के दल तैयार करेगी, ये दल राष्ट्र के लिए परिश्रम करेंगे, जहाँ उनकी ज़रूरत समझी जायगी, वे भेज दिये जाया करेंगे। उन्हें सरकार भोजन-कपड़ा और वेतन देगी। उनकी ही प्रतिनिधि-सभायें इन सब बातों का निर्णय और प्रबन्ध किया करेंगी। इस लिए, अब रूस से हड़तालों के संघटित होने का भय शायद जाता रहेगा। देश की सम्पत्ति के समान विभाजन के लिए ही यह सब हो रहा है।

" भविष्य के गर्भ में संसार के इस आठवें आश्चर्य की आगामी बातें छिपी हुई हैं। लेकिन यह कौन कह सकता है कि, वे अच्छी हैं या बुरी।